M.A. Public Administration (Previous)

Semester – I

Paper Code – 20PUB21C4

तुलनात्मक लोक प्रशासन–1

(Comparative Public Administration)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय

रोहतक–124 001

Printed at: MDU Press

Copyright © 2020, Maharshi Dayanand University, ROHTAK

All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

विषय सूची

ईकाई		पृष्ठ
ईकाई–1	तुलनात्मक लोक प्रशासनः अर्थ उत्पत्ति, क्षेत्र एवं महत्त्व, विकसित एवं विकासशील देशों की विशेषताएं	1–26
ईकाई–2	प्रशासन का पर्यावरण एवं तुलनात्मक लोक प्रशासन के उपागम	27–48
ईकाई–3	यूनाईटिड किंग्डम, अमेरिका, फ्रांस व जापान के प्रशासन की विशेषताएँ	49–68
ईकाई–4	यूनाईटिड किंग्डम, अमेरिका, फ्रांस व जापान की मुख्य कार्यपालिका	69–114

तुलनात्मक लोक प्रशासन–1

(Comparative Public Administration)

इकाई–1 तुलनात्मक लोक प्रशासन की अवधारणा, उत्पति, महत्त्व, विकसित एवं विकासशील देशों के प्रशासन की विशेषताएँ

इकाई की रूपरेखा

1.0 परिचय

1.1 इकाई के उद्देश्य

1.2 तुलनात्मक लोक प्रशासन की अवधारणा

- 1.2.1 अर्थ एवं परिभाषा
- 1.2.2 प्रकृति
- 1.2.3 क्षेत्र
- 1.2.4 महत्त्व

1.3 तुलनात्मक लोक प्रशासन की उत्पत्ति

- 1.3.1 द्वितीय विश्व युद्ध से पूर्व
- 1.3.2 द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात्
  - 1.3.2.1 उत्पत्ति के मूल कारण
  - 1.3.2.2 तुलनात्मक अध्ययन का व्यवस्थित प्रारंभ

1.4 विकासशील देशों की प्रशासनिक विशेषताएँ

1.5 विकसित देशों की प्रशासनिक विशेषताएँ

1.6 सारांश

1.7 मुख्य शब्दावली

1.8 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

1.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

1.10 आप ये भी पढ़ सकते हैं।

1.0 परिचय (Introduction)

लोक प्रशासन के अध्ययन क्षेत्र में तुलनात्मक लोक प्रशासन का व्यवस्थित रूप में विकास द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद ही संभव हो सका। तुलनात्मक लोक प्रशासन के विकास के कारण लोक प्रशासन के साहित्य में विभिन्न प्रशासनिक व्यवस्थाओं की तुलना को बल मिला, जिसके परिणामस्वरूप लोक प्रशासन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने जन्म लिया। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् कुछ ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई, जिन्होंने तुलनात्मक लोक प्रशासन की उत्पत्ति में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया।

विश्व युद्ध से उत्पन्न नवीन समस्याओं के समाधान हेतु विभिन्न देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं का अलग–अलग सांस्कृतिक संदर्भों में तुलनात्मक अध्ययन को लोक प्रशासन की विषय–वस्तु में सम्मिलित किया गया। इस इकाई में तुलनात्मक लोक प्रशासन का अर्थ, प्रकृति, क्षेत्र, महत्त्व, उत्पत्ति आदि के अलावा विकासशील एवं विकसित राष्ट्रों की प्रशासनिक विशेषताओं का भी विस्तारपूर्वक अध्ययन किया जाएगा।

1.1 इकाई के उद्देश्य (Unit objectives)

इस इकाई को पढ़ने के निम्नलिखित उद्देश्य है :–

- तुलनात्मक लोक प्रशासन का अर्थ व परिभाषा को समझना।
- तुलनात्मक लोक प्रशासन की प्रकृति, क्षेत्र एवं महत्त्व को जानना।
- तुलनात्मक लोक प्रशासन की उत्पत्ति के कारणों का पता लगाना।
- विकासशील देशों के प्रशासन की विशेषताएँ जानना।
- विकसित देशों के प्रशासन की विशेषताएँ जानना।

1.2 तुलनात्मक लोक प्रशासन की अवधारणा :

1.2.1 अर्थ एवं परिभाषा

सामान्य अर्थों में दो या दो से अधिक देशों, क्षेत्रों, प्रांतों या स्थानों की लोक प्रशासनिक व्यवस्थाओं के मध्य तुलनात्मक अध्ययन ही तुलनात्मक लोक प्रशासन है।

निमरोद रैफिली के अनुसार–'तुलनात्मक लोक प्रशासन, तुलनात्मक आधार पर लोक प्रशासन का अध्ययन है।'' **फैरेल हैडी के शब्दों** में–'तुलनात्मक लोक प्रशासन मुख्य रूप से सिद्धांत–निर्माण प्रक्रिया के समान है।' **लोक प्रशासन समूह** (CAG) के अनुसार, वह लोक प्रशासन का एक ऐसा सिद्धांत है जो विभिन्न संस्कृतियों तथा राष्ट्रीय परिवेशों में प्रयोग किया जाता है तथा उसे तथ्यात्मक सामग्री की सहायता से जाँचा जा सकता है। **रिग्स** के अनुसार यह पारिस्थितिकी उन्मुख अध्ययन है। फैरेल हैडी ने उसे सिद्धांत निर्माण की प्रक्रिया के समान माना है।

टी. एन. चतुर्वेदी के अनुसार–''तुलनात्मक लोक प्रशासन के अंतर्गत विभिन्न संस्कृतियों में कार्यरत विभिन्न राज्यों की सार्वजनिक एवं प्रशासनिक संस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।''

एफ.डब्ल्यू. रिग्ज के अनुसार– ''तुलनात्मक शब्द का प्रयोग अनुभवमूलक तथा सिद्धांत निर्माण में सहायक अध्ययनों के लिए ही किया जाना चाहिए। तुलनात्मक लोक प्रशासन, आदर्शमूलक उपागम से अनुभवमूलक उपागम की ओर जाने, विशिष्टता (Ideographic) से सामान्यपरकता (Nomothetic) की ओर जाने तथा गैर पारिस्थितिकीय से पारिस्थितिकीय आधार को ढूंढने की प्रवृत्तियाँ रखता है।''

गाई पीटर्स के शब्दों में –''यदि प्रशासन को जाँच का एक विशाल तथा सामान्य क्षेत्र समझा जाए तो तुलनात्मक लोक प्रशासन इसकी एक विशिष्ट शाखा है जो प्रशासन के सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक वातावरण को

समझने में हमारी सहायता करती है।''

ए. आर. त्यागी के अनुसार, ''तुलनात्मक लोक प्रशासन एक ऐसा अनुशासन है जो लोक प्रशासन के संपूर्ण सत्य को जानने के लिए समय, स्थान और सांस्कृतिक विभिन्नता की परवाह किए बिना तुलनात्मक अध्ययन में व्यावहारिक यंत्रों का प्रयोग करता है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि तुलनात्मक लोक प्रशासन की निम्नांकित विशेषताएँ हैं –

1. यह लोक प्रशासन के ज्ञान की एक नई शाखा है।
2. यह लोक प्रशासन के अध्ययन क्षेत्र में नूतन अवधारणा है।
3. यह दो या दो से अधिक प्रशासनिक संगठनों, देशों तथा व्यवस्थाओं के बीच तुलनात्मक विश्लेषण अध्ययन करने से संबंधित है।
4. इसमें पूर्व के परंपरागत सिद्धांतों के स्थान पर वैज्ञानिक विधि को अधिक बल दिया जाता है।
5. विशिष्टता के स्थान पर सामान्यीकरण की ओर जाने के प्रयास किए जाते हैं।
6. लोक प्रशासन को एक निर्जीव यंत्र मानने की बजाए उसे ऐसे ढाँचे के रूप में देखा जाता है जो अपने पर्यावरण से प्रभावित होता है तथा पर्यावरण के घटकों को प्रभावित भी करता है।
7. यह विश्व के देशों, राज्यों तथा संगठनों के मध्य दूरी बनाए रखने के स्थान पर उनमें समीपता लाने तथा एक दूसरे से प्रेरणा पाने के लिए प्रयासरत है।
8. तुलनात्मक लोक प्रशासन की विचारधारा अन्य सामाजिक विज्ञानों से पृथकता बनाए रखने के स्थान पर उनसे समन्वय स्थापित करने एवं अन्तर्विषयी दृष्टिकोण अपनाने पर जोर देती है।

1.2.2 प्रकृति

तुलनात्मक लोक प्रशासन की प्रकृति को निम्नलिखित विशेषताओं के माध्यम से दर्शाया जा सकता है –

1. Recent Origin: सामाजिक विज्ञानों की श्रेणी में लोक प्रशासन विषय अपने आप में काफी नया विषय है और तुलनात्मक लोक प्रशासन, लोक प्रशासन का एक उप–विषय होने के कारण और भी आधुनिक एवं नवीन विषय है। इसका जन्म द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् 1952 की प्रिंसीटन कांफ्रेस (Princeton Confrence) आन एडमिनिस्ट्रेशन जो अमेरिका की प्रिंसीटन नामक यूनिवर्सिटी में हुई, से माना जाता है। इस प्रकार यह विषय केवल 68 वर्ष पुराना है और अब तक अपने शैशव काल से भी बाहर नहीं निकल पाया है।

2. सर्वमान्य पैराडाइमज (माडल) की कमी (Absence of Dominant Pradigms) : प्राकृतिक विज्ञानों में शोध कार्य सर्वमान्य वैज्ञानिक प्राप्तियों के आधार पर उत्पादित माडलों से निर्देशित होते हैं। ये माडल वैज्ञानिक जगत् के लोगों के सामने आने वाली समस्याओं का हल निकालने में अहमभूत भूमिका निभाते हैं। जब कोई पैराडाइम इस प्रक्रिया में असफल रहता है तो उसका स्थान अन्य पैराडाइम के द्वारा ले लिया जाता है। इस प्रक्रिया को वैज्ञानिक क्रांति के नाम से जाना जाता है।

इस तरज पर अगर सामाजिक विज्ञानों के संदर्भ में देखा जाए तो प्रत्येक सामाजिक विज्ञान के पास सर्वमान्य पैराडाइमज की कमी पाई जाती है। प्राकृतिक विज्ञानों की तरह तो लोक प्रशासन के Parent discipline राजनैतिक विज्ञान के पास भी अब तक ऐसा कोई पैराडाइम नहीं है। हालांकि कुछ सामाजिक विज्ञान इस ढंग के पैराडाइम रखने का दावा (Claim) करते हैं लेकिन उसकी applicability सीमित होती है। इसी कारण तुलनात्मक लोक प्रशासन अब तक एक ऐसे पैराडाइमज का विकास करने में असमर्थ रहा है।

3. (Multi-Perspective Character) : तुलनात्मक लोक प्रशासन की पहचान बहुत सारे Perspectives रखने के रूप

में की जाती है। विभिन्न विद्वानों ने इस विषय के संबंध में अलग–अलग प्रवृत्तियों की व्याख्या की हैं। प्रो॰ रिग्ज फैरेल हैडी, रार्बट टी गोलेम्यूस्की आदि इनमें प्रमुख विद्वान हैं।

एफ. डब्ल्यू. रिग्ज ने लोक प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन के सम्बन्ध में (सन् 1962) में तीन प्रकार की प्रवृत्तियों का वर्णन किया था –

1. **आदर्शात्मक से अनुभवमूलक उन्मुखता (Normative to Empirical)**: अर्थात् केवल सैद्धान्तिक नियमों की व्याख्या करने या केवल आदर्शों की चर्चा करने के स्थान पर उन परिस्थितियों को अधिक महत्व दिया जाए जो वास्तव में हमारे सामने हैं तथा प्रशासन को प्रभावित करती हैं। यह ''क्या होना चाहिए के स्थान पर ''क्या है'' पर अधिक ध्यान देता है। वस्तुतः लोक प्रशासन विषय का प्रारंभिक स्वरूप एवं मान्यताएँ इसमें उन बिन्दुओं को महत्व प्रदान करती थी जो कुशलता, उत्कृष्टता, वैधानिकता तथा औपचारिक सिद्धांतों के इर्द–गिर्द घूमते थे। यह परम्परागत आदर्शात्मक (Normative) स्वरूप या मान्यता शीघ्र ही दम तोड़ने लगी जब विकासशील देशों का उदय होने लगा। व्यवहारवादी आन्दोलन ने लोक प्रशासन सहित सभी सामाजिक विज्ञानों में तथ्यों तथा वास्तविकता पर बल प्रदान किया जो मानव व्यवहार को महत्वपूर्ण मानता है। इस अनुभवमूलक (Empircal) उन्मुखता ने विकास प्रशासन के परम्परागत आदर्शात्मक स्वरूप को भी व्यावहारिक धरातल पर विश्लेषित करने का आधार प्रदान किया। नवीन लोक प्रशासन की मान्यताएँ तथा तुलनात्मक लोक प्रशासन की पद्धतियाँ वास्तव में आदर्श तथा अनुभव एवं सिद्धांत तथा व्यवहार के मध्य सहमति का एक बिन्दु ढूंढने का प्रयास करती हैं।

2. **विशिष्टता से सामान्यपरकता (Ideographic to Nomothetic)** : रिग्ज के अनुसार विशिष्टता (Ideographic) अर्थात् किसी एक संगठन, व्यक्ति या समाज के अध्ययन के बजाए उन तथ्यों को अधिक महत्व दिया जाए जो सामान्यपरक (Nomothetic) या व्यापकता लिए होते हैं। विशिष्टता के स्थान पर सामान्यपरकता तभी आ सकती है जब हम तुलनात्मक अध्ययनों पर बल दें। किसी एक ऐतिहासिक घटना, किसी एक अभिकरण या किसी एक सांस्कृतिक क्षेत्र का अध्ययन करने को रिग्ज ने सार्थक नहीं माना है। इस प्रकार के अध्ययन भाव चित्रात्मक, विशिष्टता तथा संकीर्णता लिए हुए नजर आते हैं। इन इडियोग्राफिक अध्ययनों के स्थान पर उन नोमोथेटिक या विधि संबंधी अध्ययनों की सार्थकता अधिक है जो सामान्यीकरण तथा सिद्धांत निर्माण में सहायता कर सकते हैं। वास्तव में विशिष्टता या किसी एक देश या एक संगठन की प्रशासनिक व्यवस्था का अध्ययन वर्णनात्मक अधिक होते थे जबकि दो या दो से अधिक देशों या संगठनों के प्रशासनिक व्यवहार के अध्ययन तुलनात्मक होने के कारण साधारणीकरण या सामान्यीकरण (Generalization) की ओर उन्मुख प्रतीत होते हैं। यद्यपि केस स्टडी विधि, विशिष्टता की परिचायक है तथापि यह नहीं कहा जा सकता है कि सभी अध्ययन तुलनात्मक, नोमोथेटिक तथा सामान्यकृत होने पर ही सर्वाधिक उपयोगी हो सकते हैं।

3. **गैर पारिस्थितिकीय से पारिस्थितिकीय (Non-Ecological to Ecological)** : अर्थात् लोक प्रशासन को प्रभावित करने वाले सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा भौगोलिक पर्यावरण का भी गहनता से अध्ययन किया जाए। यह पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण है जो वर्तमान में तुलनात्मक लोक प्रशासन की मुख्य आवश्यकता माना जाता है। लोक प्रशासन के पूर्ववर्ती अध्ययन मूलतः गैर पारिस्थितिकीय होते थे जिनमें प्रशासन के आसपास के पर्यावरण का उल्लेख बहुत कम या नहीं होता था, जबकि वास्तविकता यह है कि किसी भी देश का लोक प्रशासन अपने आसपास के समाज, प्रकृति, संसाधनों, सामाजिक मूल्यों, राजनीतिक दशाओं, ऐतिहासिक संदर्भों, आर्थिक स्थिति तथा परम्पराओं से न केवल प्रभावित होता है बल्कि प्रशासन इन सभी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक कारकों को प्रभावित भी करता है। अतः रिग्ज ने तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययनों में पारिस्थितिकीय महत्व को समझने पर बल दिया है।

फैरेल हैडी ने तुलनात्मक लोक प्रशासन की प्रकृति को चार रूपों में विभाजित किया है – (1) सुधरी हुई पारस्परिक प्रकृति (2) विकासमान प्रकृति (3) सामान्य प्रणाली का प्रारूप एवं (4) मध्यवर्ती सिद्धांतों का प्रारूप। प्रथम रूप में महत्वपूर्ण प्रशासनिक संस्थाओं के प्रशासन का तुलनात्मक अध्ययन सम्मिलित है। उसमें विकसित देशों के प्रशासनिक संगठनों एवं संरचनाओं के तुलनात्मक अध्ययन को भी लिया जाता है। द्वितीय रूप में, उन समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है जो सामाजिक एवं आर्थिक विकास में तीव्रता के कारण उत्पन्न हुई हैं। तृतीय रूप में तुलनात्मक लोक प्रशासन में सामाजिक वातावरण के अनुरूप प्रशासनिक व्यवस्था का अध्ययन शामिल है। चतुर्थ प्रारूप में किसी प्रशासनिक व्यवस्था की किसी निश्चित प्रक्रिया को लिया जा सकता है।

रॉबर्ट टी. गोलेम्ब्यूस्की ने तुलनात्मक लोक प्रशासन की तीन विषय वस्तुओं (Theme) को रेखांकित किया है –

i. यह ध्यान केन्द्रित करने योग्य विषयों या मुद्दों को महत्व देता है।
ii. परिणाम दे सकने वाले प्रयासों को महत्व देता है।
iii. उपागम या अध्ययन पद्धतियों को अपनाने के लिए अभिप्रेरणा प्रदान करता है।

उपर्युक्त वर्णित विषयवस्तु तुलनात्मक लोक प्रशासन को वैज्ञानिक स्वरूप में प्रदान करने, व्यापकता देने तथा तार्किक एवं व्यवहारिक उपादेयता सिद्ध करने की दिशा में निर्देश है ताकि सफलतापूर्वक आगे बढ़ा जा सके। तुलनात्मक लोक प्रशासन का मुख्य बल निम्नलिखित बिंदुओं पर रहता है –

1. कई उद्देश्यों को दृष्टिगत रखते हुए, संगठनों को विशिष्ट संस्कृतियों तथा राजनीतिक पर्यावरण के संदर्भ में देखा जाना चाहिए।
2. लोक प्रशासन में प्रचलित सिद्धांत अपर्याप्त हैं, अतः उनको परिपूर्ण बनाया जाना चाहिए।
3. प्रत्येक प्रशासन तथा इनका व्यवहार कई प्रकार के मूल्यों (Values) से सराबोर है अतः तदनुरूप विश्लेषण करना चाहिए।
4. किसी भी अध्ययन की उपादेयता सिद्ध करने के लिए सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों पक्षों को सम्मिलित कर विश्लेषण करना चाहिए।

राबर्ट डहाल का कहना है –''लोक प्रशासन के अध्ययन को अनिवार्यतः और अधिक व्यापक आधार वाला होना चाहिए, केवल तकनीकों एवं विधियों पर आधारित न रहकर घटते बढ़ते ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक एवं अन्य अनुकूलक घटकों तक विस्तृत होना चाहिए।''

4. अमेरिकन विद्वानों का बोलबाला (Dominance of American Scholars) : तुलनात्मक लोक प्रशासन से संबंधित अधिक से अधिक साहित्य का विकास करने में अमेरिकन विद्वान खासतौर से CAG के विद्वानों का अहमभूत योगदान रहा है। इसके साथ इस विषय के संबंध में शोध करने हेतु वित्तीय सहायता भी या तो अमेरिकन सरकार द्वारा या दूसरी अन्य अमेरिकन एजेंसियों जैसे कि फोर्ड फाउन्डेशन जो विकासशील देशों के प्रशासन संबंधी समस्याओं का विश्लेषण करने तथा उनका समाधान निकालने में रूची लेती थी, ने ही प्रदान की। ऐसा इस कारण भी था क्योंकि अमेरिका ने ही एशिया, अफ्रीका एवं लैटिन अमेरिका के नवोदित राष्ट्रों को तकनीकी एवं आर्थिक सहायता प्रदान की थी। इन देशों में इन प्रोग्रामों की असफलता ने भी अमेरिकन विद्वानों में इन देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं को पढ़ने संबंधी चाहत पैदा की। इन्हीं कारणों से तुलनात्मक लोक प्रशासन के साहित्यिक विकास में अमेरिकन विद्वानों का बोलबाला रहा।

5. सिद्धांत–निर्माण प्रयास पर दबाव (Theory Building Efforts) : तुलनात्मक लोक प्रशासन की अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसका अधिकाधिक दबाव सिद्धांत निर्माण के विषय में रहा। सिद्धांतों एवं माडलों का विकास किसी भी विषय के लिए अत्याधिक आवश्यक है ये सिद्धांत एवं माडल उन विषयों व अन्य क्षेत्रों को खोजने एवं

उनके संबंध में शोध को बढ़ावा देने में अत्यंत कारगर होते हैं। सामाजिक विज्ञानों में तो इनकी आवश्यकता और भी अधिक बढ़ जाती है क्योंकि इनके पास शोध के संबंध में Fund Crunch संबंधी समस्या बनी रहती है।

आरंभ में तुलनात्मक लोक प्रशासन का सिद्धांत निर्माण प्रक्रिया में दबाव General एवं Middle Range Theories के निर्माण पर केन्द्रित रहा। उदाहरणार्थ प्रो॰ रिग्स के Agraria & Industria एवं Fused-Prismatic-Diffracted माडल और टी. डोरसी का Information Energhy माडल को General Theories में गिना जाता है तथा मैक्स बेबर के Ideal Type Bureaucracy संबंधी माडल को Middle Range की श्रेणी में गिना जाता है। हालांकि आधुनिक विद्वान जैसे कि Robert Presthus & Subramanian ने तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन क्षेत्र में General Theories से Middle Range एवं Micro Theories की तरफ रूझान के संबंध में वकालत की है।

6. विकास प्रशासन पर केन्द्रित (Focused on Development Administration) : विकासशील देश जो एक लंबे समय तक Exploitation का शिकार रहे जब आजाद हुए तो उनके प्रशासन के सामने अनेक चुनौतियाँ थी। सबसे बड़ी चुनौती विकास की थी, अतः प्रशासन का महत्वपूर्ण कार्य चहुंमुखी विकास लाना था इसी कारण इन देशों के प्रशासन को विकास प्रशासन कहा जाता है। इन चुनौतियों के साथ जूझने के लिए इन देशों को मदद की आवश्यकता थी जो विकसित देशों के द्वारा तकनीकी आर्थिक सहायता के रूप में इन्हें प्रदान की गई। लेकिन ये तकनीकी आर्थिक सहायता संबंधी प्रोग्राम इन देशों में असफल रहे। अतः विकसित देश खासतौर से अमेरिका के विद्वानों की लालसा इन देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं के अध्ययन के संबंध में और अधिक बढ़ गई। ये विद्वान विकासशील देशों में इन प्रोग्रामों की असफलता के कारणों का पता लगाना चाहते थे। अतः उन्होंने इन देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं को अपने अध्ययन का केन्द्र बनाया। इस प्रकार इन देशों का विकास प्रशासन तुलनात्मक लोक प्रशासन के विद्वानों के अध्ययन का केन्द्र रहा।

1.2.3 तुलनात्मक लोक प्रशासन का क्षेत्र

स्वाभाविक प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि तुलनात्मक लोक प्रशासन का अध्ययन किन–किन क्षेत्रों में किया जा सकता है। सामान्यतया लोक प्रशासन के अध्ययन का क्षेत्र विश्व के समस्त देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाएँ मानी जाती हैं। इसके अध्ययन में निम्नलिखित बातों को सम्मिलित किया जा सकता है –

1. **सार्वजनिक एवं व्यक्तिगत प्रशासन की विभिन्न बातों का अध्ययन :** तुलनात्मक लोक प्रशासन का क्षेत्र सार्वजनिक एवं व्यक्तिगत प्रशासन की निम्न बातों का अध्ययन करना है।

   (i) एक देश या संस्कृति की संरचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन (ii) अंतर्राष्ट्र और अंर्तःसंस्कृति की संरचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन (iii) घटनाओं का तुलनात्मक अध्ययन तथा (iv) विभिन्न राष्ट्र और संस्कृतियों की घटनाओं का तुलनात्मक अध्ययन।

2. **प्रजातान्त्रिक संस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन** – तुलनात्मक लोक प्रशासन के क्षेत्र में विभिन्न देशों की प्रजातांत्रिक संस्थाओं का अध्ययन किया जाता है। इसमें इन प्रजातांत्रिक संस्थाओं के कार्यों, गठन एवं महत्व आदि का अध्ययन किया जाता है। उदाहरण के लिए, भारत व संयुक्त राज्य अमेरिका तथा इंग्लैण्ड की संसदों का तुलनात्मक अध्ययन।

3. **प्रशासन पर नियंत्रण के विभिन्न साधनों का तुलनात्मक अध्ययन**– तुलनात्मक लोक प्रशासन में विभिन्न देशों की कार्यपालिका, व्यवस्थापिका एवं न्यायपालिका के प्रशासन पर नियंत्रण का तुलनात्मक अध्ययन भी किया जाता है। उदाहरण के लिए, भारत एवं इंग्लैण्ड के अध्ययन के प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण का तुलनात्मक अध्ययन।

4. **कार्मिक वर्ग के प्रशासन एवं समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन** – तुलनात्मक लोक प्रशासन में विभिन्न देशों

के कार्मिक वर्ग के प्रशासन तथा उनकी समस्याओं का भी तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। उदाहरण के लिए रूस और स्विट्जरलैण्ड के कार्मिक वर्ग के प्रशासन का तुलनात्मक अध्ययन।

5. **कार्यात्मक प्रशासन का तुलनात्मक अध्ययन** – तुलनात्मक लोक प्रशासन के क्षेत्र में शिक्षा, समाज तथा आर्थिक प्रशासन आदि विभिन्न कार्यात्मक प्रशासनों का भी तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। उदाहरण के लिए, भारत एवं संयुक्त राज्य अमेरिका के शिक्षा प्रशासन का तुलनात्मक अध्ययन।

6. **अन्य प्रशासनों की तुलना** –तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन में विदेशी प्रशासन, अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं का प्रशासन, तुलनात्मक स्थानीय प्रशासन तथा मानव व्यवहार का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।

तुलनात्मक लोक प्रशासन के ऊपरलिखित क्षेत्र में अध्ययन निम्न तीन स्तरों पर किए जा सकते हैं –

1. वृहत्स्तरीय अध्ययन
2. मध्यवर्ती अध्ययन
3. लघुस्तरीय अध्ययन

1. वृहतस्तरीय अध्ययन – इस अध्ययन में किसी एक देश की संपूर्ण प्रशासकीय व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन दूसरे देश की संपूर्ण प्रशासकीय व्यवस्था के साथ किया जाता है, जैसे भारत की प्रशासनिक व्यवस्था का इंग्लैण्ड, जर्मनी आदि देशों की प्रशासनिक व्यवस्था से किया जाता है। इस अध्ययन में दो देशों के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक पर्यावरण का भी अध्ययन किया जाता है।

2. मध्यवर्ती अध्ययन – मध्यवर्ती अध्ययन क्षेत्र में दो देशों की प्रशासनिक व्यवस्था के किसी एक बड़े अंग का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है, जैसे भारत और ब्रिटेन में नौकरशाही की तुलना, भारत और अमेरिका की स्थानीय सरकार आदि का अध्ययन किया जाता है इस प्रकार इस अध्ययन में न तो पूरी तरह से प्रशासनिक व्यवस्था का अध्ययन किया जाता है और न ही किसी सूक्ष्म अंग की तुलना का, बल्कि भारतीय प्रशासन के एक बहुत बड़े भाग की तुलना दूसरे देश की उसी स्तर की प्रशासनिक व्यवस्था से किया जाता है।

3. लघुस्तरीय अध्ययन – उपर्युक्त दोनों अध्ययनों के विपरीत लघुस्तरीय अध्ययन में सूक्ष्म दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। आजकल सामाजिक विज्ञानों में लघुस्तरीय अध्ययन अधिक प्रचलित हैं। लोक प्रशासन इसका अपवाद नहीं है। इसमें किसी एक संगठन का दूसरे संगठन से उसके प्रतिरूप की तुलना से संबंधित है। सूक्ष्म अध्ययन प्रशासनिक प्रणाली के किसी लघु भाग का विश्लेषण हो सकता है। इसमें अध्ययन का क्षेत्र छोटा और गहन होता है, जैसे भारत का दूसरे देशों के प्रशासनिक संगठनों, भर्ती या प्रशिक्षण प्रणाली का अध्ययन। आजकल ऐसे अध्ययन अधिक प्रचलित और उपयोगी हैं।

ऊपरलिखित अध्ययन निम्नलिखित Range के हो सकते हैं –

1. तुलनात्मक लोक प्रशासन का क्षेत्र अंतर्राष्ट्रीय (दो देशों के मध्य) हो सकता है। दो से अधिक देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं का अध्ययन भी किया जा सकता है जिसे बहुराष्ट्रीय विश्लेषण कहा जाता है।
2. इसका क्षेत्र अंतर्देशीय (देश के अंदर ही) हो सकता है जबकि एक ही देश की दो संस्थाओं जैसे रेलवे बोर्ड तथा रिजर्व बैंक का आपसी अध्ययन।
3. यह अंतरसांस्कृतिक भी हो सकता है जैसे कि अमेरिका के लोकसेवकों का तथा भारत के लोकसेवकों का जनता से व्यवहार का अध्ययन।
4. इसमें समसामयिक (Contemporary) तथा संकरसामयिक (Cross Conteporary) अध्ययन भी किए जाते

हैं–जैसे कि आज के भारत की जापान से तुलना समसामयिक है, किन्तु आज के भारतीय प्रशासन की मौर्यकाल से तुलना संकरसामयिक प्रकृति की होगी। इसे बहु कालात्मक विश्लेषण भी कहा जाता है।

5. तुलनात्मक प्रशासनिक अध्ययनों में विकसित, विकासशील तथा अत्यंत पिछड़े देशों के मध्य भी अध्ययन किया जा सकता है।

6. इसमें प्रशासन की कार्यप्रणाली, संरचना, संगठन, कारणों, पर्यावरण तथा संदर्भों के आधार पर भी अध्ययन हो सकते हैं। इन्हें अंतरसंरचनात्मक, अंतर संस्थागत, अंतरविधायी तथा अंतरपर्यावरणीय अध्ययन कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए भारत के मंत्रिमंडल सचिवालय के ढाँचे की ब्रिटेन के मंत्रिमण्डल सचिवालय के संगठन से तुलना अंतरसंगठनात्मक अध्ययन की श्रेणी की होगी।

अध्ययन एवं अनुसंधान की विविध सीमाओं तथा बाध्यताओं के साथ ही साथ अध्ययनों की उपादेयता को देखते हुए प्रो0 सुरेन्द्र कटारिया ने निम्नलिखित बिन्दुओं या विषयवस्तु को तुलनात्मक प्रशासनिक अध्ययन क्षेत्र में सम्मिलित किया है –

1. प्रशासनिक प्रणालियों या व्यवस्थाओं का पर्यावरण।
2. संपूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था की संरचना एवं कार्यकरण।
3. पदसोपान, कार्य विभाजन, सत्ता, कर्त्तव्य, केन्द्रीकरण, विकेन्द्रीकरण, नियंत्रण, विशेषीकरण तथा श्रम विभाजन इत्यादि प्रशासनिक बिन्दु। यह प्रशासनिक तंत्र का औपचारिक स्वरूप है।
4. प्रशासनिक संगठनों में अनौपचारिक संगठन तथा उनके व्यावहारिक आयाम जैसे अभिप्रेरणा, मैत्री संबंध, मनोबल का स्तर, अनौपचारिक संचार, नेतृत्व तथा वर्गीय भावनाएँ।
5. संगठन में कार्यरत व्यक्तियों की विविध भूमिकाएँ।
6. प्रशासनिक कार्यप्रणाली, संगठनात्मक व्यवहार तथा कार्मिकों के मध्य अंतः संबंध।
7. नीति एवं निर्णय को प्रभावित करने वाले एवं उससे संबंद्ध तंत्र।
8. प्रशासनिक एवं संगठनात्मक कार्यकुशलता तथा निष्पादन मूल्यांकन।
9. संचार की संपूर्ण प्रणाली
10. संसाधनों तथा प्रशासनिक लक्ष्यों के क्रम में अंतरसंबंध।

लोकप्रशासन में बढ़ती विशेषज्ञता तथा विकास प्रशासन की आवश्यकता ने कई शाखाओं जैसे आर्थिक प्रशासन, सामाजिक प्रशासन, स्वास्थ्य प्रशासन, शैक्षिक प्रशासन, ग्रामीण प्रशासन, नगरीय प्रशासन, वित्तीय प्रशासन, कार्मिक प्रशासन, राज्य प्रशासन, सुधार प्रशासन, पर्यावरण प्रशासन तथा ऊर्जा प्रशासन इत्यादि को जन्म दिया है जो तुलननात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के लिए लोकप्रिय क्षेत्र भी बन रहा है।

निष्कर्षतः तुलनात्मक लोक प्रशासन का क्षेत्र भी उतना ही विस्तृत हो सकता है जितना कि स्वयं लोक प्रशासन का कार्य क्षेत्र है। इसमें नियोजन, संगठन, कार्मिक, निर्देशन, समन्वय, प्रतिवेदन, बजट, नीति, विधि, जनसंपर्क तथा कार्यक्रम कार्यान्वयन सहित प्रशासन के पर्यावरणीय कारकों के आधार पर गहन या व्यापक अनुसंधान आवश्यकतानुसार किए जाते हैं।

1.2.4 तुलनात्मक लोक प्रशासन का महत्त्व

लोक प्रशासन को ब्रिटेन, अमेरिका या फ्रांस के संदर्भ में समझने की अपेक्षा, इसे संपूर्ण विश्व के लिए समान वैज्ञानिक विषय के रूप में स्थापित करने के क्रम में तुलनात्मक अध्ययन का विशिष्ट महत्व है। तुलनात्मक लोक

प्रशासन की विचारधाराएँ तथा अनुसंधान प्रवृत्तियाँ निस्संदेह इस विषय को लोकप्रियता के शिखर पर ले आयी हैं। तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययनों ने क्षेत्रवाद या स्थानीयवाद की संकीर्णताओं को समाप्त किया है तथा समग्र लोक प्रशासन को विशाल, गहन, उपयोगी तथा लोकप्रिय बनाया है। प्रविधि (Methodology) पर आधारित तुलनात्मक लोक प्रशासन ने सिद्धांत निर्माण की दिशा में वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया है अतः इससे सामाजिक विश्लेषण के क्षेत्र को विस्तृत बनाने की प्रक्रिया को प्रोत्साहन मिला है।

तुलनात्मक लोक प्रशासन की विशिष्ट समस्याओं तथा महती आवश्यकताओं के क्रम में रोबर्ट डाहल कहते हैं–''विश्व में कार्यरत लोक प्रशासन तथा दूसरी संस्थाएँ व्यापक विभेदों से युक्त हैं। देशों की कार्यशील जनसंख्या में से नौकरशाही के रूप में कार्य करने वालों की संख्या में भी भारी भिन्नता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में 18 प्रतिशत, फ्रांस में 33 प्रतिशत तथा स्वीडन में 38 प्रतिशत कार्यशील जनसंख्याँ सरकारी सेवाओं में है। अमेरिका में 70 प्रतिशत तो दूसरी ओर इटली में मात्र 13 प्रतिशत सत्ता स्थानीय संस्थाओं तक विकेन्द्रीकृत की गई है। सन् 1951–81 के मध्य अमेरिका में मात्र 1.3 प्रतिशत लोक सेवाओं का विस्तार हुआ, जबकि स्वीडन में 23 प्रतिशत विस्तार हुआ। ब्रिटेन में 50 प्रतिशत कार्मिक, लोक निगमों में कार्यरत हैं जबकि अमेरिका में यह आंकड़ा मात्र 8 प्रतिशत है।'' ऐसी स्थिति में स्वाभाविक रूप में ऐसे सर्वमान्य प्रशासनिक सिद्धांतों एवं नियमों की आवश्यकता प्रतीत होती है जो विश्व स्तर पर लोक प्रशासन की सामान्यीकृत रूपरेखा प्रकट कर सकें किन्तु यह सहज कार्य नहीं है क्योंकि प्रत्येक देश की संस्कृति, समस्याएँ एवं पर्यावरण भिन्न प्रकृति के हैं।

तुलनात्मक लोक प्रशासन के महत्व को इंगित करते हुए एडवर्ड शिल्स कहते हैं–''विभिन्न समाजों की व्यवस्थित तुलना करके उनकी समरूपता एवं विलक्षणताओं को इंगित और स्पष्ट किया जा सकता है।'' तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन की इस अवधारणा ने निस्संदेह राजनीति विज्ञान तथा लोक प्रशासन की दूरियां कम की हैं जो विकास प्रशासन एवं नीति विज्ञान के क्रियान्वयन के लिए भी आवश्यक है, इसके अतिरिक्त तुलनात्मक लोक प्रशासन के निम्नांकित लाभ या गुण भी बताए जा सकते हैं–

1. इसके कारण सामाजिक अनुसंधान का क्षेत्र व्यापक तथा गहन हुआ है जो पूर्व में सीमित, संकीर्ण तथा स्थूल प्रकृति का था।
2. तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययनों ने प्रशासन के क्षेत्र में सिद्धांत निर्माण तथा सामान्यीकरण को बढ़ावा दिया है।
3. इस अध्ययन पद्धति में वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया जाता है अतः आत्मकेन्द्रित रहने या स्वसंस्कृति से आबद्ध रहने के स्थान पर व्यापक दृष्टिकोण पल्लवित हुआ है।
4. इस इध्ययन पद्धति में केवल वर्णनात्मक विवरण के स्थान पर तुलनात्मक विश्लेषण का प्रयोग होता है अतः सामाजिक विश्लेषण का क्षेत्र विस्तृत हुआ है।
5. तुलनात्मक लोक प्रशासन की अध्ययन पद्धति ने विश्व के विभिन्न देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं के मध्य तुलना एवं विश्लेषण को बढ़ावा दिया है जिससे एक दूसरे के अनुभव से सीखा जा सकता है तथा कुछ सार्थक निष्कर्ष भी निकाला जा सकता है।
6. इस पद्धति के कारण लोक प्रशासन के विद्यार्थियों, वैज्ञानिकों तथा प्रशासकों को दूसरे देशों की व्यवस्था को समझने में मदद मिली है तथा इसका क्षितिज विस्तृत है।

इस प्रकार तुलनात्मक लोक प्रशासन एक वैज्ञानिक प्रकृति की विश्वव्यापी अवधारणा है जो कुछ सामान्यीकृत सिद्धांत विकसित करने को उत्सुक है।

'अपनी प्रगति जांचिए' (Check your progress)

1. तुलनात्मक लोक प्रशासन से आपका क्या अभिप्राय है?

2. एफ. डब्ल्यू. रिग्स ने तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन में कितनी प्रवृत्तियाँ (Trends) बताई हैं?

3. तुलनात्मक लोक प्रशासन के महत्व के सम्बन्ध में दो बिन्दु लिखिए।

1.3 तुलनात्मक लोक प्रशासन की उत्पत्ति :

लोक प्रशासन में तुलनात्मक दृष्टिकोण का प्रारम्भ अपेक्षाकृत नवीन अवधारणा है। यह सामाजिक विज्ञानों में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करता जा रहा है। द्वितीय विश्वयुद्ध तक स्वतंत्र विषय के रूप में प्रायः यह अज्ञात था किन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद की परिस्थितियों ने लोक प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन को उपयोगी एवं सार्थक बनाया। वास्तव में तुलनात्मक लोक प्रशासन द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद ही एक Academic Discipline (अध्ययन के विषय) के रूप में विकसित हो पाया। इसका अर्थ यह नहीं है कि द्वितीय विश्वयुद्ध से पहले लोक प्रशासन में तुलनात्मक तत्त्व बिल्कुल नहीं था। लोक प्रशासन के साहित्य में तुलनात्मक तत्त्व निश्चित ही था लेकिन इस साहित्य में अर्न्तसांस्कृतिक तुलनात्मक अध्ययनों की कमी थी।

उपरोक्त पृष्टभूमि में लोक प्रशासन के अध्ययन को दो भागों में बांटा जा सकता है जिनका वर्णन निम्नलिखित है –

1.3.1 द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व

तुलनात्मक लोक प्रशासन का इतिहास अधिक प्राचीन नहीं है। एक स्वतंत्र अध्ययन विषय के रूप में इसका प्रारम्भ वुडरो विलसन के कार्यकाल से हुआ था। उसके निबंध 'प्रशासन का अध्ययन' ने इसका सूत्रपात 1887 में किया। विलसन के विचारों में तुलनात्मक तत्त्व की झलक यूरोप के कुछ प्रशासनिक व्यवहार, जो संयुक्त राज्य अमेरिका में अपनाए, गए में मिलती है। जब अमेरिकी प्रशासन की लूट प्रणाली ने देश में राजनीतिक और प्रशासनिक उलझनें पैदा की तो विलसन का मत सार्थक दिखाई देने लगा तथा नागरिक सेवा एवं प्रशासन के दूसरे क्षेत्रों में सुधार की योजनाएँ प्रस्तावित होने लगी। अमेरिका में प्रशासनिक सुधार के लिए विदेशी प्रशासनिक व्यवहारों से प्रेरणा ली जाने लगी और प्रशासनिक अध्ययन में तुलनात्मक झलक आने लगी।

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में एफ. डब्ल्यू. टेलर ने वैज्ञानिक प्रबंध के आन्दोलन का सूत्रपात किया। यह आंदोलन क्रमशः अंर्तराष्ट्रीय आंदोलन बन गया। इसने न केवल अमेरिका की प्रशासनिक विचारधारा को प्रभावित किया वरन् सोवियत संघ आदि देशों के प्रशासनिक व्यवहार पर भी प्रभाव डाला। टेलर के सिद्धांत उत्पादन के अनुकूल थे इसलिए विभिन्न देशों का ध्यान इनकी ओर आकर्षित हुआ। प्रशासन में कार्यकुशलता और मितव्ययता पर जोर दिया जाने लगा। इस काल में लोक प्रशासन पर लिखे ग्रन्थ इन दोनों मूल्यों से रंगे हुए हैं। 1920 से 1930 तक की लोक प्रशासन संबंधी रचनाएँ प्रबंधात्मक दृष्टिकोण से प्रभावित रही। इनमें लोक प्रशासन के कुछ सार्वलौकिक सिद्धांत खोजने की चेष्टा की गई ताकि इसे विज्ञान बनाया जा सके। ऐसी सभी चेष्टाएँ तुलनात्मक लोक प्रशासन के विकास की भूमिकाएँ थीं।

डॉ0 एल. डी. वाइट तथा प्रो0 विलोबी की बहुचर्चित रचनाएँ लोक प्रशासन के प्रारंभिक साहित्य की महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। इनमें लोक प्रशासन के अंर्तसांस्कृतिक एवं अंतर्राष्ट्रीय पहलू पर जोर दिया गया था। लोक प्रशासन के अध्ययन में वैज्ञानिक प्रणाली का प्रयोग करने पर ध्यान केन्द्रित था। इस वैज्ञानिक प्रणाली में तुलनात्मक तत्त्व का समावेश स्वाभाविक था। इसके बाद मानव संबंधों के अध्ययन का प्रचलन हुआ। उनके स्वरूप, प्रभावक तत्त्व, परिवर्तन आदि की जानकारी के आधार पर प्रशासनिक व्यवहार को समझने की चेष्टा की गई। मानव संबंधों के अध्ययन की प्रवृति, तत्कालीन औद्योगिक समाज की विशेष आवश्यकताओं की प्रतिक्रिया थी। इसमें अंर्तसांस्कृतिक तत्त्व विशेष नहीं था अतः तुलनात्मक लोक प्रशासन के विकास में विशेष योगदान नहीं कर सका।

इस प्रकार लोक प्रशासन के प्रारंभिक अध्ययन में तुलनात्मक विवेचन की पृष्ठभूमि नाममात्र की प्राप्त होती

है। विभिन्न देशों की प्रशासनिक संस्थाओं के संगठन तथा व्यवहार का तुलनात्मक अध्ययन करने का स्पष्ट, सजग और सार्थक प्रयास नहीं किया गया। लोक प्रशासन के ये परंपरागत अध्ययन अधूरे एवं असंतोषजनक थे। इसकी कुछ प्रमुख आलोचनाएँ निम्नलिखित हैं –

1. लोक प्रशासन का परंपरावादी दृष्टिकोण अप्रशासनिक तथ्यों की उपेक्षा करता है। इन लेखकों ने प्रशासनिक संस्थाओं का वर्णन मात्र ही किया, उनके प्रभावों और अराजनीतिक तत्त्वों पर विशेष ध्यान नहीं दिया। कोई प्रशासनिक संस्था अपने सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक वातावरण द्वारा ही भली प्रकार कार्य संपन्न कर सकती है।

2. इस दृष्टिकोण में गैरपाश्चात्य प्रशासनिक संस्थाओं की उपेक्षा की गई। इन लेखकों ने अपना अध्ययन पश्चिमी राष्ट्रों के विवेचन तक सीमित रखा। गैर–पाश्चात्य राष्ट्रों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं के अध्ययन की उपेक्षा की गई। ऐसी स्थिति में पर्याप्त तुलनात्मक अध्ययन संभव नहीं हो सका, इसके लिए विविधतापूर्ण प्रशासनिक संस्थाओं का विश्लेषण और व्याख्या अनिवार्य होती है। इससे अध्ययन व्यवस्थित, तथ्यपूर्ण, तार्किक और वैज्ञानिक बनता है।

3. यह दृष्टिकोण कुछ विशेष मूल्यों तक संकुचित रहा तथा संविधानवाद और पाश्चात्य उदार प्रजातंत्र के प्रति झुका हुआ था इन लेखकों ने अलोकतांत्रिक व्यवस्थाओं को अच्छा नहीं माना और वहाँ की प्रशासनिक संस्थाओं के अध्ययन की उपयोगिता स्वीकार नहीं की। द्वितीय विश्व युद्ध पूर्व जब इटली और जर्मनी में निरंकुशतंत्र स्थापित हुआ तब परंपरावादी लेखक चिंतित हुए। उन्हें अपनी कमियों का आभास होने लगा अतः प्रशासनिक चिंतन की गई विधियाँ खोजी जाने लगी।

4. यह दृष्टिकोण कानूनी रूप से औपचारिक था। संगठन और उसके कार्यों का लिखित रूप ही इसके अध्ययन का मुख्य बिन्दु था। उसकी वास्तविक कार्यप्रणाली में इसकी विशेष रूचि नहीं थी। प्रशासनिक संस्थाओं द्वारा जो अनेक कार्य संपन्न किए जाते हैं उनकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया।

5. इस दृष्टिकोण ने लोक प्रशासन का अध्ययन व्याख्यात्मक, विश्लेषणात्मक और समाधानात्मक रूप से नहीं किया, वरन् केवल वर्णनात्मक रूप में किया। ये लेख परिकल्पनाओं का परीक्षण और महत्वपूर्ण आंकड़ों का संग्रह नहीं करते थे और सिद्धांतों के विकास में रुचि नहीं लेते थे।

6. इस दृष्टिकोण में अध्ययन के अंर्तअनुशासनात्मक स्वरूप की उपेक्षा की गई थी। प्रशासनिक व्यवहार का सही विवेचन तभी किया जा सकता है जबकि संबंधित देश का सांस्कृतिक और सामाजिक वातावरण तथा सामाजिक विकास की विशेषताओं का संदर्भ जान लिया जाए। इसके लिए समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान आदि विषयों का अध्ययन सार्थक और उपयोगी बन जाता है। इस उपयोगिता का परंपरावादी दृष्टिकोण में कोई स्थान नहीं था। फलस्वरूप अध्ययनों का व्यापक स्वरूप विकसित नहीं हुआ।

7. परंपरावादी दृष्टिकोण की प्रकृति गैर–तुलनात्मक थी। इस काल में ऐसे ग्रन्थों की रचना हुई जो विभिन्न देशों, संस्कृतियों और मानव स्वभावों से संबंध रखते थे।

परम्परावादी दृष्टिकोण, एकांगी, अधूरा, अपर्याप्त और संकुचित होने के कारण कतिपय गंभीर आलोचनाओं का पात्र बना, किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि यह दृष्टिकोण कोई महत्व नहीं रखता। वस्तुतः प्रत्येक ज्ञान अपने प्रारंभिक विकास के समय सीमित और संकुचित ही होता है। यह प्रारंभिक चिंतन व्यवहार और तथ्यों की अपेक्षा सिद्धांत और दार्शनिक विवेचन से अधिक प्रभावित था। प्रारम्भ में यूरोपीय देशों के साम्राज्यों का जाल फैला हुआ था। उस समय एशिया और अफ्रीका में वे विकासशील राज्य नहीं थे जो आज कायम हैं। इन परिस्थितियों में परंपरावादी दृष्टिकोण स्वाभाविक था। उस समय विकासशील क्षेत्रों के अध्ययन के लिए उपयुक्त अनुदान उपलब्ध

नहीं था। सामाजिक विज्ञानों को पढ़ने की अध्ययन प्रणाली आज की भांति विकसित नहीं हो पाई थी। यह परंपरागत अध्ययन जिन विशेष परिस्थितियों में विकसित हुए उनमें जो संभव था, वही अपनाया गया।

परम्परावादी अध्ययन ने तुलनात्मक लोक प्रशासन के विकास को संभव बनाया, प्रोत्साहित किया और एक उचित पृष्ठभूमि प्रदान की। सत्ता, नियंत्रण, संचार, नियोजन, संगठन, समन्वय, कार्यकुशलता और मितव्ययता आदि परंपरागत प्रशासनिक अवधरणाएँ तुलनात्मक लोक प्रशासन के वर्तमान विद्यार्थियों के लिए पर्याप्त महत्व रखती हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि परंपरावादी दृष्टिकोण ने इस विषय को विकसित करने में सार्थक भूमिका का निर्वाह किया।

1.3.2 द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात्

लोक प्रशासन द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान Identity Crisis के दौर से गुजर रहा था। इस दौरान लोक प्रशासन के विद्वानों के द्वारा किया गया यह दावा कि लोक प्रशासन के सिद्धांत सार्वभौमिक हैं, को चुनौती दी गई। मानवीय संबंधी दृष्टिकोण भी इस विषय को दिशा निर्देशन देने में असफल रहा। इस प्रकार इस विषय के विद्वान कुछ नए trends खोजने और इस विषय को सही दिशा देने के लिए एक मुश्किल के दौर से गुजर रहे थे। इस संबंध में सुझाव दो तरफ से आए। एक तरफ तो एडविन स्टीन, साइमन तथा वाल्डो जैसे विद्वानों ने लोक प्रशासन को अधिक वैज्ञानिक बनाने के लिए वैज्ञानिक साहित्यों पर बल देना प्रारंभ किया। वहीं दूसरी तरफ रार्वट डाहल ने कहा कि ''जब तक लोक प्रशासन का अध्ययन तुलनात्मक नहीं होता तब तक इसका विज्ञान होने का दावा खोखला है।'' इस प्रकार रार्बट डाहल ने लोक प्रशासन में अधिक अंर्तसांस्कृतिक तुलनात्मक अध्ययनों पर दबाव डाला जिसके कारण इस विषय को न केवल दिशा निर्देशन मिला बल्कि ज्यादा से ज्यादा विद्वानों ने तुलनात्मक पहलु को अपने अध्ययन का केन्द्र बनाया। परिणामस्वरूप इस विषय पर काफी साहित्य का विकास हुआ।

लेकिन यहाँ एक प्रश्न उठता है कि क्या रार्बट डाहल एवं अन्य विद्वानों का अंर्तसांस्कृतिक तुलनात्मक अध्ययनों पर दबाव ही, इस विषय के विकास का एकमात्र कारण था। इस प्रश्न के उत्तर में यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि इसके अतिरिक्त अन्य भी बहुत सारे कारण इस विषय के विकास के संबंध में जिम्मेदार हैं जिनका वर्णन निम्न प्रकार है –

1.3.2.1 उत्पत्ति के मूल कारणः

1. परंपरागत दृष्टिकोण की अपर्याप्तता – परंपरागत दृष्टिकोण को अध्ययन की नई चुनौतियों के संदर्भ में अपर्याप्त पाया गया। इसकी अंतर्निहित विशेषताएँ परिवर्तित परिवेश में प्रभावपूर्ण सिद्ध नहीं हो सकी। डी0 वाल्डो के अनुसार –''यह दृष्टिकोण संस्कृति वर्धित, पश्चिमी यूरोप के देशों तक सीमित, कानूनी एवं औपचारिक और केवल आलेखों की परीक्षा तक सीमित था। इसमें सरकारी संस्थाओं के औपचारिक एवं स्थाई पहलू पर जोर दिया जाता था। इसमें कानूनों तथा औपचारिक संस्थाओं के समस्त राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक संदर्भों को पूर्णतः भुला दिया जाता था। यह दृष्टिकोण मुख्यतः वर्णनात्मक था, विश्लेषणात्मक या समस्या–समाधानकारी नहीं था। इसमें अध्ययनकर्ता केवल एक देश के प्रशासन की जानकारी प्राप्त कर सकता था, किंतु दूसरे देशों से उसकी समानता या अंतर देखने में असमर्थ था।'' इस दृष्टिकोण से गैर–पाश्चात्य अथवा विकासशील देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं का विश्लेषण संभव नहीं था। जब परंपरागत दृष्टिकोण की ये कमियाँ विद्वानों को खलने लगीं तो तुलनात्मक अध्ययन प्रणाली का प्रचलन और प्रसार हुआ।

2. द्वितीय महायुद्ध काल में विदेशों के लोक प्रशासन का परिचय – द्वितीय महायुद्ध के समय अमेरिका, ब्रिटेन आदि विकसित देशों के लोक प्रशासकों और विद्वानों ने विदेशों में लोक प्रशासन का परिचय प्राप्त किया। उन्हें वहाँ की प्रशासन व्यवस्था में अनेक नवीनताएँ और अपूर्व मौलिकताएँ दिखाई दी। फलतः उनमें एक तुलनात्मक विवेचन की अभिलाषा जाग्रत हुई उनकी इस जिज्ञासा ने तुलनात्मक लोक प्रशासन के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

3. अनुसंधान के नए उपकरणों और धारणाओं का उदय – द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद परिवर्तित परिवेश में नए व्यवसाय और उद्यम प्रारंभ हुए। विचारधारा, विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में हुए विकास ने प्रशासन की रूप–रचना को प्रभावित किया और तुलनात्मक अध्ययन का सूत्रपात किया। आधुनिक विचारकों ने लोक प्रशासन को परंपरावादी स्वरूप से निकाल वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करने की चेष्टा की। सर्वप्रथम यह आवश्यकता अनुभव की गई कि अन्य तथ्यों के साथ–साथ राष्ट्रीय सीमाओं का अतिक्रमण करने वाले प्रशासनिक व्यवहार के संबंध में कुछ निर्देश निर्धारित किए जाएँ। राबर्ट डहाल ने अपने निबंध ''The Science of Public Administration 1947" में इस आवश्यकता का उल्लेख किया। उन्होंने कहा कि जब तक लोक प्रशासन का अध्ययन तुलनात्मक नहीं होगा तब तक यह विज्ञान नहीं माना जा सकता। उनकी बौद्धिक जिज्ञासा रही कि अमेरिकी, फ्रांसीसी, ब्रिटिश लोक प्रशासन, विज्ञान तो हो सकते हैं, किन्तु क्या ऐसा लोक प्रशासन भी हो सकता है जिसमें अपने देश विशेष की व्यवस्था से स्वतंत्र सामान्य सिद्धांत हों? नई अवधारणा में यह अनुभव किया गया कि विश्व के राज्यों की प्रशासन व्यवस्था में समानता व पूर्णता की अपेक्षा भिन्नता के तत्व अधिक हैं, अतः साम्यवादी देशों, एशिया तथा अफ्रीका के नव–स्वतंत्र राज्यों के प्रशासन का व्यापक अध्ययन करना होगा। अब लोक प्रशासन को विज्ञान बनाने की दृष्टि से विभिन्न संस्कृतियों, राष्ट्रीयताओं तथा स्वभावों के संदर्भ में लोक प्रशासन के अध्ययन पर जोर दिया जाने लगा।

4. सहायता कार्यक्रम को व्यवहारिक बनाने के लिए विकासशील देशों की प्रशासनिक स्थिति का अध्ययन – द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विश्व राजनीति दो विरोधी गुटों में बंट गई। एक गुट का नेतृत्व संयुक्त राज्य अमेरिका (पूँजीवादी) तथा दूसरे गुट का नेतृत्व संघ (साम्यवादी) के हाथ में था। इनके बीच प्रत्येक स्तर पर शीत युद्ध छिड़ गया। शीतयुद्ध का मुख्य क्षेत्र नवोदित विकासशील देश थे। इनके आर्थिक और तकनीकी विकास में सहायता देकर प्रत्येक गुट ने इन्हें अपने साथ लेने का प्रयास किया। अमेरिका, सोवियत संघ आदि विकसित देशों ने संयुक्त राष्ट्र के माध्यम से तथा स्वतंत्र रूप से इन देशों को तकनीकी सहायता प्रदान की। इस सहायता को सार्थक और प्रभावशाली बनाने के लिए वहाँ प्रशासनिक सुधार किया जाना अनिवार्य समझा गया। उपयुक्त प्रशासनिक सुधार के बिना दी गई सहायता प्रभावहीन, निरर्थक बन जाती थी। अतः सहायता पाने वाले देशों की प्रशासनिक स्थिति का अध्ययन किया गया। तब ज्ञात हुआ कि प्रत्येक देश का लोक प्रशासन वहाँ की परिस्थितियों और वातावरण से प्रभावित होता है। प्रशासनिक संस्थाओं के सुचारू संचालन के लिए उपयुक्त वातावरण की खोज की गई और तुलनात्मक लोक प्रशासन का जन्म हुआ। विकसित देशों में लोकप्रशासन के विद्वानों ने अनेक अनुसंधान किए तथा विदेशों में क्षेत्रीय अनुभव प्राप्त किया। इन देशों में वहाँ के वातावरण के अनुसार प्रशासनिक संस्थाएँ विकसित करने के लिए धार्मिक मिशनों की भाँति प्रशासनिक मिशन भेजे गए। 1956 में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग प्रशासन (International Co-operation Administration) ने 40 से अधिक देशों में लगभग 200 लोक प्रशासन–विशेषज्ञ भेजे। इन लोक प्रशासन के विशेषज्ञों ने विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं का विश्लेषण कर उनमें सुधार के उपयोगी सुझाव दिए। इन सुझावों के अनुरूप प्रशासनिक सुधार संपादित किए गए।

5. स्वतंत्र अनुशासन के रूप में विकसित करने की आकांक्षा – तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन क्षेत्र में विचारकों की आकांक्षा थी कि विषय को एक स्वतंत्र अनुशासन के रूप में विकसित किया जाए। लोक प्रशासन के विद्वानों की इस जिज्ञासा ने इसे स्वतंत्र अनुशासन के रूप में विकसित किया।

6. लोक प्रशासन विषय–वस्तु का व्यवस्थित स्पष्टीकरण – तुलनात्मक दृष्टिकोण का विकास लोक प्रशासन की विषय वस्तु के व्यवस्थित स्पष्टीकरण के लिए भी उपयोगी माना गया। तुलनात्मक दृष्टिकोण के बिना प्रशासनिक संस्थाओं का सही अर्थ समझना संभव नहीं है। एडवर्ड शिल्स ने लिखा है कि विभिन्न समाजों की व्यवस्थित तुलना करके उनकी समरूपता एवं विलक्षणताओं को इंगित और स्पष्ट किया जा सकता है। जब व्यक्तिगत रूप से अलग–अलग देशों की शासन व्यवस्थाओं का अध्ययन किया जाता है तो अनेक तथ्य व्यख्या की परिधि से बाहर रह जाते हैं तथा सही रूप में स्पष्ट नहीं हो पाते।

7. अंतर्राष्ट्रीय पारस्परिक निर्भरता – तुलनात्मक अध्ययन के विकास में विभिन्न राष्ट्रों की पारस्परिक निर्भरता ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। आज इण्डोनेशिया अथवा कांगों में किसी प्रशासनिक संगठन की सफलता केवल बौद्धिक जिज्ञासा का विषय नहीं है वरन् मास्को, वाशिंगटन और लंदन के लिए यह व्यवहारिक महत्व का विषय है। किसी देश में प्रशासनिक सुधार के लिए तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक है। विचारों का आदान–प्रदान क्षेत्रीय सीमाओं के अवरूद्ध नहीं होता है। दूसरे देशों में किए गए विभिन्न प्रशासनिक प्रयोगों का लाभ उठाते हुए एक देश अपने वातावरण एवं परिस्थिति के अनुसार उचित कदम उठा सकता है। विकासशील देशों में पाश्चात्य लोक प्रशासन की संस्थाओं का प्रभाव इसका स्पष्ट प्रमाण है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के नवोदित राष्ट्रों के अभ्युदय ने प्रशासनिक प्रयोगों के लिए आधार–भूमि निर्धारित की है। भविष्य में इन देशों के प्रशासनिक शोध अधिक संपन्न राज्यों के लिए लाभदायक साबित हो सकते हैं। आजकल विकासशील देशों में सरकारी निगमों का व्यापक प्रयोग किया जा रहा है जो प्रशासनिक प्रयोग ही है।

8. सामाजिक संदर्भ का महत्व – तुलनात्मक लोक प्रशासन के विकास में एक सहायक तत्व यह रहा है कि लोक प्रशासन तथा सामाजिक रूप रचना का घनिष्ठ संबंध रहता है। एक जैसी प्रशासनिक संस्थाएँ दो देशों में भिन्न व्यवहार करती हैं जिनके परिणाम अलग–अलग निकलते हैं। कारण यह है कि प्रत्येक देश की सामाजिक रूप–रचना वहाँ के प्रशासनिक संगठन के रूप तथा प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं। यह तथ्य लोक प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है। यदि एक संस्था या प्रक्रिया किसी देश में सफल रही है तो दूसरे देश में उसे अपनाने से पूर्व उस देश के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक संदर्भो का समुचित ध्यान रखा जाना चाहिए।

9. सामाजिक विश्लेषण का प्रभाव – लोक प्रशासन में तुलनात्मक विवेचना के कारण सिद्धांत रचना को वैज्ञानिक आधार मिला है। फलस्वरूप सामाजिक विश्लेषण का क्षेत्र व्यापक बना है। नवोदित विश्व के राष्ट्र ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, भौगोलिक परिस्थिति, जनसंख्या आकार, सामाजिक रूप–रचना, आर्थिक विकास आदि की दृष्टि से अनेक भिन्नताएँ रखते हैं। इन विभिन्नताओं के कारण सामाजिक विश्लेषण में तुलनात्मक अध्ययन की अनेक समस्याएँ उठती हैं जिनके फलस्वरूप तुलनात्मक लोक प्रशासन के संदर्भ में ईकॉलॉजी के अध्ययन का महत्व बढ़ गया। इस क्षेत्र में विद्वानों ने नए मॉडल, दृष्टिकोण, अध्ययन तरीके विकसित किए तथा अनेक ग्रंथों की रचना की गई।

10. व्यवहारिक–कानूनी दृष्टिकोण का महत्व – जब समाज विज्ञानों में व्यवहारवादी क्रांति हो रही थी और ज्ञान के व्यवहारिक पहलू पर जोर दिया जा रहा था तो लोकप्रशासन में व्यक्ति के वास्तविक व्यवहार को अध्ययन का केन्द्र बनाया जाने लगा। अब कानूनी औपचारिक दृष्टिकोण में परिवर्तन आ गया। फलतः तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन को नई दिशा मिली।

उक्त कारणों से विद्वानों का ध्यान लोक प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन की ओर आकर्षित हआ। इस क्षेत्र में अनेक नवीन विकास हुए। विचारकों और विद्वानों ने महत्वपूर्ण साहित्य की रचना की। अमेरिका आदि देशों में इस विषय को महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में अध्ययन के लिए शामिल किया गया। कुछ स्थानों पर यह स्नात्तक अध्ययन के लिए विशेषीकरण का क्षेत्र बना दिया गया।

1.3.2.2 तुलनात्मक अध्ययन का व्यवस्थित प्रारम्भ एवं विकासः

तुलनात्मक लोक प्रशासन का व्यवस्थित ढंग से प्रारम्भ प्रिंस्टन कान्फ्रेंस जो 1952 में प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी में हुई से मानते हैं। यह कान्फ्रेंस Public Administration Clearing House के द्वारा बुलाई गई। इस कान्फ्रेंस में लोक प्रशासन से संबंधित कमेटी के तहत तुलनात्मक लोक प्रशासन संबंध में एक उप–समिति का गठन किया गया। 1953 में अमेरिकन पोलिटिकल साईंस एसोसिएशन ने तुलनात्मक लोक प्रशासन के संबंध में एक adhoc उप–समिति गठित की जो तुलनात्मक प्रशासनिक समूह के बन जाने तक इस विषय पर काम करती रही। तुलनात्मक लोक प्रशासन का एक Academic Discipline के रूप में विकास को पुनः दो भागों में बांट कर पढ़ा जा सकता है।

(1) CAG Phase

(2) Post CAG Phase

1. CAG Phase: तुलनात्मक प्रशासनिक समूह का गठन 1963 में अमेरिकन सोसाएटी आफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन की एक समिति के रूप में किया गया। इसे वित्तीय सहायता प्रदान करने वाली मुख्य एजेंसी फोर्ड फाउंडेशन थी क्योंकि इस एजेंसी की रूचि उभरते हुए राष्ट्रों की बहुआयामी समस्याओं के बारे में अधिक से अधिक जानकारी हासिल करने में थी। आरंभ में तीन वर्षों के लिए फोर्ड फाउन्डेशन ने तुलनात्मक प्रशासन समूह को वित्तीय सहायता प्रदान की जो बाद में अगले 5 वर्षों के लिए पुनः बढ़ा दी गई। 8 वर्षों में लगभग आधा मिलियन डालर की वित्तीय सहायता फोर्ड फाउंडेशन के द्वारा CAG को दी गई। 1971 में इस अनुदान का नवीनीकरण नहीं किया गया परंतु यह समूह अन्य क्षेत्रों से मिलने वाली सहायता के बल पर अपना अस्तित्व बनाए रखने में सफल रहा। आरंभ से लेकर 1970 तक फ्रेड रिग्स इस समूह का अध्यक्ष रहा और 1970 में उनका स्थान रिचर्ड गैबल ने लिया।

तुलनात्मक प्रशासनिक समूह (सी.ए.जी.) का गठन 3 मुख्य उद्देश्यों को लेकर किया गया –

1. शोध की मात्रा को बढ़ाना।
2. पाठन सामग्री एवं तरीकों को बेहतर बनाना।
3. विकास प्रशासन के क्षेत्र में बढ़िया लोक नीतियाँ बनाने एवं लागू करने के लिए प्रोत्साहन देना।

इन उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु **सी.ए.जी.** ने एक लंबा चौड़ा Network तैयार किया। परिणामस्वरूप विभिन्न विषयों पर बहुत सारी Special कान्फ्रेंस एवं सेमीनारों जो न केवल अमेरिका में करवाने थे बल्कि अन्य देशों में भी करवाने हेतु एक विस्तृत Schedule तैयार किया गया। **सी.ए.जी.** ने लोक प्रशासन के विद्वानों एवं प्रशासनिक अधिकारियों के मध्य सेतू का काम किया।

सी.ए.जी. का क्षेत्र अंतर्राष्ट्रीय स्तर का रहा क्योंकि इसने एशिया, अफ्रीका, लैटिन अमेरिका एवं यूरोप के देशों के लोक प्रशासन के संबंध में अधिाधिक तुलनात्मक अध्ययन किए। इस कार्य को करने हेतु **सी.ए.जी.** ने 11 कमेटियों का गठन किया। ये समितियाँ दो आधारों पर विभक्त थी। एक वे समितियाँ जिनका आधार भौगोलिक था तथा दूसरी वे समितियाँ जिनका आधार विषय–वस्तु था। भौगोलिक आधार पर 4 समितियाँ बनाई गई जो निम्नलिखित हैं –

1. कमेटी ऑन एशिया
2. कमेटी ऑन यूरोप
3. कमेटी ऑन लैटिन अमेरिका
4. कमेटी ऑन अफ्रीका

विषयवस्तु के आधार पर 7 समितियाँ बनाई गई जो निम्नलिखित हैं –

1. तुलनात्मक शहरी अध्ययनों पर समिति 2. राष्ट्रीय आर्थिक नियोजन पर समिति 3. तुलनात्मक शैक्षिक प्रशासन पर समिति 4. तुलनात्मक विधायनी अध्ययनों पर समिति 5. अंतर्राष्ट्रीय प्रशासन पर समिति 6. आरगैनाइजेशन थ्यौरी पर सीमिति 7. स्टिमस थ्यौरी पर समिति।

सी.ए.जी. ने लोक प्रशासन विशेषतौर पर तुलनात्मक लोक प्रशासन के क्षेत्र में विभिन्न देशों में बहुत सारे सेमीनार एवं कान्फ्रेंस आयोजित किये और बहुत सारी शोध सामग्री का विकास किया जो बाद में 1969 में ड्यूक यूनिवर्सिटी प्रैस के द्वारा सी.ए.जी. के साथ मिलकर 7 Volumes में प्रकाशित की गई। 1969 में ही सेज पब्लिकेशन

ने एक Quaterely Journal on Comparative Administration, CAG के साथ मिलकर निकालना आरंभ किया। सी.ए.जी. एक New letter भी नियमित रूप से प्रकाशित करता था जो सभी समितियां जो भिन्न–भिन्न जगहों पर कार्यरत थी, के मध्य संपर्क का मुख्य साधन था।

तुलनात्मक प्रशासनिक समूह के विद्वान अत्यधिक प्रबुद्ध थे जिन्होंने तुलनात्मक लोक प्रशासन से संबंधित नए रास्ते खोलने की कोशिश की और इसे अर्न्तविषयी प्रकृति का बनाने में सराहनीय कार्य किया। इनमें से कुछ प्रमुख विद्वान–प्रो0 रिग्स, फैरल हैडी, विलियम सिफिन, जान मांटगोमरी, रॉलफ ब्राइवैन्ती, फ्रेडरिक क्लीवलैण्ड, जैम्स हैफी इत्यादि हैं। 1971 में फोर्ड फाउंडेशन के द्वारा वितीय सहायता बंद कर दिए जाने के बाद भी सी.ए.जी. 1973 तक अन्य आय के साधनों के कारण कार्य करता रहा।

2. Post-CAG Phase: 1973 में CAG को अमेरिकन सोसाएटी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन की अंतर्राष्ट्रीय समिति के साथ जोड़ दिया गया और एक नई समिति Section on International and Comparative Administration (SICA) का गठन किया गया। अब सी.ए.जी की अपनी अलग पहचान नहीं थी। इसलिए 1980 के दशक में Comp. Public Administration Movement का भविष्य उतना चमकदार नहीं था जितना सी.ए.जी. फेज के दौरान था। इसी कारण 1980 के दशक में सी.ए.जी. के द्वारा संचालित कार्यक्रमों को काफी हद तक कम कर दिया गया।

SICA के अस्तित्व में आने के बाद उसके दो मुख्य केन्द्र बिन्दु थे– एक तुलनात्मक लोक प्रशासन जो विभिन्न राष्ट्रों एवं क्षेत्रीय प्रशासनिक व्यवस्थाओं के तुलनात्मक अध्ययन से संबंधित था तथा दूसरा अंतर्राष्ट्रीय प्रशासन– जो अंतर्राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय शांति एवं सहयोग को बनाए रखने वाली ऐजेन्सियों के प्रशासनिक संगठन एवं कार्यों के अध्ययन से संबंधित था। SICA का मुख्य उद्देश्य इन दोनों बिंदुओं के मध्य एक कड़ी को स्थापित करने का था, जिसमें यह फेल रहा। यह तथ्य 1998 में जब SICA ने अपनी Silver Jublee उत्सव 25 साल बाद मनाया, उसमें खुलकर सामने आया। इन दोनों केन्द्र बिन्दुओं पर SICA के विद्वानों का झुकाव अलग–अलग समय पर अलग–अलग रहा। जब–जब SICA के चैयरमैन एवं इसकी कार्यकारी परिषद के सदस्यों में बदलाव आया तब–तब अलग–अलग केन्द्र बिन्दु मुख्य बिन्दु के रूप में अध्ययन का केन्द्र रहे। इसका कारण यह था कि SICA के अधिकतर सदस्य राजनीति विज्ञान के थे लेकिन उनके उप–विषय अलग–अलग थे। जिन विद्वानों का केन्द्र बिन्दु अन्तर्राष्ट्रीय प्रशासन रहा उनका Specialistion अंतर्राष्ट्रीय संबंध में था और जिन विद्वानों का केन्द्र बिन्दु तुलनात्मक लोक प्रशासन था उनका specialisation लोक प्रशासन में था।

हालांकि 1998 में Public Administration Review Journal जो अमेरिका से प्रकाशित होता है में एक article लिखते समय फैरल हैडी ने कुछ ऐसे मुद्दों की तरफ इंगित किया, जो दोनों केन्द्र बिन्दुओं से संबंधित हैं। उसने इन मुद्दों को प्रश्नों की शक्ल में उठाया है। इस प्रकार भविष्य में SICA से ऐसी आशा है कि वह इन दोनों अध्ययन क्षेत्रों में अच्छा सामंजस्य स्थापित करने में सफल रहेगा।

'अपनी प्रगति जांचिए' (Check your progress)

4. तुलनात्मक लोक प्रशासन की उत्पत्ति को मोटे तौर पर कितने फेजों में बांटा जा सकता है?

5. तुलनात्मक प्रशासनिक समूह का गठन मुख्य तौर से किन उद्देश्यों को लेकर किया गया?

6. तुलनात्मक प्रशासनिक समूह ने अपनी समितियों का गठन मुख्य तौर से किन दो आधारों पर किया?

7. SICA की स्थापना कब की गई?

1.4 विकासशील देशों की प्रशासनिक विशेषताएँ

विकासशील देशों को तीसरे विश्व के देशों के नाम से भी जाना जाता है। तीसरे विश्व के देशों में एशिया,

अफ्रीका और लैटिन अमरीका के देश आते हैं जो लंबे समय तक विदेशी शासकों के शोषण अथवा गुलामी का शिकार रहे हैं। स्वाधीनता के बाद विकासशील देश विकास के पथ पर अग्रसर हुए। सरकार लोक नीतियों का निर्माण करती है तथा उन नीतियों के कार्यान्वयन के लिए लोक प्रशासन पर निर्भर रहती है। लोक प्रशासन में इन कार्यों को लोक–सेवक संपन्न करते हैं। लोक–सेवक विविध प्रकार के कार्य निष्पादित करते हैं। इसके अतिरिक्त पुराने नियामक कार्य, जैसे नियम और आदेश का रख–रखाव, राजस्व का संग्रह, राज्य को आक्रमण से बचाना के अतिरिक्त वे अब लोगों को अनेक सेवाएँ प्रदान कर रहे हैं। जीवन की आधुनिक सुख–सुविधाओं का प्रावधान यथा शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, भुखमरी, गरीबी तथा यातायात का सुधरा हुआ स्वरूप जैसे सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन के महत्वपूर्ण लक्ष्य हैं जो हर जगह विशेष रूप से तीसरी दुनिया के विकासशील अधिकांश देश राष्ट्र निर्माण तथा तीव्र गति से सामाजिक–आर्थिक विकास की प्रक्रिया में लगे हुए हैं। जैसा कि सर्वविदित है कि ये समस्त कार्य प्रशासन के द्वारा संपन्न किए जाते हैं इसलिए विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं के मुख्य लक्षणों का विश्लेषण करते वक्त निम्न बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है। तीसरी दुनिया के देशों की प्रशासनिक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

1. प्रशासन का उपनिवेश और पश्चिमी प्रतिमान : विकासशील देशों के प्रशासन की एक महत्वपूर्ण विशेषता पश्चिमी देशों एवं उपनिवेश के प्रशासन का प्रतिरूप है। प्रायः ये देश पूर्व शासकों की प्रशासन प्रणाली को अपनाते हैं और इनकी स्वयं शासन पद्धति नहीं होती। यहाँ तक कि जो पश्चिमी उपनिवेशिकता की गिरफ्त में नहीं आए, फेरल हैडी कहते हैं ''वहाँ भी आधुनिक पश्चिमी अधिकारी तंत्रीय प्रशासन की कुछ विशेषताएँ जानबूझकर लागू की गई हैं।'' औपनिवेशिक काल में नौकरशाही सत्तावादी, एकीकृत, अनुत्तरदायी, स्वेच्छाचारी, अप्रजातांत्रिक भावना से पीड़ित थी। स्वतंत्रता के बाद विकासशील देशों को अपने विकास कार्यक्रमों को जनता तक पहुँचाने के लिए अपनी स्वयं की नयी नौकरशाही की स्थापना तथा आवश्यकता के अनुसार प्रशासन में बदलाव लाना अपेक्षित था। ऐसा न होने पर अतीत की परंपराएँ और विरासत अपनी स्वयं की संस्कृति पर हावी हो गई। भारत के संदर्भ में कुलदीप माथुर का विचार सत्य है कि 'औपनिवेशक विरासत अपनी स्वयं की संस्कृति और आचार–विचार लिए हुए, विकास कार्यों के लिए अयोग्य थी।'' नौकरशाही अपने आप को समय और परिस्थिति के अनुसार बदलने के लिए और विकास की प्रक्रिया के अनुरूप नवीन चिंतन और कार्य–शैली अपनाने की दिशा में अग्रसर हो रही है। फिर भी यह सुधार संतोषप्रद नहीं कहा जा सकता।

2. निपुण कार्मिक और प्रशासनिक स्टाफ की कमी : विकासशील देशों में विकास कार्यक्रमों और परियोजनाओं का प्रबंध करने वाले निपुण कार्मिक और प्रशासनिक स्टाफ की कमी होना है इन देशों में कुशल जन–शक्ति की कमी है न कि कार्मिकों की। वास्तव में निम्न स्तर पर कार्य करने वालों की कमी नहीं है, कमी तो प्रशिक्षित और निपुण प्रशासकों की है। हमारे यहाँ शिक्षित नवयुवकों में अत्यधिक बेरोजगारी होने के बावजूद प्रशिक्षित प्रबंधकों की कमी है। आजकल प्रबंधकीय कौशल का विकास किया गया है और हमें वित्तीय प्रबंध, कर्मचारी प्रबंध, सामान्य–सूची प्रबंध आदि के लिए विशेषज्ञों की आवश्यकता है, परंतु विकासशील देशों में ऐसी व्यवस्था अपेक्षाकृत कम हैं। विकासशील देशों में कुशल जनशक्ति की कमी के तीन कारण हैं– 1. मानव संसाधन की कमी, विकास नियोजन और शिक्षण व्यवस्था की कमी, 2. भर्ती और प्रशिक्षण की अनुचित नीतियाँ और 3 बुद्धिजीवी अपवाह (Brain Drain)। संक्षेप में विकासशील कार्यक्रम के लिए इन देशों का प्रशासन आवश्यक सक्षम मानव शक्ति से रहित है और इनमें प्रबंध क्षमता विकासात्मक कौशल और तकनीकी दक्षता रखने वाले प्रशिक्षित प्रशासकों की कमी है।

3. केन्द्रीकृत अधिकारी तन्त्र ढांचा : विकासशील देशों में लोक–सेवाएँ सत्ता और नियंत्रण में केन्द्रीकृत होती हैं। यह अतिकेन्द्रीकरण शासकीय विभागों एवं मंत्रालयों में देखने को मिलता है जहाँ निर्णय लेने में लोक–सेवकों, विशेषकर मध्य और निम्न स्तर के लोगों को कम अवसर मिलता है। इन्हें विकास प्रक्रिया में भी कम हिस्सा लेने का अवसर प्राप्त होता है। इस प्रकार इन देशों में नौकरशाही का झुकाव स्वायतत्ता तथा शक्ति प्रदान करने की ओर

होता है। प्रशासनिक पद्धति में तकनीकी विशेषज्ञता की दृष्टि से प्रशासनिक अधिकारियों का एकमात्र अधिकार होता है। उन्हें व्यावसायिक विशेषज्ञ होने का भी सम्मान प्राप्त होता है। इन देशों में राजनीतिक दल दुर्बल होते हैं और विकसित देशों की तरह जन–समूह के प्रतिनिधि नहीं होते हैं और प्रशासनिक प्रक्रिया से अनभिज्ञ होते हैं। ऐसी स्थिति में अधिकारी–तंत्र अधिक सबल हो जाता है।

4. भ्रष्ट तथा अकुशल प्रशासन : विदेशी शासकों के चगुंल से मुक्त हुए इन देशों की प्रशासनिक व्यवस्था भ्रष्टाचार तथा अकार्यकुशलता के कीचड़ में आकंठ डूबी हुई नजर आती है। राष्ट्रीय संसाधनों, राष्ट्रीय कानूनों तथा सत्ता का दुरुपयोग यहाँ आम बात है क्योंकि इन देशों की सामाजिक व्यवस्था में राष्ट्रप्रेम का छद्म स्वरूप होता है। वस्तुतः न्यूनाधिक मात्रा में प्रत्येक नागरिक स्वयं को राष्ट्र से पृथक समझता है। स्वतंत्रता का अर्थ स्वछंदता से लगाया जाता है। यही कारण है कि विकासशील देशों के लोक सेवक जिस मात्रा में अपने अधिकारों के लिए सचेत पाये जाते हैं, उसी मात्रा में कर्त्तव्यों के प्रति लापरवाह भी होते हैं।

सारे कुएँ में भांग पड़ी होने के कारण किसी एक संस्था को भ्रष्टाचार के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है। सन् 1997 में जारी भ्रष्ट देशों की सूची में सर्वोच्च स्थान नाइजीरिया का रहा है तत्पश्चात् बोलिविया, कोलम्बिया, रूस, पाकिस्तान, मैक्सिको, इन्डोनेशिया तथा 8वां स्थान भारत का था जबकि डेनमार्क, फिनलैण्ड, स्वीडन, न्यूजीलैण्ड, कनाडा, हालैण्ड, नार्वे तथा आस्ट्रेलिया भ्रष्टाचार से लगभग मुक्त हैं। विकासशील देशों में भ्रष्टाचार समाप्ति के यदा–कदा सरकार के प्रयास होते रहते हैं। सामाजिक स्तर पर सभी चाहते हैं कि यह व्यवस्था सुधरे। भारत में भी हर व्यक्ति चाहता है कि भगतसिंह पैदा हों, लेकिन पड़ौसी के घर।

5. प्रशासन के सम्मुख चुनौतियाँ : विकासशील देशों में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा भौगोलिक दृष्टि से नित्य नई चुनौतियाँ उत्पन्न होती रहती हैं। इन चुनौतियों का सामना करना प्रशासन का दायित्व माना जाता है। अधिकांश विकासशील देशों में प्राकृतिक, वित्तीय, मानवीय तथा तकनीकी संसाधनों का स्तर शोचनीय पाया जाता है। इन देशों में प्राकृतिक आपदाओं जैसे बाढ़, सूखा, महामारी, तूफान, भूकंप तथा आगजनी इत्यादि के साथ–साथ सामाजिक रूढ़ियों के कारण नित्य नई समस्याएँ उत्पन्न होती रहती हैं। अधिकांश विकासशील राष्ट्र उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में स्थित हैं जहाँ गर्मी की अधिकता मानव स्वास्थ्य को विपरीत रूप से प्रभावित करती है। संक्रामक रोगों का व्यापक प्रसार तथा कुपोषण के कारण इन देशों में स्वास्थ्य का स्तर निम्न पाया जाता है। गरीबी, बेरोजगारी, जनाधिक्य तथा संसाधनों की कमी के चलते इन समाजों की प्रशासनिक व्यवस्था सदैव चुनौतीपूर्ण कार्यों में जूझती रहती है। इन देशों की अर्थव्यवस्था मूलतः कृषि–प्रधान होती है जबकि कृषि कार्य आप में 'एक जुआ' सिद्ध होता है। भाग्यवादिता, कर्मकांडता तथा अंधविश्वासों का प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से लोक प्रशासन पर भी दिखाई पड़ता है। विकासशील देशों का प्रशासनिक तंत्र, कमजोर अर्थव्यवस्था, भ्रष्टाचार, गरीबी, मानवाधिकारों के हनन, सामाजिक असमानता, व्यापार घाटे तथा बेरोजगारी जैसी परंपरागत चुनौतियों या समस्याओं के साथ–साथ अब आतंकवाद, साम्प्रदायिता, भाषावाद, क्षेत्रवाद, जातिवाद, प्रदूषण तथा नशीली दवाओं के व्यापार एवं हथियार की होड़ जैसी विषम समस्याओं से भी जूझ रहा है।

6. सामान्यज्ञों का वर्चस्व : विकासशील देशों में औपनिवेशिक काल की विरासत आज भी सम्मानपूर्वक प्रवर्तित है सामान्यज्ञ या प्रशासनिक सेवाओं के अधिकारी लोक प्रशासन के उच्च पदों पर आसीन रहते हैं तथा राजनीतिज्ञों (मंत्रियों) को परामर्श देने का कार्य करते हैं। राजनीतिज्ञ एवं सामान्यज्ञ अधिकारी मिलकर लोक नीति, कानून तथा विकास कार्यक्रमों का निर्माण करते हैं जिनका क्रियान्वयन विशेषज्ञ सेवाओं के अधिकारी को करना होता है। अधिक तकनीकी क्षमता एवं कौशल से युक्त विशेषज्ञ अधिकारी, सामान्यज्ञों के अधीन रहते हुए प्रायः कुंठा एवं निराशा के शिकार हो जाते हैं। यही कारण है कि भारत के सामान्यज्ञ–विशेषज्ञ विवाद बरसों से जारी हैं क्योंकि तकनीकी विकास एवं सामाजिक परिवर्तन के वर्तमान दौर से जहाँ प्रशासन की अवधारणा तेजी से जड़ें जमा रही है, विशेषज्ञों की उपेक्षा राष्ट्रहित में नहीं है।

7. उलझा हुआ एवं समस्याग्रस्त प्रशासन : विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्था जटिल, उलझी हुई तथा बिखराव की समस्याओं से युक्त दिखाई देती हैं इन देशों में प्रायः विकसित देशों की नकल पर विविध प्रकार के प्रशासनिक अभिकरण गठित किए जाते हैं। यदि कोई विभाग या संस्था कार्य संचालन में असफल सिद्ध होती है तो उस संस्था पर एक और नियंत्रक संस्था स्थापित कर दी जाती है। इस प्रकार विकासशील राष्ट्रों में विकसित राष्ट्रों के समान प्रशासनिक संगठनों जैसे, विभाग, बोर्ड, आयोग, परिषद, निगम, सरकारी कंपनी से लेकर अर्थ स्वायत्त संस्थानों तक सभी प्रकार के संगठन कार्यरत होते हैं। किंतु कार्यकुशलता का स्तर निरंतर नीचे की ओर अग्रसर रहता है। सामान्यतः इन देशों का लोक प्रशासन समस्याग्रस्त प्रशासन माना जाता है जो राष्ट्रीय या सामाजिक समस्याओं का समाधान ढूंढने की अपेक्षा स्वयं की समस्याओं से ही जूझता रहता है। जैसे–

- नौकरशाही या लोक सेवाओं का आकार निरंतर बढ़ता रहता है, किंतु कुशलता उसी अनुपात में वृद्धि नहीं करती है।
- भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति, वेतन भत्ते तथा पेंशन इत्यादि के कर्मिक प्रकरण सदैव विवादग्रस्त बने रहते हैं।
- स्वयं लोक सेवक तथा आम जनता प्रशासनिक निर्णयों के विरूद्ध बड़ी संख्या में वाद दायर करती है।
- सेमिनार, संगोष्ठी कार्यशाला तथा प्रशिक्षण इत्यादि की महज औपचारिकताएं पूरी की जाती हैं। अंतिम निष्कर्ष अत्यंत निराशाजनक होता है।
- राष्ट्रीय संसाधनों का दुरूपयोग आम जनता से कहीं अधिक नौकरशाह करते हैं। प्रशासनिक विभागों का आधे से अधिक बजट केवल वेतन–भत्तों पर व्यय होता है।
- प्रत्येक कार्य मे ंनियमों, कानूनों तथा प्रक्रियाओं की अनावश्यक औपचारिकताएं पूर्ण की जाती हैं, चाहे कार्य कितना ही छोटा या आपातकालीन परिस्थिति से संबद्ध क्यों न हो।
- प्रशासनिक संगठनों के आंतरिक कार्यकरण में जाति, वर्ग, भाषा, धर्म, लिंग तथा नस्ल इत्यादि पर आधारित भेदभाव एवं संघर्ष स्पष्ट दिखाई देता है।
- अति महत्वाकांक्षी, कर्मठ, योग्य तथा प्रतिबद्ध कार्मिकों को प्रायः निराशा के दौर से गुजरना पड़ता है अतः इन देशों की प्रतिभाएँ विकसित राष्ट्रों की ओर पलायन कर जाती हैं।
- प्रशासनिक गोपनीयता के कारण पारदर्शिता, सूचना का अधिकार तथा लोक जवाबदेयता सुनिश्चित नहीं हो पाती है।
- शिकायत निवारण व्यवस्था प्रायः निष्क्रिय तथा स्वार्थी तत्वों से युक्त होने के कारण उपहास एवं अविश्वास की शिकार रहती है।
- प्रत्येक कार्य को उलझाने तथा दूसरों पर टालने के लिए 'समिति व्यवस्था' के दुरूपयोग की यहाँ सामान्य परंपरा होती है।

8. राजनीतिक हस्तक्षेप की अधिकता : यद्यपि विश्व के समक्ष देशों में कार्यपालिका के शीर्ष पर राजनीतिक व्यक्ति ही पदासीन होते हैं तथा उन्हीं के दिशा–निर्देशों पर प्रशासनिक कार्य संचालित होते हैं तथा विकासशील देशों में राजनीति का प्रशासन के क्षेत्र में हस्तक्षेप आवश्यकता से अधिक रहता है। लोक प्रशासन में उच्च पदों से लेकर निम्न पदों तक भाई भतीजावाद तथा राजनीतिक प्रश्रय की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। भारत सहित बहुत से अन्य विकासशील राष्ट्रों में तबादला उद्योग, प्रशासनिक अकर्मण्यता का प्रमुख कारण बन चुका है। अपने राजनीतिक स्वार्थों के चलते कोई भी दल स्पष्ट तथा व्यावहारिक स्थानांतरण नीति निर्मित नहीं करता है।

इन देशों में भ्रष्ट राजनीतिज्ञों, पूंजीपतियों, उच्च नौकरशाहों तथा अपराधियों का एक ऐसा गठजोड़ बन जाता है जो संपूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था तथा समाज को खोखला एवं पंगु बना कर रख देता है। स्वतंत्र न्यायपालिका का सिद्धांत, व्यवहार में बहुत कम दिखाई पड़ता है। समूची व्यवस्था को नियंत्रित करने हेतु बनाए गए कानून प्रभावी नहीं होते हैं। इस संबंध में गोल्डस्मिथ ने कहा था– 'यहाँ कानून निर्धनों पर शासन करते हैं और धनी व्यक्ति कानूनों पर शासन करते हैं।' लोक सेवकों को राजनीतिक दृष्टि से तटस्थ या निष्पक्ष माना जाता है जो अनाम रहकर प्रशासनिक कार्य संपादित करते हैं जबकि राजनीतिक तटस्थता एक छद्म विश्वास है।

9. जनसहयोग का अभाव : विकासशील देशों का प्रशासन सामान्यतः विकास प्रशासन का पर्याय माना जाता है जो नियोजित सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन हेतु अनेक प्रकार के कल्याणकारी एवं विकासपरक कार्यक्रम संचालित करता है। स्पष्ट है विकास प्रशासन की सफलता जन सहभागिता पर निर्भर करती है किंतु दुर्भाग्य का विषय है कि इन देशों में वे व्यक्ति प्रशासनिक कार्यों में सहयोग नहीं करते हैं जिनके लिए विकास कार्य संचालित किए जाते हैं। वस्तुतः निरक्षता, गरीबी, सामाजिक पिछड़ापन, नौकरशाही का अहं, स्वार्थ–भावनाएँ तथा कामचोरी की प्रवृत्ति विकास कार्यक्रमों में जन सहभागिता में कमी लाती है।

10. प्रशासनिक सामंजस्य : विकासशील देशों में प्रशासनिक पद्धति में विकसित देशों की तुलना में सामंजस्य का अभाव देखने को मिलता है। भारत जैसे संघीय राज्य में प्रशासनिक सामंजस्य प्रशासन के सुचारू संचालन के लिए बड़ा महत्वपूर्ण है। वास्तव में राज्य की नीतियों तथा कार्यक्रमों को लागू करना तब तक संभव नहीं है जब तक उनमें सहयोग और सामंजस्य न हो। सामंजस्य एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका तात्पर्य है कि सामंजस्य इकाइयों, विभागों एवं वित्तीय अभिकरणों, जो देश के एक कोने से दूसरे कोने तक फैले हुए हैं, उनके कार्यों में एकता और सहयोग होना चाहिए। प्रशासन की कुशलता के लिए सामंजस्य आवश्यक तथा प्रशासनिक क्षेत्र में यह एक महत्वपूर्ण तत्व है, परंतु विकासशील देशों में इस पर गंभीरतापूर्वक विचार नहीं हो रहा है।

11. नवीन चुनौतियाँ और दायित्व : विकासशील देशों के प्रशासन के समक्ष अनेक नवीन चुनौतियाँ तथा दायित्व उपस्थित हुए। इन देशों को देश की एकता और अखण्डता को बनाए रखने, आर्थिक–सामाजिक और तकनीकी विकास की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने, गरीबी, अशिक्षा, उच्च जीवन स्तर, आधुनिकीकरण, खाद्यान्न की कमी, महंगाई, बेरोजगारी, मुद्रास्फीति, विभिन्न सामाजिक समूहों में सामंजस्य बनाए रखने जैसी चुनौतियों का सामना करना पड़ा ऐसी गंभीर चुनौतियों का सामना करने के लिए विरासत में मिली प्रशासनिक तंत्र–व्यवस्था में आधारभूत परिवर्तन करके ही प्राप्त किया जा सकता था। किंतु उपरोक्त गंभीर एवं जटिल समस्याओं का सामना करने के लिए विकासशील देशों की प्रशासनिक तंत्र व्यवस्था सक्षम और तैयार नहीं है। इस दिशा में सामयिक और साहसिक कदम उठाने की आवश्यकता है।

12. सेवीवर्ग का मात्रात्मक और गुणात्मक पक्ष : स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद विकासशील देशों में राज्य के कार्यों में वृद्धि होने तथा नवीन विभागों, मंत्रालयों आदि संगठनों की स्थापना के कारण लोक–सेवकों की संख्या में निरंतर वृद्धि हुई है। भारत जैसे विकासशील देश में संख्या 1948 और 14,45,050 थी जो इससे बढ़कर पंचम वेतन आयोग के अनुसार 38. 76 लाख हो गई। मात्रात्मक वृद्धि के साथ गुणात्मक दृष्टि से लोक सेवकों की सेवा के स्तर में गिरावट आयी है। आज प्रशासन बेईमानी और भ्रष्टाचारी का प्रतीक बन गया है। मात्रात्मक वृद्धि के अनुपात में गुणात्मक वृद्धि नहीं हुई है। यह हमारे प्रशासन का सबसे गंभीर और शोचनीय विषय है।

13. परिवर्तन से परहेज : विकासशील देशों में सामाजिक तथा प्रशासनिक, दोनों ही स्तरों पर यथास्थिति को बनाए रखने के प्रयास होते रहते हैं। जब कभी राज्य एवं अन्य संस्थाओं द्वारा सुधार कार्यक्रम संचालित किए जाते हैं तब उन कार्यक्रमों का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से विरोध किया जाता है। यही कारण है कि विकासशील देशों की प्रशासनिक संरचनाएँ आज भी उपनिवेशवाद की विरासत को ढो रही हैं। परिवर्तन की कल्पनामात्र से समाज तथा

लोक सेवक नकारात्मक रूख धारण कर लेते हैं। यद्यपि इन देशों में प्रशासनिक सुधार एवं नवाचार के प्रयास होते हैं किंतु वे केवल कागजी अभ्यास सिद्ध होते हैं।

14. नौकरशाही तथा उनके स्वार्थ : विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्था की एक विशिष्ट विशेषता यह है कि नौकरशाही के कर्मचारी संस्था के उद्देश्यों की अपेक्षा अपने निजी स्वार्थों की पूर्ति को अधिक महत्व देते हैं। विकसित देशों में भी ऐसी इच्छाएँ होती हैं परन्तु वे संस्था के लक्ष्यों को सर्वोपरि महत्व देते हैं। विकासशील देशों के अधिकारी तंत्र उत्पादनविमुख न होकर कुछ अन्य हैं। यहाँ पद के साथ जो महिमा, प्रतिष्ठा जुड़ी हुई है वह उपलब्धि पर नहीं बल्कि पद पर आरोपित गरिमा के कारण है और इसी से उनके व्यवहार को समझा जा सकता है। अयोग्य व्यक्तियों को योग्यता का विचार न करके पदोन्नति मिल जाती है। इससे कार्मिक प्रथाएँ, अनुशासन एवं पदोन्नतियाँ प्रभावित होती हैं। वहाँ भ्रष्टाचार व्यापक रूप में फैला है। अधिकारी न केवल अपने स्वार्थों की रक्षा करते हैं बल्कि अपने बिरादरी के लोगों के स्वार्थों की भी रक्षा करते हैं। संक्षेप में विकासशील देशों में पक्षपात्, भाई–भतीजावाद प्रशासनिक पद्धति का एक भाग है और यह बुराई समाज का एक अंग बन गई है।

15. करनी व कथनी में अंतर : इन देशों के प्रशासन की अन्य विशेषता यह है कि इनकी करनी व कथनी में काफी अन्तर पाया जाता है। इस अंतर को रिग्स ने औपचारिकता की संज्ञा दी है। इसमें वस्तुओं को ऐसे रूप में प्रस्तुत किया जाता है जैसा उन्हें होना चाहिए, किंतु वास्तव में वे वैसी नहीं होती। सरकारी प्रस्तावों और उनके कार्यान्वयन में पर्याप्त अंतर होता है और बहुत सारे कानून बिल्कुल ही लागू नहीं होते तथा उनका सरेआम उल्लंघन किया जाता है। सार्वजनिक स्थानों पर धूम्रपान निषेद्य संबंधी कानून का उल्लंघन भारत में सरेआम देखने को मिलता है।

1.5 विकसित देशों की प्रशासनिक विशेषताएँ :

विकसित देश संपन्न, उन्नत और समृद्ध हैं। विकास परिवर्तन और आधुनिकीकरण इनकी विशेषताएँ हैं। विकसित देशों में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिवर्तनों की एक सुनिश्चित दिशा है। ये देश लोकतंत्र के प्रतीक बन गए हैं तथा राजनीतिक स्थिरता के उदाहरण हैं। इस प्रकार इन देशों में विकास की समस्त पृष्टभूमि तैयार है और परिवर्तन और विकास का क्रम सुव्यवस्थित है। विकसित राष्ट्रों में आधुनिकता का आशय भौतिकवाद से नहीं बल्कि विचारों की उत्कृष्टता से लिया जाता है इन राष्ट्रों के सदियों पूर्व विकास के कारण इनकी राजनैतिक संस्थाएँ अत्यंत परिपक्व, विकसित तथा प्रतिबद्ध प्रकृति की हैं अतः इन देशों में लोक प्रशासन का स्वरूप भी पूर्णतया विकसित हो चुका है। फ्रांस, अमेरिका, जापान तथा ब्रिटेन इत्यादि विकसित देशों की प्रशासनिक व्यवस्था में परिपक्वता स्पष्ट रूप से लक्षित होती है। विधि के शासन की अवधारणा ने इनके संपूर्ण प्रशासनिक तंत्र को जवाबदेह एवं विकासोन्मुख बना दिया है। इसके साथ–साथ इनकी सामाजिक तथा आर्थिक समृद्धता ने इनके लोक प्रशासन को आधिकाधिक विकसित बनाने में भरपूर योगदान दिया है। इन देशों के लोक प्रशासन की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

1. राष्ट्र एवं संविधान के प्रति प्रतिबद्धता : विकसित देशों के नागरिक अपने देश के संविधान, राष्ट्रगान, राष्ट्रध्वज, राष्ट्रीय प्रतीकों तथा राष्ट्रीय कानूनों के प्रति अगाध श्रद्धा रखते हैं। यही कारण है कि इन देशों के नागरिकों तथा प्रशासन के मध्य सहयोग एवं सामंजस्यता का भाव दिखाई देता है। संविधान एवं कानून के प्रति दृढ़ आस्था के कारण ही नागरिक, राजनेता तथा लोक सेवक राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति संवदेनशील होते हैं। प्रत्येक नागरिक तथा सरकारी कार्मिक हर वक्त यह प्रयास करता है कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उनके देश की छवि धूमिल न हो पाए तथा उनका देश सबसे आगे एवं सबसे अलग दिखाई दे।

2. उत्तरदायी एवं कुशल लोक सेवाएँ : चूंकि विकसित देशों के नागरिकों में राष्ट्रभक्ति का स्तर अत्यंत ऊँचा होता है अतः प्रशासनिक उत्तरदायित्वों का निर्वहन भी सफलतापूर्वक किया जाता है। किसी भी नागरिक, उपभोक्ता या आम व्यक्ति को प्रशासन द्वारा हुई हानि या असुविधा की क्षतिपूर्ति प्रदान करना एक सामान्य परंपरा है। इन देशों में

प्रशासनिक कार्यकुशलता, लोकप्रियता, संवेदनशीलता तथा उपादेयता के क्रम में निरंतर शोध एवं नवाचार किए जाते हैं। व्यक्ति के जन्म पूर्व से लेकर मृत्यु के उपरांत तक लोक प्रशासन द्वारा सेवा की अवधारणा यहाँ मूर्त दिखाई देती है। प्रशासनिक कुशलता के लिए विकेन्द्रीकरण को इन देशों में पर्याप्त महत्व दिया जाता है। विकासशील देशों में प्रचलित सामान्तवादी व्यवस्था विकसित देशों में नहीं पायी जाती है। यही कारण है कि विकसित देशों में चपरासी का पद प्रायः नहीं होता है।

3. लोक सेवाओं का लोकतांत्रिक स्वरूपः जनता का जनता के लिए तथा जनता के द्वारा प्रशासन, अर्थात् प्रजातंत्र की यह आधुनिक लोकप्रिय अवधारणा विकसित समाजों में यथार्थ एवं व्यापक रूप से लागू होती है। प्रशासन का स्वरूप सैद्धांतिक रूप से ही लोकतांत्रिक नहीं होता है बल्कि व्यावहारिक रूप में भी लोक प्रशासन पूर्ण प्रजातंत्रात्मक प्रतीत होता है। लोक सेवकों के व्यवहार में जनता के स्वामी जैसा भाव नहीं, बल्कि 'जन सेवक' का वास्तविक भाव रहता है क्योंकि लोकतंत्र में सत्ता, जनता में निहित होती है लोक सेवाओं में समानता, न्याय तथा स्वतंत्रता का अधिकार सभी के लिए समान रूप से उपलब्ध है। कार्मिकों को संघ बनाने तथा हितों के लिए संघर्ष करने की छूट दी गई है।

4. योग्यता को वरीयता : लोक सेवाओं में भर्ती के लिए योग्यता को व्यापक मान्यता प्राप्त है। अधिसंख्य सामान्य प्रशासकीय एवं विशेषज्ञ पदों पर नियुक्ति या चयन से पूर्व प्रतियोगी परीक्षा को उत्तीर्ण करना आवश्यक होता है। योग्यता निर्धारण की ये प्रतियोगी परीक्षाएं अत्यंत विशद, गंभीर तथा विश्वसनीय प्रकृति की मानी जाती हैं। अमेरिका सहित कतिपय अन्य विकसित देशों में उच्च स्तरीय पद, राष्ट्रपति की इच्छा से भरे अवश्य जाते हैं किंतु इन पदों की नियुक्तियाँ विधायिका द्वारा अनुमोदित होती हैं। कोई भी राष्ट्रपति यह नहीं चाहता कि वह उच्च एवं विश्वसनीय पदों पर अयोग्य व्यक्तियों को अवसर देकर जनाक्रोश का शिकार बने।

5. विशेषज्ञता का प्रसार : विज्ञान एवं प्रोद्यौगिकी का प्रसार निस्संदेह विकसित देशों में अधिक हुआ है जो इनकी उन्नति का मूलाधार भी बना है। विज्ञान तथा तकनीकी विकास ने लोक प्रशासन के कार्यक्षेत्र में विशेषज्ञता को बढ़ावा दिया है। अतः प्रशासन में भी स्थूल से सूक्ष्म तथा सामान्य से विशिष्टता की ओर झुकाव में वृद्धि हुई है। प्रत्येक कार्य को संपादित करने के लिए अनेक विशिष्ट प्रशासनिक अभिकरण जैसे विभाग, बोर्ड, आयोग, निगम तथा न्यायाधिकरण इत्यादि स्थापित किए गए हैं। लोक सेवाओं में भी प्रत्येक पद की विशेषज्ञ योग्यताएँ निर्धारित की गई हैं तथा प्रशिक्षण को भी तदनुसार विकसित किया गया है।

6. विशेषज्ञों का महत्व : विकासशील राष्ट्रों में सामान्यज्ञ अधिकारियों का वर्चस्व रहता है जबकि विकसित राष्ट्रों में वैज्ञानिक, डॉक्टर, इंजिनियर इत्यादि विशेषज्ञ अधिकारियों को उच्च दर्जा प्रदान किया गया है। अमेरिका, जापान तथा जर्मनी में विशेषज्ञ अधिक सम्मानित हैं वहीं ब्रिटेन तथा फ्रांस में इन्हें कम से कम सामान्यज्ञों के अधीनस्थ स्थिति में नहीं रखा गया है। वस्तुतः तकनीकी विकास की जटिलताओं तथा ज्ञान के बढ़ते क्षितिज ने विशेषज्ञों की प्रशासन में भूमिका महत्वपूर्ण बना दी है।

7. उच्चस्तरीय समन्वय : समन्वय प्रशासनिक संरचनाओं की महत्वपूर्ण प्रक्रिया है जो संघर्ष तथा अतिराव को रोकती है। विकसित देशों में एक कार्य से संबंधित कई सरकारी, अर्द्धसरकारी तथा निजी संगठन कार्यरत होते हैं किंतु इन संगठनों के मध्य उत्पन्न होने वाले विवाद बरसों तक अनिर्णित अवस्था में नहीं रहते हैं बल्कि समय रहते राजनीतिज्ञों एवं शीर्षस्थ कार्यपालिक अधिकारियों द्वारा सुलझा दिए जाते हैं। विकसित देशों में लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन दोनों क्षेत्रों के संगठन परस्पर विचार–विर्मश करते रहते हैं।

8. पर्याप्त राजनीतिक चेतना : यद्यपि विकसित राष्ट्रों के लोक सेवक सामान्यतः राजनीतिक रूप से तटस्थ तथा अनाम रह कर कार्य करते हैं किंतु इन देशों के कार्मिकों में राजनीतिक अधिकारियों तथा स्वयं के हितों के प्रति पूर्ण चेतना पायी जाती है। फ्रांस में लोक सेवकों को सर्वाधिक राजनीतिक अधिकार प्रदान किए गए हैं लेकिन अन्य देशों में भी लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रसार एवं जनचेतना में वृद्धि के कारण पर्याप्त राजनीतिक अधिकार प्रदत्त हैं कर्मचारी अपनी मांगों एवं सुविधाओं में वृद्धि के लिए पर्याप्त सजग एवं प्रतिबद्ध दिखाई देते हैं। महिलाओं को प्रशासन में पर्याप्त प्रतिनिधित्व दिया गया है।

9. उत्तरदायित्व : विकसित देशों की प्रशासनिक व्यवस्था की एक प्रमुख विशेषता उसका लोक उत्तरदायित्व स्वरूप है। लोक प्रशासन पर जनता का नियंत्रण रहता है और प्रशासन अपने समस्त कार्यों के लिए जनता के प्रति उत्तरदायी होता है। इसकी अभिव्यक्ति मन्त्रिमण्डल का संसद के प्रति सामूहिक उत्तरदायित्व है।

10. जनसहयोग की पर्याप्तता : किसी भी प्रशासन की सफलता उसमें जनसहयोग या जन सहभागिता पर निर्भर करती है। विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं की तुलना में विकसित देशों के प्रशासन में जनसहभागिता की पर्याप्तता देखने को मिलती है। प्रशासन संबंधी नीतियाँ एवं निर्णय जनसमर्थन के आधार पर ही बनाए व लिए जाते हैं। प्रशासन के विभिन्न स्तरों पर लोगों की भागीदारी इन देशों में सुनिश्चित करने के प्रयास न केवल देखने को मिलते हैं बल्कि लोगों की वास्तविक रूप में सहभागिता दिखाई देती है।

11. प्रशासन पर राजनीतिक दलों का प्रभाव : विकासशील देशों के विपरीत विकसित देशों के लोक प्रशासन पर राजनीतिक दलों का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। अमेरिका में ब्रिटेन के विपरीत लोक सेवा पर दलबंदी का प्रभाव है। राष्ट्रपति को अपने कृपापात्रों, मित्रों एवं विश्वस्त लोगों को उच्च प्रशासनिक पदों पर नियुक्त करने का अधिकार प्राप्त है। यही लोग नीति–निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। फ्रांस की लोक सेवा दलीय प्रभाव से अछूती नहीं है। वहाँ के लोक–सेवक दलीय गतिविधियों में हिस्सा तक लेते हैं। इस संबंध में ब्रिटेन की स्थिति कुछ भिन्न है। वहाँ लोक सेवा राजनीतिक तटस्थता का पालन करती है फिर भी राजनीतिक दलों की गतिविधियों से पूर्णतः मुक्त नहीं है। सरकार में परिवर्तन होने के साथ लोक–सेवकों को बदले हुए राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में अपनी भूमिका में परिवर्तन करते हुए उसके साथ सामंजस्य स्थापित करना पड़ता है। ऐसी परिवर्तित परिस्थिति में पहले की सरकार से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए लोक–सेवकों की स्थिति में परिवर्तन हो जाता है और उनका महत्वपूर्ण विभागों से गौण विभागों में स्थानातंरण किया जाता है। अनेक बार उनके पहले के कार्य–कलापों की जांच के लिए विभागीय जांच समितियों की स्थापना भी की जाती है। (भारत में यह दृश्य देखने को मिलता है) फिर भी ब्रिटेन की लोक सेवा पर दलीय प्रभाव अपेक्षाकृत कम है।

12. गतिशीलता की प्रवृत्ति : विकसित देशों का सामाजिक, आर्थिक तथा प्रशासनिक ढांचा प्रवृति का परिचायक है। इन देशों में परिवर्तन को सहजता से अंगीकार किया जाता है। अर्थव्यवस्था, राजनीतिक परिदृश्य, सामाजिक संरचना तथा तकनीकी विकास के संदर्भ में आए परिवर्तनों के अनुरूप प्रशासनिक व्यवस्था शीघ्रता से परिवर्तित हो जाती है। उदाहरण के लिए विगत एक दशक में ब्रिटेन में लोक सेवाओं का घटता आकार तथा निजीकरण की मांग के अनुरूप एक गतिशील परिवर्तन है। इसी प्रकार 'प्रशासनिक सुधारों' के प्रयास पूर्ण मनोयोग एवं इच्छा से क्रियान्वित होते हैं।

13. व्यापक कार्यक्षेत्र : विकसित देशों की प्रशासनिक व्यवस्था अत्यंत व्यापक एवं गंभीर कार्यक्षेत्र का प्रतिनिधित्व करती हैं। राज्य के लोक कल्याणकारी स्वरूप ने प्रशासन के कार्य क्षेत्र को न केवल व्यापक बना दिया है बल्कि

गुरुत्तर दायित्वों से भी युक्त कर दिया है। कृषि, उद्योग, परिवहन, संचार, रक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य, ऊर्जा, पर्यावरण संरक्षण से लेकर न्याय व्यवस्था तक प्रत्येक जीवनोपयोगी कार्य लोक प्रशासन के क्षेत्र में सम्मिलित हैं। राष्ट्र की सुरक्षा, आंतरिक शांति एवं व्यवस्था, विदेशी संबंध, सामाजिक सेवाओं का संचालन, अर्थव्यवस्था का नियंत्रण इत्यादि सभी कार्य प्रशासन की कार्य सूची में सम्मिलित होते हैं।

'अपनी प्रगति जांचिए'

8. विकासशील देशों के प्रशासन की दो विशेषताएँ लिखिए।

9. विकसित राष्ट्रों के प्रशासन की दो प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

1.6 सारांश :

तुलनात्मक लोक प्रशासन की अवधारणा लोक प्रशासन के अध्ययन क्षेत्र में अपेक्षाकृत एक नवीन अवधारणा है। लोक प्रशासन के उपविषय के रूप में इसका इतिहास लगभग 68 वर्ष ही पुराना है। इस विषय के आगमन से विभिन्न सांस्कृतिक संदर्भों में कार्यरत प्रशासनिक व्यवस्थाओं की परस्पर तुलनाओं के अध्ययन को बल मिला जिसके परिणामस्वरूप लोक प्रशासन के कार्यक्षेत्र के विस्तार के साथ–साथ इसके साहित्य में वैज्ञानिक दृष्टि का भी प्रादुर्भाव हुआ। तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययनों ने लोक प्रशासन के क्षेत्र में 'सिद्धांत' निर्माण एवं सामान्यीकरण को बढ़ावा दिया।

तुलनात्मक लोक प्रशासन के विकास में तुलनात्मक प्रशासनिक समूह; CAG) के विद्वानों का योगदान अहमभूत रहा है। ये विद्वान द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् नव–स्वतंत्र राष्ट्रों की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के प्रभाव की जांच इन राष्ट्रों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं पर करना चाहते थे ताकि इस दौरान उत्पन्न नवीन समस्याओं का समाधान किया जा सके। इन स्वतंत्र राष्ट्रों को विकासशील या तीसरी दुनिया के देश कहा जाता है। इस श्रेणी में एशिया, अफ्रीका, लैटिन अमेरिका के वे देश हैं जो लंबे समय तक गुलामी की बेड़ियों में जकड़े रहे तथा शोषण का शिकार हुए। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् इनकी स्थिति बहुत खराब थी और विकास के मार्ग पर आगे बढ़ना इनकी मजबूरी थी। लेकिन सरकार विकास नीतियों के निर्माण एवं प्रभावी संचालन हेतु काफी हद तक लोक प्रशासन पर निर्भर रहती है। अतः किसी भी देश के लोक प्रशासन को समझना आवश्यक बन जाता है। इसीलिए विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों की प्रशासनिक विशेषताओं का सविस्तार वर्णन किया गया है।

मुख्य शब्दावली (Key Terms)

- गैर–पारिस्थितीकी (Non-ecological) – प्रशासनिक अध्ययनों में पर्यावरण के प्रभाव को सम्मिलित न करना।
- विशिष्टता (Ideographic) : व्यक्ति परक अध्ययन
- सामान्यपरकता (Nomothetic) : समूह अध्ययन समसामयिक (Contemporary): एक ही समय के अध्ययन।
- संकरसामयिक (Cross-Contemporary) : अलग–अलग समय संबंधी अध्ययन
- विकसित राष्ट्र (Developed Nation) : वो राष्ट्र जो विकास के एक निश्चित स्तर प्राप्त कर चुके हैं।
- विकासशील राष्ट्र (Developing Nation) : वो राष्ट्र जो विकास की प्रक्रिया में अभी संलगित हैं और उस निश्चत स्तर पर नहीं पहुँच पाए हैं।

1.8 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर (Answer to 'check your progress')

1. लोक प्रशासन का तुलनात्मक आधार पर अध्ययन करना ही तुलनात्मक लोक प्रशासन कहलाता है।

2. एफ.डब्ल्यू रिग्स ने तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन में 3 प्रवृत्तियाँ (Trends) बताए हैं जो निम्नलिखित हैं :–

। आदर्शात्मक से अनुभवमूलक (Normative to Empirical)

। विशिष्टता से सामान्यपरकता (Ideographic to Nomothetic)

। गैरपारिस्थितिकी से पारिस्थितिकीय (Non-ecological to Ecological)

3. तुलनात्मक प्रशासन के महत्त्व संबंधी दो बिन्दु निम्नलिखित हैं –

। लोक प्रशासन के कार्यक्षेत्र का विस्तार

। लोक प्रशासन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण को बढ़ावा

4. तुलनात्मक लोक प्रशासन की उत्पत्ति को प्रमुखतौर पर दो फेजों में बांटा जा सकता है –

। द्वितीय विश्वयुद्ध पूर्व

। द्वितीय विश्वयुद्ध पश्चात्

5. तुलनात्मक प्रशासनिक समूह का गठन मुख्यतौर से निम्न तीन उद्देश्यों को लेकर हुआ –

। शोध की मात्रा बढ़ाना

। पाठन सामग्री एवं तरीकों को बेहत्तर बनाना

। विकास प्रशासन के क्षेत्र में अच्छी लोक नीतियाँ बनाने एवं लागू करने के लिए प्रोत्साहन देना।

6. तुलनात्मक प्रशासनिक समूह की समितियों का गठन निम्न दो आधारों पर किया गया था –

। भोगौलिक आधार पर

। विषय–वस्तु के आधार पर

7. SICA की स्थापना 1973 में की गई थी।

8. विकासशील राष्ट्रों की दो प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

। जनसहयोग का अभाव

। करनी एवं कथनी में अंतर/औपचारिकता

9. विकासशील राष्ट्रों की दो प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

। उत्तरदायी प्रशासन

। विशेषज्ञों को महत्त्व

1.9 अभ्यास हेतु प्रश्न (Questions for Exercise)

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. तुलनात्मक लोक प्रशासन को परिभाषित कीजिए।
2. तुलनात्मक लोक प्रशासन की प्रकृति का उल्लेख कीजिए।
3. तुलनात्मक लोक प्रशासन की महत्ता का वर्णन कीजिए।

4. तुलनात्मक लोक प्रशासन की उत्पत्ति के कारणों का विवरण दीजिए
5. CAG फेज पर टिप्पणी कीजिए।
6. SICA फेज के संबंध में नोट लिखिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. तुलनात्मक लोक प्रशासन का क्या अर्थ है? इसकी प्रकृति, कार्यक्षेत्र एवं महत्ता का सविस्तार वर्णन कीजिए।
2. तुलनात्मक लोक प्रशासन की उत्पत्ति के संबंध में एक निबन्ध लिखिए।
3. विकासशील देशों के प्रशासन की विशेषताओं का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
4. विकसित देशों की प्रशासनिक विशेषताओं की विस्तार सहित व्याख्या कीजिए।

प्रशासन का पर्यावरण एवं तुलनात्मक लोक प्रशासन के उपागम

(Environment of Administration and approaches of cpmparative Public Administration)

इकाई की रूपरेखा

2.0 परिचय

2.1 इकाई के उद्देश्य

2.2 पर्यावरण के अध्ययन का महत्त्व

2.3 लोक प्रशासन का सामाजिक पर्यावरण

2.4 लोक प्रशासन का सांस्कृतिक पर्यावरण

2.5 लोक प्रशासन का आर्थिक पर्यावरण

2.6 लोक प्रशासन का राजनैतिक पर्यावरण

2.7 तुलनात्मक लोक प्रशासन के उपागम

2.8 तुलनात्मक लोक प्रशासन का संरचनात्मक–प्राकार्यात्मक उपागम

2.9 तुलनात्मक लोक प्रशासन का पारिस्थितिकीय उपागम

2.10 तुलनात्मक लोक प्रशासन का व्यवहारवादी उपागम

2.11 सारांश

2.12 मुख्य शब्दावली

2.13 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

2.14 अभ्यास हेतु प्रश्न

2.15 आप ये भी पढ़ सकते हैं

2.0 परिचय

लोक प्रशासन एवं पर्यावरण का परस्पर गहरा संबंध है क्योंकि ये एक दूसरे को गहनतम रूप से प्रभावित करते हैं। जिस प्रकार से मानव अपने आस–पास के वातावरण से प्रभावित होता है, ठीक उसी प्रकार प्रशासन का पर्यावरण भी उस पर अपना प्रभाव डालता है। कार्ल मार्क्स के समय से ही माना जाता है कि व्यक्ति और समाज के समस्त क्रियाकलापों का स्वरूप उसकी बाह्य परिस्थितियों द्वारा निर्धारित होता है।

लोक प्रशासन का संगठन एवं उसकी क्रियाएं शून्य में जन्म नहीं लेती बल्कि उनके स्वरूप ग्रहण करने में उनके आसपास फैला सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं आर्थिक पर्यावरण गहरा प्रभाव डालता है। आज लोक प्रशासन के चिन्तकों का यह मानना है कि किसी भी प्रशासनिक व्यवस्था के समुचित ज्ञान हेतु उससे संबंधित पर्यावरण का अध्ययन आवश्यक है। यहाँ पर एक बात ध्यान देने योग्य है कि न केवल पर्यावरण ही लोक प्रशासन को प्रभावित करता है बल्कि लोक प्रशासन भी अपना प्रभाव आस–पास के पर्यावरण पर डालता है। इस प्रकार इन दोनों का संबंध एकपक्षीय न होकर द्विपक्षीय है।

इस इकाई में लोक प्रशासन के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनैतिक पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं का सविस्तार वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त इससे संबंधित तीन उपागमों का भी उल्लेख किया गया। ये तीनों उपागम लोक प्रशासन का तुलनात्मक ढ़ंग से अध्ययन करने में कारगर भूमिका का निर्वहन करते हैं।

2.1 इकाई के उद्देश्य (Unit Objectives)

इस इकाई को पढ़ने के निम्नलिखित उद्देश्य हैंः–

- लोक प्रशासन एवं पर्यावरण में परस्पर सम्बन्ध जानना।
- लोक प्रशासन तथा पर्यावरण के सम्बन्ध को जानना।
- सामाजिक पर्यावरण के महत्वपूर्ण पहलु जो लोक प्रशासन को प्रभावित करते हैं, की पहचान करना।
- सांस्कृतिक पर्यावरण के प्रशासन को प्रभावित करने वाले पहलुओं को ज्ञात करना।
- आर्थिक पर्यावरण तथा प्रशासन के सम्बन्ध का पता लगाना।
- राजनैतिक पर्यावरण तथा प्रशासन के मध्य अन्तः क्रिया को जानना।
- तुलनात्मक लोक प्रशासन के संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक उपागम से अवगत करवाना।
- तुलनात्मक लोक प्रशासन के पारिस्थितिकीय उपागम का अध्ययन करना।
- तुलनात्मक लोक प्रशासन के व्यवहारवादी उपागम की जानकारी देना।

2.2 पर्यावरण के अध्ययन का महत्त्व (Importance of the Study of Environment)

हम जानते हैं कि किसी देश का पर्यावरण, उसके प्रशासन पर गहरा प्रभाव डालता है। यही कारण है कि एक जैसी प्रशासनिक संस्थाएं अलग–2 पर्यावरणों में अलग प्रकार से कार्य करती हैं। यदि हम किसी देश के प्रशासनिक तन्त्र का समुचित ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं तो उस देश के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक परिवेश की पूर्ण समझ आवश्यक है। प्रारम्भ में लोक प्रशासन के अध्ययनों में पर्यावरण के अध्ययन को महत्त्व नहीं दिया जाता था, लेकिन द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् इस ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा। इस सम्बन्ध में प्रो0 रिग्स का योगदान सराहनीय है। एफ.डब्ल्यू. रिग्स द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'इकालोजी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन' ने लोक प्रशासन के विभिन्न विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया। रिग्स द्वारा इस पुस्तक में लोक प्रशासन तथा पर्यावरण के

मध्य परस्पर अन्तःक्रिया को तुलनात्मक ढंग से समझाने का प्रयास किया है। रिग्स के अतिरिक्त जॉन एम. गॉस, रार्वट डाहल, रास्कोई मार्टिन आदि विद्वानों ने भी लोक प्रशासन में पर्यावरण संबंधी अध्ययनों पर बल दिया। परिणामस्वरूप आज जब राज्य का स्वरूप प्रशासनिक हो गया है, तब किसी भी संस्था एवं संगठन के विषय में समुचित जानकारी ज्ञात करने हेतु उसके चारों ओर व्याप्त पर्यावरण की पूर्ण समझ व जानकारी आवश्यक हो गई है। अतः लोक प्रशासन में पर्यावरण संबंधी अध्ययन वर्तमान समय में काफी महत्त्व रखते हैं। यदि किसी देश की सफल प्रशासनिक व्यवस्थाओं को दूसरे देश में अपनाने का प्रयास किया जाता है तो उनकी सफलता हेतु उस देश में उपयुक्त पर्यावरण की व्यवस्था अवश्यंभावी बन जाती है अतः उस देश की समस्त परिस्थितियों का सूक्ष्म विवेचन किया जाना आपेक्षित है। उपयुक्त वातावरण के अभाव में इन प्रशासनिक संस्थाओं का सफल संचालन संभव नहीं है।

2.3 लोक प्रशासन का सामाजिक पर्यावरण

एक देश की सामाजिक रूप रचना, आदर्श मूल्य, आकांक्षाएँ, परम्पराएँ, रिवाज, लोक व्यवहार, विश्वास, सांस्कृतिक स्थिति आदि वहाँ के प्रशासन को प्रभावित करते हैं। लोक प्रशासन का मानवीय तत्त्व अपने समाज विशेष की उपज होता है। विभिन्न सामाजिक संस्थाएँ लोक कर्मचारियों के चरित्र की रचना करती हैं। प्रशासनिक पद पर आने से पहले प्रशासकों का जीवन के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण बन जाता है। यह दृष्टिकोण सभी प्रशासनिक निर्णयों तथा व्यवहारों का प्रेरणा स्रोत बन जाता है। अतः यह जरूरी है कि लोक प्रशासन के समुचित अध्ययन के लिए संगठन के कर्मचारियों की पारिवारिक और सामाजिक पृष्ठभूमि का अध्ययन किया जाए तथा संगठन के सकल सामाजिक पर्यावरण पर दृष्टिपात किया जाए। प्रत्येक देश का लोक प्रशासन अपने धार्मिक समुदायों, राजनीतिक दलों, व्यापार संस्थाओं, सामाजिक वर्गों आदि से प्रभावित होता है। इनकी पृष्ठभूमि में लोकसेवकों के व्यवहार, क्रिया–प्रतिक्रिया आदि का रूप निर्धारित होता है।

एफ. डब्ल्यू. रिग्स ने अपनी पुस्तक The Ecology of Public Administration में कहा है कि किसी समुदाय का सामाजिक परिवेश उसके संस्थानों, संस्थागत नमूनों, वर्ग, जाति–संबंधों, ऐतिहासिक वसीयत, परंपराओं, धर्म, मूल्यों की व्यवस्था, विश्वास, आदर्श आदि पर आधारित होता है। ये सभी तत्त्व प्रशासन पर बड़ा गहरा प्रभाव डालते हैं। लोक प्रशासन में मानवीय तत्व का विशेष प्रभाव होता है, इसलिए लोक प्रशासन का मानवीय तत्त्व समाज विशेष की उपज होता है। विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाएँ और संस्थाएँ लोक कर्मचारियों के चरित्र की रचना करती हैं।

लोक प्रशासन के सामाजिक पर्यावरण व उनकी अन्तःक्रियाओं को निम्नलिखित ढंग से स्पष्ट कर सकते हैं –

1. **वर्ग व्यवस्था और लोक प्रशासन** – प्रत्येक समाज में धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आधारों पर अनेक वर्ग बन जाते हैं। इन वर्गों के आपसी संबंध लोक प्रशासन को प्रभावित करते हैं। इन वर्गों के प्रतिनिधि उनके संगठन में उनके आपसी संबंधों का रूप निर्धारित करते हैं। जब नौकरशाही किसी वर्ग विशेष से जुड़ जाती है तो स्वयं एक वर्ग व्यवस्था का आधार बन जाती है। जब सामन्तवादी कुलीन लोग प्रशासक होते हैं तो वे स्वयंमेव उच्च वर्ग के बन जाते हैं। नागरिक सेवकों के संबंध सामान्य जनता के उच्च, मध्यम और निम्न सभी वर्गों से होते हैं।

   सामाजिक वर्गभेद द्वारा लोक प्रशासन के अनेक पहलुओं को प्रभावित किया जाता है। उच्च नागरिक सेवा के पदों पर उच्च वर्ग के लोगों की भर्ती और पदोन्नति की जाती है। निम्न वर्ग के लोगों को अवसर अल्प मात्रा में मिलता है। उनकी संख्या नगण्य होती है। उच्च पदों पर नियुक्त होने पर नौकरशाहों का उनके वर्ग से सम्पर्क टूट जाता है तथा उच्च वर्ग के साथ उनके जीवन का तादात्म्य स्थापित हो जाता है। अतः यह कहा जा सकता है कि प्रशासन द्वारा सामाजिक वर्ग रचना को गतिशील बनाया जाता है। योग्य तथा महत्वाकांक्षी अधिकारी

पदोन्नत होते हुए उच्च पद तक पहुँच जाता है तथा लोक सेवा के माध्यम से अपनी सामाजिक स्थिति सुधार लेता है।

2. **सामाजिक विकास एवं लोक प्रशासन** – प्रो0 रिग्स का विचार है कि उन्नत देशों में जटिल तथा औपचारिक संगठन होते हैं। जिस देश की समाज व्यवस्था कम विकसित होती है वहाँ संगठन बनाना उतना ही कठिन होता है। समाज में संगठनों की अल्पसंख्या से सामाजिक विकास अवरूद्ध हो जाता है। सामाजिक विकास तथा प्रशासनिक व्यवस्था परस्पर क्रिया–प्रतिक्रिया करते हैं। इसका समुचित विवेचन करने में विचारकों ने विशेष रूचि प्रदर्शित नहीं की है। इस क्षेत्र में बहुत कम अध्ययन हुआ है किन्तु सभी विचारकों की मान्यता है कि प्रशासनिक परिवर्तनों को संस्थागत बनाने के लिए सामाजिक तथा सांस्कृतिक तत्त्वों को ध्यान में रखना अनिवार्य है।

   प्रत्येक संस्कृति परिवर्तन या विकास के लिए सहायक और बाधक बन सकती है। इसमें दोनों प्रकार के तत्व रहते हैं। डेविड एप्टर ने विकास में सहायक तत्वों को Instrumental तथा बाधक तत्वों को 'Consumatory' कहा है। उनका कहना है कि आधुनिकीकरण उस समाज में होता है जहाँ संस्कृति के संस्थागत (Instrumental) तत्त्व पाए जाते हैं।

3. **सामाजिक मूल्य तथा प्रशासनिक व्यवहार** – प्रशासनिक व्यवहार उस देश के समाज द्वारा स्वीकृत मूल्यों से प्रभावित होता है। प्रशासनिक संगठन द्वारा कुछ मूल्य विकसित किए जाते हैं। इनमें जो प्रभावशाली होता है वही दूसरे मूल्यों को प्रभावित करता है। अनेक बार प्रशासनिक संस्कृति सामाजिक मूल्य संरचना से प्रभावित होती है। यह स्वाभाविक भी है। यदि नागरिक सेवकों की भर्ती कम उम्र में कर और उन्हें शेष समाज से दूर रखकर प्रशिक्षित किया जाए तो वे स्वयं मूल्य विकसित कर लेंगे जो समाज से भिन्न होंगे।

4. **सामाजिक परिषद् तथा लोक प्रशासन** – लोक प्रशासन की प्रकृति परिषदात्मक है। इसे विभिन्न अभिकरणों में बांट दिया जाता है। इन अभिकरणों को पृथक्–पृथक् काम सौंप दिए जाते हैं। ये काम किसी न किसी सामाजिक परिषद् से निकटवर्ती संबंध रखते हैं तथा लोक प्रशासन की नौकरशाही से संबंधित हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त सरकारी अभिकरण कानून को कार्यरूप प्रदान करते हैं तथा वे परिषदों से निकट संबंध स्थापित कर लेते हैं। परिषदों के अनेक हितों की पूर्ति प्रशासन एवं उसके कानूनों द्वारा की जाती है, बदले में परिषदें प्रशासन को पुरस्कृत करती हैं।

   लोक प्रशासन सामाजिक परिषदों का प्रशासनिक उपयोग करता है। यह परिषदों की सहायता से वांछनीय जन–सहयोग प्राप्त कर पाता है। जनसामान्य को इन परिषदों द्वारा सरकारी सेवाएँ उपलब्ध हो जाती हैं तथा वे कानून पालन करने की ओर प्रेरित होते हैं। यदि लोक प्रशासन का सही रूप समझना चाहते हैं तो वहाँ की विभिन्न सामाजिक परिषदों तथा लोक प्रशासन के अन्तर्सम्बन्ध को समझना चाहिए। सामाजिक संगठनों द्वारा दबाव समूहों के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जाती है। इसका यह अर्थ नहीं है कि लोक प्रशासन इन दबाव समूहों के हाथ की कठपुतली बन जाता है। इसके विपरीत लोक प्रशासन की नौकरशाही जनहित के लक्ष्य से निर्देशित और संचालित होती है।

   इस प्रकार लोक प्रशासन तथा सामाजिक परिषदों में घनिष्ठ संबंध रहता है जिसके अनेक महत्वपूर्ण परिणाम निकलते हैं। सामाजिक संस्थाओं का निरंतर दबाव रहने से लोक प्रशासक सदैव सजग एवं उत्तरदायी बने रहते हैं। वे प्रभावित व्यक्तियों के दृष्टिकोण का ध्यान रखते हैं और प्रशासनिक व्यवहार अधिक सार्थक, प्रभावशाली तथा लोकोपकारी बन जाता है। सामाजिक संस्थाएँ लोक प्रशासकों के हाथ में प्रभावशाली हथियार होती हैं। इनके माध्यम से वे अपनी नीतियों को आसानी से कार्यान्वित कर पाते हैं। केवल एक कदम या टेलीफोन द्वारा प्रशासकों को इन सामाजिक संस्थाओं के लाखों स्वयंसेवकों का सहयोग तुरंत मिल जाता है। यह अन्य किसी तरीके से संभव नहीं था। प्रो0 रिग्स के मतानुसार, ''इन परिषदों के कारण प्रशासन की प्रभावशीलता कई गुना बढ़ जाती है।''

5. **रिश्तेदारी एवं पारिवारिक बन्धन** – सामाजिक पर्यावरण का एक अहमभूत पहलू रिश्ते–नातेदारी एवं आपस में पारिवारिक स्तर पर संबंध भी है। विशेषतौर पर एशियाई देश जापान, चीन तथा भारत में समाज की मुख्य इकाई परिवार है और लोगों में रिश्तेदारी एवं पारिवारिक बंधन काफी मजबूत पाए जाते हैं। ये सामाजिक एवं पारिवारिक संबंध प्रशासन पर अपना अच्छा खासा प्रभाव डालते हैं क्योंकि प्रशासनिक अधिकारी (समाज का ही एक अंग होने के कारण) समाज एवं परिवार के इन संबंधों के ताने–बाने से बाहर नहीं निकल पाते जिससे प्रशासन की कार्यवाही पर बहुत असर पड़ता है। इसी कारण प्रशासन में बहुत सारी समस्याएँ जैसे कि भाई भतीजावाद, पक्षपात एवं भ्रष्टाचार आदि घर कर जाती हैं। प्रशासनिक अधिकारियों का पारिवारिक एवं सामाजिक बंधनों के प्रति रूझान विकासशील देशों में आमतौर पर दिखाई देता है तथा इन देशों के प्रशासन को काफी हद तक प्रभावित भी करता है।

2.4 लोक प्रशासन का सांस्कृतिक पर्यावरण (Cultural Environment of Administration)

'संस्कृति' शब्द की उचित व्याख्या करना अत्यन्त कठिन है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि संस्कृति का अर्थ किसी समुदाय की जीवनशैली है, जिसका उस समुदाय के रहन–सहन, खान–पान, पहनावा, जीवनशैली पर विशेष प्रभाव पड़ता है। एक समाज की संस्कृति अपने नागरिकों को अनेक आदर्शात्मक मूल्य प्रदान करती है। इन मूल्यों से लोक प्रशासन का संगठन एवं व्यवहार भी अछूता नहीं रहता है। प्रशासन के संगठन में विभिन्न कर्मचारियों के आपसी संबंधों, उच्च अधिकारियों के प्रति निम्न पदाधिकारियों के दृष्टिकोण आदि पर समाज विशेष की संस्कृति और मूल्यों का व्यापक प्रभाव पड़ता है। एक दूसरे को सम्मान देना, आतिथ्य–सत्कार करना, शिष्ट–भाषा में विरोध करना तथा किसी भी कार्य के प्रति सहयोग, सहानुभूति और मानवीय दृष्टिकोण अपनाना वस्तुतः संस्कारों की ही देन होती है। संस्कार, संस्कृति और मान्यताओं को ध्यान में रखकर ही प्रशासनिक एवं संवैधानिक कानूनों का निर्माण किया जाता है। यही कारण है कि एक देश की प्रशासनिक व्यवस्था तथा कानून दूसरे देश की प्रशासनिक व्यवस्था तथा कानूनों से भिन्न और विपरीत होते हैं। लोक प्रशासन को प्रभावित करने वाले सांस्कृतिक तत्त्वों में प्रमुख तत्त्व निम्नलिखित हैं –

1. **भाषा (Language)** – भाषा विचार–अभिव्यक्ति का एक अनिवार्य माध्यम है। यह जीवन की अनेक समस्याओं को सरलता से सुलझा देती है और अनेक सरल स्थितियों को जटिल बना देती है। लोक प्रशासन में भाषा का प्रभाव और योगदान अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि यह एक सामूहिक क्रिया है तथा कर्मचारियों के अन्तर्सम्बन्धों की स्थापना के लिए एक स्पष्ट, शिष्ट और मनभावन भाषा का होना अपने आप में एक विशेषता है। उपयुक्त भाषा के अभाव में कई समस्याएँ खड़ी हो जाती हैं। उदाहरणार्थ उच्च अधिकारी कुछ कहना चाहता है, किन्तु अधीनस्थ अधिकारी उसे समझ नहीं पाता, उसने कुछ अलग प्रतिवेदन दे दिया। फलतः संगठन में संघर्ष, विवाद, गलतफहमी, दोहराव, भ्रम आदि बुराइयाँ पैदा हो जाती हैं। इन सबका निदान उपयुक्त भाषा द्वारा संभव है।

   जिन देशों की राष्ट्रभाषा एक होती है तथा नागरिकों में भाषा भिन्नताएँ नहीं होती वहाँ प्रशासन कार्य अत्यन्त सुविधाजनक बन जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका एक भाषा–भाषी राज्य है। वहाँ दूसरी भाषा बोलने वाले कुछ अल्पसंख्यक हैं, किंतु वे अंग्रेजी जानते हैं इसके विपरीत भारत एक बहुभाषी राज्य है। यहाँ असंख्य बोलियाँ और अनेक क्षेत्रीय भाषाएँ हैं। रिग्स इस स्थिति को विचित्र मानते हैं। रिग्स के शब्दों में –''यह स्थिति विचित्र सी है कि देश की जनता मिली–जुली भाषाओं का प्रयोग करे और सरकार ऐसी भाषा में संचालित की जाए जो वहाँ की जनता के लिए स्वदेशी नहीं है।'' एक भाषा के अभाव में प्रशासन को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। भारतीय प्रशासन को ऐसी समस्या का सामना करना पड़ रहा है।

2. **संचार साधन (Means of Communication)** –सांस्कृतिक एकरूपता की स्थापना में संचार साधनों का महत्वपूर्ण स्थान है। ये प्रशासन संचालन में उल्लेखनीय भूमिका निभाते हैं। जब पूरे देश में टेलीफोन का जाल

बिछा होता है तो प्रशासनिक आदेश शीघ्रता से प्रसारित हो पाते हैं तथा समुचित नियंत्रण रखा जा सकता है। रेडियो, टेलीविजन, प्रेस आदि सुविधाओं का उपयोग कर सभी देशवासी पड़ोसीवत निकट हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में जनमत की शक्ति वास्तविक एवं प्रभावशाली बन जाती है। यह किसी नीति पालन के लिए सरकार को बाध्य कर सकती है तथा अवांछनीय नीतियों के मार्ग में बाधक बन सकती है।

संचार–साधनों द्वारा जनता को प्रशासनिक कार्यों में अधिकाधिक भाग लेने की सुविधा दी जाती है। शहरीकरण तथा यातायात साधनों में वृद्धि के कारण जनता प्रशासनिक कार्यों में अधिक गतिशील बन जाती है। संस्कृति का महत्वपूर्ण प्रशासनिक प्रभाव द्वारा संयुक्तीकरण किया जाता है। सारा समाज एक जैसे प्रतीकों, मूल्यों तथा लक्ष्यों को अपनाने लगता है। प्रशासक तथा प्रशासित अनेक बिन्दुओं पर समान रूप से सोचने लगते हैं। संचार साधनों द्वारा प्रशासन करना सुगम बन जाता है, वहाँ प्रशासन में जन–सहभागिता का विकास हो जाता है।

3. **धर्म (Religion)** धर्म सामाजिक संयुक्तीकरण का एक अन्य साधन है। एक ही धर्म में विश्वास करने वाले लोग आसानी से परस्पर संबद्ध हो जाते हैं किन्तु मूल विश्वासों में अंतर रहने पर एक ही प्रदेश की जनसंख्या विभिन्न समुदायों में बंट जाती है। राजनीतिक सिद्धांतों की भाँति धर्म लोगों को जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। धार्मिक मतभेदों के कारण प्रशासनिक कार्यों में समन्वय, आदेश, नियंत्रण, नेतृत्व आदि की अनेक समस्याएँ पैदा हो जाती हैं। इसके विपरीत एक धर्म की कड़ी से सम्बन्धित लोगों में लोक प्रशासन की अनेक समस्याएँ स्वतः ही सुलझ जाती हैं।

4. **शिक्षा एवं मूल्य** – जिस समुदाय में अशिक्षित, असंगठित और फूट के शिकार लोग रहते हैं तो वहाँ लोक प्रशासन को चलाने और नियंत्रण रखने में सुविधा रहती है क्योंकि ऐसे लोग आसानी से आदेशों का पालन करते हैं। इसके विपरीत शिक्षित एवं संगठित जनसमुदाय स्वयं चिन्तनशील होने के कारण वह अपनी मांगे प्रस्तुत करता है और यदि सरकार के कार्य, विचार उसके अनुरूप न हों तो वह उनका विरोध भी करता है। विभिन्न राष्ट्रों के राष्ट्रीय आन्दोलन इसके प्रमाण हैं।

   मूल्यों की असमानता और एकरूपता भी लोक प्रशासन को प्रभावित करती है। जब प्रशासन तथा समाज के मूल्य समान होते हैं तो प्रशासनिक मशीनरी सुचारू रूप से कार्य करती है, अन्यथा उसमें बाधाएँ देखने को मिलती हैं। सत्ता का पालन देश के सांस्कृतिक तत्वों पर निर्भर करता है।

5. **क्षेत्रीयवाद (Regionalism) की भावना** – सांस्कृतिक पर्यावरण का अन्य महत्वपूर्ण पहलू क्षेत्रीयता की भावना का पनपना है जो प्रशासनिक कार्यवाही पर गहन प्रभाव डालता है। क्षेत्रीय विभिन्नता न केवल विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले लोगों में क्षेत्रीयता की भावना को प्रोत्साहन देती है बल्कि विभिन्न क्षेत्रों से संबंध रखने वाले प्रशासनिक अधिकारी भी इससे अछूते नहीं रह पाते। इस ढंग की भावना प्रशासन के विभिन्न स्तरों पर कार्यरत कर्मचारियों की मानसिकता को तंग बना देती है। अतः प्रशासनिक कर्मचारी राष्ट्रीय मामले की अपेक्षा क्षेत्रीय मामलों में ज्यादा दिलचस्पी एवं loyality दिखाते हैं। इसी कारण राष्ट्रीय मुद्दे क्षेत्रीय मुद्दों की तुलना में छोटे प्रतीत होते हैं जो राष्ट्रीय एकता के लिए अन्ततः खतरा बन जाते हैं। उदाहरणार्थ हरियाणा एवं पंजाब के मध्य SYL मुद्दा, पंजाब को लेकर खालीस्थान बनाने की मांग, असम में बोडो स्टूडैंटस की मांग, बिहार में झारखण्ड राज्य का बनाया जाना तथा तमिलनाडू, आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक एवं पांडिचेरी के बीच कावेरी जल विवाद इत्यादि।

2.5 लोक प्रशासन का आर्थिक पर्यावरण (Economic Environment of Administration)

आज की प्रशासनिक व्यवस्था सिर्फ कानून और व्यवस्था के क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रही बल्कि यह प्रशासन व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक पहलू को अधिकाधिक खुशहाल बनाने के लिए लोक कल्याणकारी प्रशासन बन गया है। इस बदले हुए परिवेश में लोक प्रशासन के संदर्भ में अर्थव्यवस्था का महत्व काफी बढ़ गया है क्योंकि प्रशासन द्वारा संचालित विकास कार्यक्रमों की सफलता अच्छी अर्थव्यवस्था पर ही निर्भर करती है। इसके साथ आर्थिक विकास के

उद्देश्यों को प्राप्त करने तथा अपनी योग्यता व क्षमता को बढ़ाने हेतु लोक प्रशासन को आमतौर पर नए मूल्य अपनाने पड़ते हैं। प्रशासन द्वारा आर्थिक विकास के अनुरूप ढालने के लिए समय–समय पर प्रशासनिक सुधार भी किए जाते हैं। किसी भी देश की योजना को लागू करने का दायित्व प्रशासन का होता है। अतः देश की प्रशासनिक प्रणाली वहाँ के आर्थिक जीवन को नियमित भी करती है। इस प्रकार लोक प्रशासन अपने आर्थिक वातावरण के साथ क्रिया–प्रतिक्रिया करते हैं तथा एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। लोक प्रशासन और पर्यावरण के आर्थिक पहलू को निम्नलिखित बिन्दुओं की मदद से स्पष्ट किया जा सकता है–

1. **प्रशासन का आर्थिक विकास में सहयोग**–आर्थिक विकास की प्रक्रिया में लोक प्रशासन की भूमिका महत्वपूर्ण है। प्रशासन को आर्थिक विकास की आवश्यकताओं के अनुकूल ढाला जाता है और इसके लिए समय–समय पर प्रशासनिक सुधार किये जाते हैं।

   चूँकि प्रशासन की पुरानी रूप–रचना नवीन और महत्वाकांक्षी आर्थिक उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक नहीं होती, इसलिए उसे समयानुसार एवं आवश्यकतानुसार बदला जाता है। यह परिवर्तन इस बात को ध्यान में रखकर किया जाता है कि देश में द्रुत आर्थिक विकास की दशाएँ उत्पन्न की जा सकें।

2. **आर्थिक व्यवहार का प्रशासन पर प्रभाव**–कोई भी देश जब अपना आर्थिक विकास करना चाहता है तब उसे तदनुसार संस्थागत परिवर्तन करने होते हैं। ऐसी व्यवस्था की जाती है कि अधिक काम करने का प्रोत्साहन प्राप्त कर सके। प्रो0 **रिग्स** के अनुसार, कीमत–रचना की बाजार–व्यवस्था में उत्पादन बढ़ता है, इस व्यवस्था में लोग अपना सामान एवं सेवाएँ उसे बेचते हैं जो अधिक कीमत देता है। खरीददारी करते समय वे लाभप्रद सौदेबाजी करते हैं। टी. एन. चतुर्वेदी के अनुसार, इस उपयोगितावादी एवं बौद्धिक दृष्टिकोण के कारण वस्तुओं और सेवाओं की उपलब्धि बढ़ जाती है।

3. **लोक प्रशासन अनेक प्रकार से देश के जीवन को नियन्त्रित करता है,** जैसे– एक बाजार तभी सुचारू रूप से कार्य कर सकता है जब उसके ऊपर विभिन्न प्रकार के नियंत्रण लगाये जाएँ तथा प्रशासन द्वारा अनेक सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाएं। प्रशासनिक नियमों द्वारा ऐसे प्रयास किये जाते हैं कि व्यवस्था बनी रहे। प्रशासन नाप–तौल की भी व्यवस्था करता है।

4. **वित्त को प्रशासन का जीवन–रक्त कहा जाता है।** अतः यदि रक्त का शरीर में नियमित प्रवाह न हो तो शरीर का पतन हो जायेगा। लोक प्रशासन को व्यवस्थित रूप से चलाने के लिए पर्याप्त साधन, कर्मचारियों का संतोष, कार्य की उचित दशाएँ अनिवार्य हैं तथा इन सबकी व्यवस्था वित्त के द्वारा की जाती है।

5. **प्रशासन में भ्रष्टाचार का मूल आधार आर्थिक है।** यदि हम प्रशासन को पवित्र और भ्रष्टाचारहीन बनाना चाहते हैं तो आर्थिक औषधि का प्रयोग करना आवश्यक है। इसी प्रकार अकुशल प्रशासन तथा निम्न आर्थिक स्तर का एक दुष्चक्र होता है। जब एक राज्य की आर्थिक स्थिति खराब होती है तो वहाँ योग्य तथा कुशल कर्मचारी उपलब्ध नहीं हो पाते। इस कमी को दूर करने के लिए प्रशासनिक प्रयास आवश्यक हैं।

6. **तीव्र आर्थिक विकास में प्रशासन का योगदान**–तीव्र आर्थिक विकास के लिए देश नियोजित तरीके से विकास का मार्ग अपनाता है ताकि सीमित साधनों तथा कम समय में अधिक से अधिक लक्ष्यों की प्राप्ति कर सके। ऐसा राज्य लोक–कल्याणकारी बन जाता है ओर उसका कार्यक्षेत्र व्यापक हो जाता है। राज्य के इन नवीन दायित्वों के पालन के लिए प्रशासन व्यवस्था में भी सामयिक परिवर्तन किये जाते हैं और ऐसी स्थिति में विकासशील प्रशासन का जन्म होता है। इस प्रकार लोक प्रशासन नियोजन तंत्र का चालक और प्रेरक है।

7. **आर्थिक कारणों से प्रशासन में भ्रष्टाचार की समस्या**–लोक प्रशासन की सबसे महत्वपूर्ण समस्या भ्रष्टाचार के अनेक कारण हैं, परंतु मूलभूत कारण आर्थिक ही हैं। अतः प्रशासन को पवित्र और भ्रष्टाचार रहित बनाना चाहते हैं तो आर्थिक औषधि का सही प्रयोग करना होगा। साथ में प्रशासन आर्थिक जीवन को नियंत्रित करता है और देश की आर्थिक स्थिति का प्रभाव भी प्रशासन पर पड़ता है। इस प्रकार लोक प्रशासन की समस्याएँ आर्थिक धरातल पर जन्म लेती हैं तथा संपूर्ण अर्थ–व्यवस्था का एक अंग होती है। लोक प्रशासन का संगठन, कार्य एवं प्रकृति आदि देश की आर्थिक स्थिति में निर्णायक रूप से प्रभावित रहते हैं।

2.6 लोक प्रशासन का राजनैतिक पर्यावरण (Political Environmentl of Admn.)

प्रशासन और राजनीतिक परिवेश का संबंध अत्यंत घनिष्ठ होता है। दोनों ही एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं। लोक प्रशासन की जड़ें राजनीति में निहित होती हैं। राजनीति का सम्बन्ध किसी देश के शासन से होता है और शासन का क्रियात्मक रूप प्रशासन में दीखता है। राजनीतिक परिवेश में जब बदलाव आता है तब प्रशासनिक संस्थाओं में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि किसी भी देश के लोक प्रशासन तथा उसकी संरचनाओं पर वहाँ के राजनीतिक परिवेश का गंभीर प्रभाव पड़ता है।

भारतीय राजनीतिक परिवेश के संबंध में यह बात ध्यान देने योग्य है कि भारत में शायद ही निरंकुश शासन रहा हो, राजा राज्य का सर्वोच्य शासक अवश्य होता था, किंतु वह मंत्रियों की राय से कार्य करता था। यहाँ की सामाजिक व्यवस्था के अनुसार राजनीतिक समता की विचारधारा कभी नहीं पनपी। बौद्ध सम्प्रदाय के प्रभाव से कतिपय गणतंत्र स्थापित हुए थे जिनमें वैशाली का गणतन्त्र प्रमुख रहा है, किन्तु अधिकतर व्यवस्था राजतंत्रीय थी। भारतीय परिवेश पर निम्नलिखित मुद्दों के अंतर्गत चर्चा कर सकते हैं –

1. **भारत में प्रजातन्त्र का स्वरूप**–ऐतिहासिक दृष्टि से यदि विचार करें तो आधुनिक प्रजातंत्र की कल्पना भारतीय संस्कृति से मेल नहीं खाती। आज भारतीय प्रजातंत्र के विकास में कुछ विरोधी तत्व विद्यमान हैं। भारतीय संस्कृति में सहनशीलता की प्रमुखता के कारण, और राजा के सीमित अधिकारों के कारण, यह संस्कृति प्रजातंत्रोन्मुख है। यह अत्यन्त आश्चर्यजनक है कि एक ओर अनपढ़ नागरिक मतदान की प्रक्रिया में रूचिपूर्वक उत्साह से हिस्सा लेता है जबकि दूसरी ओर शिक्षित और बुद्धिजीवी वर्ग चुनाव–प्रक्रिया से तटस्थ होता जा रहा है। भारतीय समाज में समता की कमी है, वर्णाश्रम–धर्म तथा विभिन्न जातियों एवं उपजातियों के अलग–अलग अस्तित्व के कारण समता की भावना समाज में पनप ही नहीं पाई। आज का चुनाव शारीरिक क्षमता और आर्थिक क्षमता पर निर्भर हो गया है और इसी बूते पर जीता जाता है। चुनाव में अपराधी तत्व अधिक सक्रिय हो गया है और वे शक्ति व धन के द्वारा चुनाव–प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। फलस्वरूप, हमारे देश में प्रजातन्त्र की बात तो की जाती है, पर वास्तविक प्रजातन्त्र लागू नहीं हो पाता।

2. **शासन का प्रशासन में हस्तक्षेप** –शासन और प्रशासन एक–दूसरे के पूरक हैं और आपस में घनिष्ठ संबंध रखते हैं। साधारण नागरिक प्रशासन से ही सम्पर्क रखता है और प्रशासन की क्षमता पर ही शासन आँका जाता है। शासकीय नीतियों का निर्माण यद्यपि कठिन है, किंतु उससे भी कठिन कार्य नीतियों को लागू करना है। हमने संसदीय शासन प्रणाली अपनाई है जिसके अंतर्गत शासन की नीतियों के बनाने का काम तो ''शासक वर्ग'' करता है परंतु उन्हें जनता तक पहुँचाने का काम 'सेवीवर्ग' करता है। इन दोनों वर्गों के चयन, कार्यकाल, सेवा शर्तें आदि भिन्न–भिन्न हैं। ब्रिटेन में शासकीय वर्ग और सेवीवर्ग एक–दूसरे के पूरक के रूप में देखे जाते हैं। दोनों में पारस्परिक संबंधों पर काफी मतभेद हैं और इस विषय में विभिन्न मत प्रतिपादित किये गये हैं, किन्तु यह बात ध्यान देने योग्य है कि 'सेवीवर्ग' शासकीय वर्ग की आज्ञा मानने को बाध्य तो हैं परंतु उसके मातहत नहीं है। इन्दिरा गांधी के शासन काल में, विशेषकर आपातकाल के समय शासन का प्रशासन में हस्तक्षेप बढ़ा और बाद के समय में बढ़ता ही गया। आज स्थिति यह है कि

शासकीय वर्ग खुले आम प्रशासन पर अपना नियन्त्रण करना चाहता है। इस संदर्भ में स्थानान्तरण की शक्ति के दुरुपयोग की प्रमुख भूमिका रही है। प्रशासन में शासन के बढ़ते हुए हस्तक्षेप के कारण कुशल व्यक्ति या तो शासकीय सेवा में जाना ही नहीं चाहते या सेवा से शीघ्र निवृत्ति चाहते हैं। फलस्वरूप भारतीय प्रशासन में गिरावट आती जा रही है और शासक वर्ग को इस विषय में प्रर्याप्त ध्यान देना आवश्यक है।

3. **शासकीय तथा प्रशासकीय तन्त्र में बढ़ता हुआ भ्रष्टाचार**–प्रशासन तंत्र में, निम्न स्तर पर भ्रष्टाचार प्रारंभ से ही दिखाई देता है। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में इस ओर संकेत भी किया है। मुगल–शासनकाल में रिश्वतखोरी पाई जाती थी। ब्रिटिश शासनकाल में इस विषय में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिला है जिसके अनुसार ईस्ट इंडिया कंपनी की समाप्ति के बाद उच्च पदों पर आसीन अधिकारियों में भ्रष्टाचार की कमी रही, यद्यपि उस समय भी निम्न श्रेणी के शासकीय कर्मचारी इस रोग से अछूते नहीं थे।

   स्वाधीनता के पश्चात् अखिल भारतीय सेवाओं में पुरानी प्रवृत्ति जारी रही। शासकीय वर्ग नेहरू–युग में इस प्रकार के भ्रष्टाचार से काफी दूर था, पर धीरे–धीरे भ्रष्टाचार का रोग निम्न वर्ग के कर्मचारियों से फैलकर उच्चस्तरीय कर्मचारियों तथा शासक वर्ग में भी पनपता गया। अनेक घोटालों का इस सन्दर्भ में उल्लेख करना आवश्यक है, जैसे–कृष्ण मेनन का 'जीप काण्ड', ललितनारायण मिश्र का कई भ्रष्टाचार प्रकरणों में लिप्त रहना, 'बोफोर्स काण्ड' जिसके कारण राजीव गांधी की 1989 के चुनावों में हार हुई और हर्षद मेहता द्वारा प्रधानमंत्री नरसिंह राव के उपर दोषारोपण आदि। आज स्थिति यह है कि जब भी किसी विदेशी या स्वदेशी फर्म से सौदा किया जाता है तो कमीशन के तौर पर उच्च वर्ग द्वारा रिश्वत लेने की बात कही जाती है। आखिर शासक वर्ग को भी तो चुनाव खर्च के लिए करोड़ों रुपयों की आवश्यकता होती है जिसे वह चुनाव के बढ़ते खर्चे को बढ़ते हुए भ्रष्टाचार से पूरा करता है। 'हवाला काण्ड' इसी की परिणति है। इस प्रकार राजनीतिक परिवेश के इस वातावरण में प्रशासन को कार्य करना पड़ता है जिसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।

4. **शासकीय सेवाओं में आरक्षण** –विश्व के प्रत्येक विकसित देश में यह बात सर्वथा मान्य है कि विकास के युग में योग्य और कुशल व्यक्ति ही अपने उत्तरदायित्वों का सही निर्वाह कर सकता है। भारत में भी हर युग में योग्यता को ही प्राथमिकता दी गई है। आज इस तथ्य को अनदेखा नहीं किया जा सकता, परंतु इसके विपरीत, भारत में ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक रूप से कई वर्ग हजारों वर्षों से शोषित होते आए हैं। उन्हें समाज में उचित स्थान दिलाना सरकार का दायित्व है। फलस्वरूप, हमारे संविधान निर्माताओं ने कतिपय जातियों और जनजातियों को प्रशासकीय सेवाओं तथा विधानसभाओं में आरक्षण प्रदान किया है। यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि इन प्रावधानों के फलस्वरूप निम्न वर्ग कुछ ऊपर उठा है और वे जागरूक भी हुए हैं। मण्डल आयोग की सिफारिशों को लागू करने तथा शोषित एवं पिछड़े वर्गों को समता के नाम पर आरक्षण देने की आवाजें जोर पकड़ती जा रही हैं। उच्च वर्ग के गरीब लोगों को भी आरक्षण देने की बात सामने आ रही है। साथ ही महिलाओं और विकलांगों के उत्थान के लिए भी आरक्षण की आवश्यकता महसूस की जा रही है। इस दिशा में अनेक आन्दोलन भी हो रहे हैं, पर इस विषय पर इतना ही कहना पर्याप्त नहीं है कि विकास के कठिनतम कार्य का संपादन करने के लिए योग्यता का कोई पर्याय नहीं है। इसीलिए सर्वोच्च न्यायालय ने 50% से अधिक आरक्षण को गैर–कानूनी ठहराया है। हाल ही में 8 सितंबर, 1993 से केन्द्र सरकार की नौकरियों में 27% आरक्षण लागू हो गया है। शासकीय सेवाओं में आरक्षण लगभग विकासशील देशों में पाया जाता है। कुछ देशों में तो कुछ राजनैतिक पार्टियों ने इसे अपने राजनैतिक लाभ का मुद्दा बना रखा है। जिसके कारण वे विभिन्न सामाजिक समूह के लिए इस ढंग की मांग लगातार करती रहती हैं। लेकिन शासकी सेवाओं में बढ़ती हुई आरक्षण की मांग अकुशल एवं अयोग्य

व्यक्तियों को स्थान देती है जो पूर्ण रूप से अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने में असमर्थ होते हैं। इसी कारण प्रशासन में अकुशलता एवं भ्रष्टाचार जन्म ले लेते हैं और प्रशासन की संपूर्ण कार्यवाही पर प्रभाव पड़ता है।

5. **धर्म और राजनीति का पृथक्करण**– जैसा पहले भी उल्लेख किया जा चुका है कि 'धर्म' शब्द भारतीय संस्कृति में अत्यन्त विस्तृत रूप में प्रयुक्त होता आया है। धर्म का सही अर्थ न समझने के कारण इसका विकृत रूप साम्प्रदायिकता ने ले लिया है। भारतीय संस्कृति में साम्प्रदायिकता का कोई स्थान नहीं है जो धर्मनिरपेक्षता की संकल्पना के सर्वथा प्रतिकूल है। यहाँ पर यह बात विचारणीय है कि भारत की तीनों प्रमुख संस्कृतियों (सनातन संस्कृति, मुस्लिम संस्कृति तथा ईसाई संस्कृति) के विचारानुसार धर्म और राजनीति एक–दूसरे से पृथक नहीं किये जा सकते। भारतीय संस्कृति धर्मनिरपेक्ष राज्य में विश्वास करती है, किन्तु मुस्लिम तथा ईसाई सम्प्रदाय धर्मतन्त्र में ही विश्वास करते हैं। इस पृष्ठभूमि में शासकीय नीति धर्म से राजनीति को अलग करना चाहती है। इसे मुसलमान और ईसाई अनुयायियों के विरोध में ही माना जायेगा, जबकि इस नीति से सत्ताधारी कांग्रेस दल को ही विशेष हानि होगी। कांग्रेस दल की अल्पसंख्यकों के तुष्टीकरण की नीति सर्वविदित है। प्रस्तावित कानून इस नीति के विरोध में ही जायेगा। इस पर विचार करें तो यह निष्कर्ष निकलता है कि भारत जैसे बहुलवादी देश में भारतीय संस्कृति के सम्मान व राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखकर परम आवश्यक है और किसी भी दल की यह नीति कि विभिन्न सम्प्रदाय बराबर की श्रेणी में आयेंगे, खतरे से खाली नहीं है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. सामाजिक पर्यावरण के दो पहलु बताइए जो प्रशासन को प्रभावित करते हैं।

2. सांस्कृतिक पर्यावरण के प्रशासन को प्रभावित करने वाले बिन्दु कौन–कौन से हैं?

3. प्रशासन के आर्थिक पर्यावरण सम्बन्धी महत्वपूर्ण पहलु लिखिए।

4. प्रशासन को प्रभावित करने वाले दो राजनैतिक पहलु बताइए।

2.7 तुलनात्मक लोक प्रशासन के उपागमः

तुलनात्मक लोक प्रशासन से संबंधित बहुत सारे उपागम हैं। ये सभी उपागम लोक प्रशासन का अध्ययन अलग–अलग दृष्टिकोण से करते हैं। इसके तीन उपागम हैं जिनके नाम अग्रलिखित हैं–संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक उपागम, पारिस्थितिकीय उपागम तथा व्यवहारवादी उपागम, इनमें व्यवहारवादी उपागम सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। ये तीनों उपागम लोक प्रशासन का तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने में काफी हद तक मददगार हैं, इनका व्यवस्थित विस्तृत वर्णन निम्न प्रकार है –

2.8 तुलनात्मक लोक प्रशासन का संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक उपागम – लोक प्रशासन सहित अधिकांश सामाजिक विज्ञानों में संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक (स्ट्रक्चरल–फंक्शनल अप्रोच) उपागम बहुतायत में प्रयोग होता है इस उपागम को व्यवस्था विश्लेषण के नाम से भी जाना जाता है। सामाजिक प्रक्रियाओं को समझने में सहायक यह उपागम सामाजिक संरचना तथा उसके कार्यों पर बल प्रदान करता है। टालकॉट पारसन्स, रॉबर्ट मर्टन, मेरियन लेवी, गेबरियल आलमंड, डेविड एप्टर तथा रिग्स इत्यादि विद्वानों ने इस उपागम का उपयोग किया है। वस्तुतः यह उपागम संरचनात्मक उपागम तथा प्रकार्यात्मक उपागम का संयुक्तीकरण करके बनाया गया है।

लोक प्रशासन में सर्वप्रथम 1955 में ड्वाइट वाल्डो ने यह बताया कि लोक प्रशासन को सामाजिक व्यवस्था के एक भाग के रूप में विश्लेषित करने के क्रम में संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक उपागम महत्वपूर्ण माध्यम है। सन् 1957 में एफ.डब्ल्यू. रिग्ज ने अपना कृषका–औद्योगिका मॉडल इसी उपागम के आधार पर निर्मित किया तथा यह निष्कर्ष

सामने आया कि पश्चिमी देशों की प्रशासनिक व्यवस्था ही सर्वश्रेष्ठ नहीं है बल्कि प्रत्येक देश की प्रशासनिक व्यवस्था का विश्लेषण वहाँ के स्थानीय संदर्भों में होना चाहिए। जो संरचना अमेरिका के संदर्भ में सर्वश्रेष्ठ है वह भारत के संदर्भ में निकृष्टतम हो सकती है। लोक प्रशासन में, संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम का सिद्धांत समाजशास्त्र से आया है। तुलनात्मक लोक प्रशासन के विकास तथा बढ़ते महत्त्व ने इस उपागम को उपादेय बना दिया है।

उपागम का सार :

यह उपागम दो मुख्य अवधारणा–संरचना एवं प्रर्काय, के इर्द–गिर्द घुमता है। साधारण रूप में, यह उपागम किसी तन्त्र में पाई जाने वाली संरचनाएँ एवं उनके द्वारा पूरे किए जाने वाले कार्यों के अध्ययन एवं विश्लेषण से संबंधित है। इस उपागम की प्रमुख मान्यता है कि प्रत्येक समाज में कुछ महत्वपूर्ण कार्य, कुछ संरचनाओं के द्वारा कुछ विशेष तरीके अपनाकर पूर्ण किए जाते हैं। अतः संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम वह उपागम है, जो उन कार्यों जो किसी समाज में पूर्ण किए जाते हैं, उन संरचनाओं का जिनके द्वारा ये कार्य किए जाते हैं एवं उन तरीकों का जो इन संरचनाओं के द्वारा अपनाए जाते हैं, का सामुहिक रूप से विश्लेषण करता है। इस उपागम को पूर्ण रूप से समझने के लिए कुछ शब्द जैसे कि संरचनाएँ एवं प्रकार्यों को समझना अति आवश्यक है, जो निम्नलिखित हैं –

1. **संरचना**ः संरचना का अर्थ है – "any pattern of behaviour which has become a standared feature of social system". समस्त प्रकार की सामाजिक संरचनाएँ कुछ न कुछ कार्य करती हैं। अतः संरचना को कार्य (प्रकार्य) के आधार पर समझा जा सकता है। समस्त प्रकार की संरचनाएं विशिष्ट प्रकार का व्यवहार करती है अतः संरचना को विश्लेषित किया जा सकता है। लोक प्रशासन की संरचना दो प्रकार की हो सकती है –

   (i) साकार या प्रत्यक्ष (Concrete)

   (ii) विश्लेषणात्मक (Analytical)

   साकार या प्रत्यक्ष संरचनाएँ वे हैं जो प्रत्यक्ष दिखती हैं जैसे विभाग, मंत्रालय या महाविद्यालय। जबकि विश्लेषणात्मक संरचनाएँ अप्रत्यक्ष स्वरूप लिए हुए होती हैं जैसे कि सत्ता या प्राधिकार। वास्तव में विश्लेषणात्मक संरचनाएँ, साकार संरचनाओं पर ही आधारित होती हैं। प्रत्येक प्रकार के संगठन 'संरचना' नहीं कहे जा सकते हैं केवल विशेष प्रकार्य करने पर ही वे संरचना कहलाते हैं।

2. **प्रकार्यः** प्रकार्य वह परिणाम है जो संरचना से प्राप्त होता है। रॉबर्ट सी. बोन के अनुसार ''एक प्रकार्य, संरचना को बनाए रखने तथा उसे विकसित करने वाला ऐसा क्रिया–प्रतिमान है जो नियमित रूप में होता रहता है।'' कतिपय विद्वानों का मानना है कि प्रकार्य बहुधा विकार्यात्मक (Dysfunctional) अर्थात् नकारात्मक भूमिका भी निभा सकता है। लेकिन प्रकार्य की श्रेणी में उन्हीं परिणामों को गिना जाना चाहिए जो किसी व्यवस्था को बनाए रखने या विकसित करने में सहायक हों तथा जो नियमित रूप से घटित होते हैं। समाजशास्त्रियों के अनुसार प्रकार्य का अर्थ दो या अधिक संरचनाओं के मध्य अंतर्निर्भरता के प्रतिमानों से है। यह विभिन्न चरों (Variables) के मध्य अर्न्तसंबंधों को भी दर्शाता है। एक संरचना का दूसरी संरचना पर पड़ने वाले प्रभाव भी प्रकार्य की श्रेणी में आते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि हमेशा संरचना तथा प्रकार्य के मध्य प्रत्यक्ष एवं गहरा संबंध ही हो। इसी प्रकार एक समान संरचनाएँ हमेशा एक समान प्रकार्य करें यह भी आवश्यक नहीं है। अनुभवात्मक अनुसंधानों के आधार पर संरचना तथा प्रकार्य का आपसी प्रभाव ढूंढा जाता है। एक संरचना से कई प्रकार के प्रकार्य निष्पादित हो सकते हैं, उसी प्रकार एक प्रकार्य कई प्रकार की संरचनाओं के द्वारा भी निष्पादित हो सकता है। इस प्रकार यह उपागम यह सिद्ध करता है कि समान प्रकार की संरचनाएँ विभिन्न प्रकार के पर्यावरण में एक समान प्रकार्य निष्पादित नहीं करती हैं। प्रकार्यों को भी दो भागों में विभक्त किया गया है –

(i) प्रकट प्रकार्य (Manifest)

(ii) गुप्त प्रकार्य (Latent)

समाजशास्त्री रॉबर्ट मर्टन के अनुसार प्रकट प्रकार्यों का संबंध उन क्रिया–प्रतिमानों से होता है जिनके परिणामों को उनके करने वाले चाहते हैं तथा मान्यता देते हैं जबकि गुप्त प्रकार्य (विकार्य) उन क्रिया–प्रतिमानों को कहा जाता है जिनके परिणामों को उनके करने वाले न तो चाहते हैं और न ही मान्यता देते हैं। इसी आधार पर यदि प्रशासनिक संरचनाओं के प्रकार्यों का अध्ययन किया जाए तो बहुत से सार्थक निष्कर्ष सामने आते हैं। प्रत्येक प्रकार के प्रकार्य सभी प्रकार की सामाजिक तथा प्रशासनिक संरचनाओं द्वारा निष्पादित नहीं किये जाते हैं। किसी समाज में कुछ प्रकार्य 'पूर्वशर्त' होते हैं तो कुछ प्रकार्य 'आवश्यक' होते हैं। ये प्रकार्य विभिन्न प्रकार के पर्यावरणीय संदर्भों में संरचना को समझाने में सहायक सिद्ध होते हैं।

रिग्ज के अनुसार किसी भी समाज में पांच प्रकार के आवश्यक प्रकार्य हैं। आर्थिक, सामाजिक, संरचनात्मक, प्रतीकात्मक तथा राजनीतिक प्रकार्य सभी समाजों के आवश्यक प्रकार्य हैं क्योंकि मनुष्य का व्यवहार तथा आवश्यकताएं मूलतः इन्हीं पक्षों से जुड़ी हुई हैं। रिग्ज ने यही पांच प्रकार्य प्रशासनिक उप व्यवस्थाओं को समझने के लिए आवश्यक बताए हैं।

उपागम की विशेषताएँ–संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक उपागम की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

1. **मूल्य निरपेक्ष उपागम** – यह उपागम मूल्य निरपेक्ष (स्वतंत्र) उपागम है क्योंकि यह उपागम किसी तन्त्र में विद्यमान संरचनाओं एवं प्रकार्यों के विश्लेषण से संबंध रखता है अतः यह उपागम मूल्यों की अपेक्षा तथ्यों पर अधिक केंद्रित रहता है जिसके कारण इस उपागम में मूल्यों को ज्यादा महत्व नहीं दिया जाता है।
2. **यथास्थितिवाद का समर्थक** – यह उपागम यथास्थितिवाद का भारी समर्थक है क्योंकि यह उपागम किसी तंत्र में भारी भरकम बदलाव की अपेक्षा छोटे मोटे बदलाव का पक्षधर है। यह उपागम किसी तंत्र की संरचनाओं एवं प्रकार्यों में पूर्ण बदलाव लाने में विश्वास नहीं रखता बल्कि इनमें स्थायित्व बनाए रखने की बात करता है।
3. **भविष्योन्मुखता की कमी** – इस उपागम द्वारा अध्ययन अत्यंत वास्तविक है, यह केवल वर्तमान का अध्ययन करता है। भविष्योन्मुखता की इस उपागम में अत्यंत कमी है।
4. **परिवर्तन–विरोधी** – यह उपागम व्यवस्था की उपयोगिता तथा अनेक रख रखाव से जुड़ी समस्याओं से अधिक सम्बन्धित दिखाई पड़ता है। अतः यह परिवर्तन–विरोधी उपागम है क्योंकि यह परिवर्तन की ओर या सुधार की ओर दिशा–निर्देश नहीं करता।

योगदान – इस उपागम का योगदान लोक प्रशासन (विशेष तौर पर तुलनात्मक लोक प्रशासन) के अध्ययन क्षेत्र में अहमभूत है। इस उपागम ने इस विषय के क्षितिज को काफी हद तक विस्तृत किया है। लोक प्रशासन के विद्वानों का झुकाव इस उपागम में अत्यधिक रहा। प्रो0 रिग्स के अतिरिक्त बहुत सारे अन्य विद्वानों ने भी इस उपागम का प्रयोग विभिन्न प्रशासनिक व्यवस्थाओं से संबंधित शोध करते हुए किया है। रिग्स के द्वारा तीसरी दुनिया (विकासशील देश) देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं को समझने के लिए इस उपागम का प्रयोग व्यापक स्तर पर किया गया।

इस उपागम में व्यवस्था विश्लेषण के दौरान विषय–वस्तु का केवल वर्णन मात्र नहीं किया जाता बल्कि व्यवहार तथा आचरण का परीक्षण भी किया जाता है। इसमें लोक प्रशासन के ढाँचे तथा अधिकारियों को अन्तर्निर्भरता के संदर्भ में देखा जाता है जो नियोजित कार्य की भूमिका निभा रहे हैं। व्यवस्था की तीन विशेषताएँ मानी जाती हैं–प्रभावशीलता, कार्यकुशलता तथा उपादेयता। एक अच्छी व्यवस्था में तीनों का उपयुक्त संतुलन

आवश्यक रखा जाता है। इन तीनों प्रशासन के विभिन्न पहलुओं के संदर्भ में इस उपागम को अपनाकर अनेक व्यवस्था अध्ययन एवं विश्लेषण किए गए हैं। जब तुलनात्मक लोक प्रशासन में यह उपागम अपनाया गया तब यह स्पष्ट हो गया कि पाश्चात्य प्रशासनिक व्यवस्थाओं के व्यवहार एवं संस्थाएँ सर्वश्रेष्ठ नहीं हैं। अतः यह उपागम विकसित एवं विकासशील प्रशासनिक व्यवस्थाओं के मध्य अंतर स्पष्ट करने में काफी हद तक मददगार साबित हुआ।

आलोचना (Criticlsm)

इस उपागम की उपादेयता सर्वसिद्ध है किन्तु कतिपय आलोचनाएँ भी की जाती हैं–

1. यह उपागम अपने आप में रूढ़िवादी है क्योंकि इसमें पर्यावरणीय परिवर्तनों के प्रति उदासीनता है जबकि परिवर्तन सृष्टि का नियम है।
2. यह उपागम किसी व्यवस्था के बारे में यह नहीं बता सकता है कि किस परिस्थिति में यह संचारित होती है।
3. प्रत्येक संरचना तथा व्यवस्था के संदर्भ में प्रकार्यों की व्याख्या कठिन है।
4. यह उपागम प्राकृतिक संरचनाओं के पक्ष में तथा कृत्रिम संरचनाओं के विरोध में है।
5. यह उपागम परिवर्तन की बात नहीं करता।
6. यह उपागम सुधारवादी नहीं है।
7. यह उपागम यथास्थिति बनाए रखने का पक्षधर है।
8. इस उपागम के आधार पर वास्तविक अध्ययन संभव नहीं है।

2.9 तुलनात्मक लोक प्रशासन का पारिस्थितिकीय उपागम

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद प्रशासन और संगठन के अध्ययन हेतु इस उपागम का प्रारंभ हुआ। लोक प्रशासन में इस उपागम की शुरुआत प्रसिद्ध विद्वान जॉन.एम. गॉस ने 1947 में की। यह उपागम तुलनात्क लोक प्रशासन में सबसे आधुनिक उपागम है।यह उपागम 1970 के दशक में मुख्य रूप से उभर कर सामने आया और लोक प्रशासन के विभिन्न विद्वानों (विशेष तौर से प्रो0 रिग्स) के द्वारा विकासशील देशों के प्रशासनिक व्यवस्थाओं के अध्ययन एवं विश्लेषण में प्रयोग किया गया।

प्रो0 रिग्स से पहले इस उपागम के विकास के संदर्भ में योगदान देने वाले प्रमुख विद्वान जे.एम.गॉस, रार्बट ए. डाहल, रासकोइ मार्टिन हैं। परन्तु रिग्स ने ही इस उपागम के विकास में अहमभूत योगदान दिया है। इस उपागम का प्रयोग प्रो0 रिग्स ने विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं के एक विस्तृत परिप्रेक्ष्य में प्रशासनिक तथा आर्थिक, तकनीकी, राजनीतिक तथा संचार कारकों के बीच सम्बन्ध का विश्लेषण करते समय किया है। आजकल तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन में इस उपागम का महत्वपूर्ण स्थान है। इस उपागम का Reference point विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाएँ हैं।

(Meaning अर्थ)– 'Ecology' शब्द ग्रीक भाषा के दो शब्द Oikos जिसका अर्थ है 'घर' या 'रहने का स्थान' एवं Logos जिसका अर्थ है 'का अध्ययन' के मेल से बना है। इस प्रकार यह शब्द जीव व उसके पर्यावरण के अर्न्तसम्बन्ध को दर्शाता है। यह शब्द प्रो0 रिग्स के द्वारा जीव विज्ञान से उधार लिया गया है। जीव–विज्ञान में Ecology वह विज्ञान है जो जीव और उसके चारों ओर व्याप्त पर्यावरण में परस्पर अन्तःक्रियाओं एवं अर्न्तसम्बन्धों का अध्ययन करता है।

उसी प्रकार लोक प्रशासन का भी अपना पर्यावरण होता है जिसमें प्रशासन अपने पर्यावरण के साथ

अन्तःक्रिया करता है और ये दोनों एक दूसरे को काफी हद तक प्रभावित भी करते हैं। अतः पारिस्थितिकी उपागम लोक प्रशासन का वह उपागम है जो प्रशासन व उसके पर्यावरण (सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक) के परस्पर अर्न्तसम्बन्धों एवं अन्तःक्रियाओं जैसे कि प्रशासन पर्यावरण पर और पर्यावरण प्रशासन पर अपना प्रभाव कैसे डालता है, का अध्ययन करता है। उपागम की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

विशेषताएँ (Feature)

1. **अर्न्तविषयी उपागम** : यह उपागम अर्न्तविषयी प्रकृति का उपागम है क्योंकि यह पर्यावरण सम्बन्धी सामाजिक सांस्कृतिक, राजनैतिक एवं आर्थिक forces के गहन अध्ययन पर बल देता है। पर्यावरण की ये सभी forces न केवल प्रशासन से प्रभावित होती हैं बल्कि प्रशासन पर भी अपनी गहन छाप छोड़ती हैं। इस प्रकार यह उपागम विभिन्न प्रकार की पर्यावरण सम्बन्धी विलंबों के लिए विभिन्न विषयों से ज्ञान अर्जित करने पर बल देता है।

2. **जटिल विषय वस्तु** –इस उपागम की अन्य विशेषता यह है कि इसकी विषय वस्तु अत्यधिक जटिल है क्योंकि यह उपागम पर्यावरण से संबंधित उन सभी forces के अध्ययन पर दबाव डालता है जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रशासन को प्रभावित करती हैं। इस उपागम का इन सभी forces के अध्ययन पर बल इस उपागम की विषयवस्तु की जटिलता को और अधिक बढ़ा देता है। हालांकि प्रो0 रिग्स ने इस समस्या को सुलझाते हुए इस बात पर दबाव डाला कि हमें पर्यावरण की केवल उन्हीं forces का अध्ययन करना चाहिए जो प्रत्यक्ष रूप से प्रशासन को प्रभावित करती हैं।

3. **परस्पर अन्तःक्रियाओं पर अत्यधिक बल** –इस उपागम की अन्य विशेषता यह है कि यह उपागम प्रशासनिक संरचनाओं एवं उनके पर्यावरण जिसमें वे कार्य करती हैं, के परस्पर अर्न्तसम्बन्धों एवं अन्तः क्रियाओं पर अत्यधिक बल देता है। ये अन्तःक्रियाएँ इस उपागम का केन्द्र बिन्दु होती हैं जिनके इर्द गिर्द यह उपागम गति करता है। इन अन्तःक्रियाओं के संबंध में जानकारी प्रशासन एवं उसके पर्यावरण के संबंध में ज्ञान को अत्यधिक स्पष्ट कर देते हैं।

4. **Frame of Reference is overall Enviornment :** इस उपागम की अन्य विशेषता यह है कि इसके Reference का frame संपूर्ण पर्यावरण है। यह उपागम प्रशासन को सम्पूर्ण तन्त्र का एक उप–तन्त्र मानती है जो अन्य उप–तंत्रों जो इसके चारों ओर व्याप्त हैं जैसे कि सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक आदि के साथ अन्तःक्रिया करता है। अतः यह उपागम सम्पूर्ण पर्यावरण जिसमें प्रशासन भी स्थित है, को समझने पर दबाव डालती है।

पारिस्थितिकीय उपागम की मूल मान्यताएँ – इस उपागम की मुख्य मान्यताएं निम्नलिखित हैं –

1. लोकप्रशासन, शून्य में निवास नहीं करता है बल्कि वह मानव समाज का एक अंग है।
2. जिस प्रकार मानव, जीव–जन्तु तथा वनस्पतियाँ अपने आसपास के वातावरण से प्रभावित होते हैं, वैसे ही प्रशासनिक संगठन भी संबंधित सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक कारकों से प्रभावित होते हैं।
3. प्रशासन केवल बाह्य वातावरण से प्रभावित ही नहीं होता बल्कि वह पर्यावरण को भी प्रभावित करता है।
4. प्रत्येक प्रशासनिक व्यवस्था बाह्य वातावरण से निरन्तर क्रिया–प्रतिक्रिया करती रहती है।
5. प्रत्येक प्रशासनिक व्यवहार, प्रशासन संगठनों के बाह्य पर्यावरण एवं विभिन्न कारकों का मिलाजुला परिणाम है।

6. किसी संगठन की आन्तरिक प्रशासनिक कार्य संस्कृति, उस देश या समाज के मूल्यों तथा परंपराओं से बहुत प्रभावित रहती है।
7. तुलनात्मक लोक प्रशासन के सार्वभौमिक नियम प्रतिपादित करने के लिए उसके तुलनात्मक पारिस्थितिकीय अध्ययन की आवश्यकता है।
8. रिग्ज के अनुसार समाज की कुछ आवश्यकताएं ऐसी होती हैं जो परम्परागत, आधुनिक तथा संक्रमणकालीन सभी प्रकार के समाजों में समान रूप से पाई जाती हैं। इसी प्रकार कुछ प्रशासनिक आवश्यकताएं भी हो सकती हैं। इसलिए लुई ममफोर्ड कहते हैं ''किसी भी प्रकार का जीवन दूसरे से अलग होकर नहीं रह सकता, पर्यावरण के बिना किसी भी प्रकार का जीवन संभव नहीं है।''

आलोचना :

पारिस्थितिकीय उपागम, तुलनात्मक लोक प्रशासन का मुख्य उपागम बन चुका है। इस उपागम को प्रयोग में लाना सरल तो है किन्तु कुछ समस्याएँ सामने आती हैं –

1. प्रत्येक शोधकर्ता सामाजिक, सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक मूल्यों को अपनी दृष्टि से देखता है अतः दूसरे देश की सांस्कृतिक विरासत को समझना एक जटिल कार्य है। भारतीय 'जाति' की अवधारणा को प्रशासन के साथ समझना सरल कार्य नहीं है।
2. चूँकि मानव व्यवहार तथा समाज जटिल संरचनाएँ हैं अतः यह अनुमान लगाना कठिन है कि सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन, प्रशासन के द्वारा आ रहे हैं या अन्य कारकों से?
3. विश्व के सभी देशों तथा यहाँ तक कि भारत जैसे देश में कुछ मील पर बोली तथा पानी बदल जाता है वहाँ सामाजिक व्यवस्था तथा प्रशासनिक संस्कृति का विश्लेषण जटिल बन जाता है।

2.10 तुलनात्मक लोक प्रशासन का व्यवहारवादी उपागम :

समाजिक विज्ञानों में अध्ययन प्रणाली के रूप में व्यवहारवादी उपागम एक नई पद्धति है जो द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् शुरु हुई। व्यवहारवादी उपागम, समाजशास्त्र तथा मनोविज्ञान के सिद्धांतों तथा व्यवहारों से अनुप्राणित है। राजनीति विज्ञान तथा लोक प्रशासन सहित अधिकांश सामाजिक विज्ञानों में व्यवहारवादी उपागम से पूर्व केवल संस्थागत अध्ययन होता था जिसमें संबंधित संस्था जैसे विधानमंडल या नौकरशाही इत्यादि के ढांचे, कार्य तथा शक्तियों इत्यादि की व्याख्या की जाती थी। वास्तव में उन अध्ययनों से यह पता नहीं चल पाता था कि यथार्थ में व्यक्ति या कार्यकर्त्ता कैसे व्यवहार करते हैं। अतः परम्परागत अध्ययन प्रणालियों तथा सिद्धांतों के विद्रोह स्वरूप व्यवहारवादी उपागम की शुरुआत हुई यह एक अन्तरविषयक उपागम है जो वैज्ञानिक पद्धति तथा मूल्य निरपेक्ष दृष्टिकोण का समर्थन करता है।

लोक प्रशासन में व्यवहारवाद की प्रारंभिक जड़ें 1930 के मानव संबंध आन्दोलन से जुड़ी हुई हैं। इसके पश्चात् चेस्टर बर्नार्ड तथा हरबर्ट साइमन ने इस उपागम को लोक प्रशासन में प्रयुक्त किया। डेविड ईस्टन, वाइडनर, ब्लाऊ मर्टन, सायर्स, हैडी, स्टॉक्स, रिग्ज, रोबर्ट प्रेस्थस, माइकल, क्रोजियर रॉबर्ट डहाल तथा कैटलिन इत्यादि ने व्यवहारवादी उपागम को विकसित करने में योगदान दिया है। यह जो संगठनात्मक ''व्यवहार'' पर ध्यान केन्द्रित करता है। व्यवहारवाद अनुभव आधारित शोध तथा प्रविधियों में निरंतर सुधार की मांग करता है। इस उपागम में मानवीय कल्पनाओं, व्यक्तिगत मूल्यों तथा परम्पराओं को दरकिनार किया जाता है ताकि वैज्ञानिक ढंग से शोध निष्कर्ष प्राप्त हो सकें। चूंकि लोक प्रशासन में पूर्व प्रवर्तित अध्ययन विधियाँ तथा सिद्धांत भी पूर्णतया वैज्ञानिक नहीं थे, अतः व्यवहारवादी उपागम शीघ्र ही अपना लिया गया।

व्यवहारवादी उपागम का सार :

इस उपागम का सार मानवीय व्यवहार का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन करना है। इस प्रकार यह उपागम विभिन्न सांस्कृतिक संदर्भों में मानवीय व्यवहार का वैज्ञानिक अध्ययन करता है। मानवीय व्यवहार इस उपागम का केन्द्र बिन्दु है जिसके इर्द गिर्द यह उपागम घूमता है। लोक प्रशासन में यह उपागम प्रशासन पर मानवीय व्यवहार का प्रभाव संबंधी तर्क को उचित ठहराता है और इस बात का विश्लेषण भी करता है कि विभिन्न प्रकार के सांस्कृतिक संदर्भों में मानवीय व्यवहार प्रशासन को कैसे प्रभावित करता है। यह उपागम इसे स्पष्ट रूप से उजागर करता है कि किसी प्रशासनिक तन्त्र के व्यवहार को पूर्णरूप से समझने के लिए उसमें कार्यरत प्रशासनिक अधिकारियों के व्यवहार का वैज्ञानिक विश्लेषण अति आवश्यक है। अतः यह उपागम किसी संगठन में पाए जाने वाले कायदे–कानूनों की बजाए उस संगठन में कार्यरत व्यक्तियों एवं उनके समूहों के व्यवहार के वैज्ञानिक अध्ययन पर अधिक बल देता है।

व्यवहारवादी उपागम का विकास :

व्यवहारवाद का विकास द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद हुआ। इस वाद को जन्म देने वालों में **हरबर्ट साइमन** का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। हरबर्ट साइमन ने लोक प्रशासन में लोकोक्तियाँ (Proverbs in Public Administration) नामक अपने लेख में यह बताया है कि अब तक लोक प्रशासन में अनेक बातें लोकोक्तियों की भाँति स्वयंसिद्ध मानकर दोहरायी जा रही हैं। इनको सिद्ध करने के लिए किसी प्रमाण, तथ्य, विवेचन या तर्क की आवश्यकता नहीं समझी जाती थी। व्यवहारिक दृष्टि से ये कथन असत्य सिद्ध होते हैं। यदि लोक प्रशासन को विज्ञान की श्रेणी में लाना है तो इसके लिए इसके सिद्धांतों और मान्यताओं को व्यवहार की कसौटी पर खरा उतरना चाहिए। हरबर्ट साइमन ने अपनी एक अन्य रचना प्रशासनिक व्यवहार (Administrative Behaviour) में लोक प्रशासन के अध्ययन के परम्परागत दृष्टिकोण का खण्डन किया है। साइमन ने कहा है कि यदि हम संगठन का सही और वैज्ञानिक विवेचन करना चाहते हैं तो वह अध्ययन व्यवहार पर आधारित होना चाहिए। लोक प्रशासन के व्यवहारवादी दृष्टिकोण में साइमन का योगदान उल्लेखनीय रहा है। साइमन ने प्रशासन के व्यवहारिक पहलू को महत्व दिया था। उनका विचार था कि प्रत्येक संगठन में कार्य करने वाले प्रत्येक व्यक्ति की अपनी इच्छाएँ और आकांक्षाएँ होती हैं। व्यक्ति की सामाजिक परिस्थितियाँ अनेक प्रकार से उसके आचरण को प्रभावित करती हैं। अतः लोक प्रशासन का अध्ययन तभी व्यवस्थित और वैज्ञानिक हो सकेगा जब मानवीय व्यवहार के इन प्रभावक तत्वों का सही विवेचन किया जाए। **हरबर्ट साइमन** की मान्यता थी कि लोक प्रशासन की पाठ्यपुस्तकों में तीन विषयों का विवेचन किया जाना चाहिए। (1) इसमें उच्च स्तर के संगठन की बड़ी समस्याओं को सुलझाने पर विचार किया जाना चाहिए, (2) व्यर्थ की औपचारिकता और कट्टरता के स्थान पर संगठनों में मानवीय संबंधों के मनोवैज्ञानिक आधार पर गहनता से विचार किया जाना चाहिए तथा (3) व्यवहारिक समस्याओं का वास्तविक हल प्राप्त करने के लिए प्रशासन का विश्लेषण उसके व्यापक राजनीतिक एवं सरकारी ढाँचे के अन्तर्गत किया जाए। वस्तुतः हरबर्ट साइमन ने लोक प्रशासन के अध्ययन में मानवीय तत्व को सर्वोपरि रखने का समर्थन किया। हरबर्ट साइमन के अतिरिक्त व्यवहारवादी दृष्टिकोण के क्षेत्र में जिन प्रमुख विद्वानों ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है उनमें ब्लाऊमर्टन, वीडनर, सायर्स, हैडी, स्टाक्स, रिग्स आदि मुख्य हैं। इन सभी विद्वानों ने अपने अध्ययन का मूल आधार व्यवहारवाद की मूल मान्यताओं को माना है।

व्यवहारवादी उपागम की मुख्य विशेषताएँ :

1. **व्यष्टिः अध्ययन का समर्थन** – व्यवहावादी विचारकों की मान्यता है कि अध्ययन की इकाई जब समष्टि (Macro) होती है तो अध्ययन गहन नहीं हो पाता। अतः हमें व्यापकता से गहनता की ओर बढ़ने के लिए तथा विशिष्टीकरण की दृष्टि से अध्ययन को लघुता से इकाइयों में बांट लेना चाहिए। व्यवहारविदों का मानना है कि हमारा अध्ययन समष्टिगत न होकर व्यष्टि होना चाहिए। व्यवहारवादी दृष्टिकोण ने छोटे–छोटे विषयों के गंभीर अध्ययन करने के लिए हमें उस संगठन में पर्यवेक्षण की प्रक्रिया, आदेश की एकता, नियन्त्रण प्रक्रिया, प्रत्यायोजन व्यवस्था आदि किसी भी एक पहलू का गहन अध्ययन करना चाहिए। कारण यह है कि मानव मस्तिष्क की शक्तियाँ, ध्यान, अनुभव और रुचि आदि सीमित होते हैं।

2. **वैज्ञानिकता के प्रति झुकाव** – व्यवहारवादी विचारक अपने अध्ययन को वैज्ञानिक बनाने की चेष्टा करते हैं। हरबर्ट साइमन ने लोक प्रशासन का अध्ययन करते समय क्या होना चाहिए, के स्थान पर जो है, उसका विवेचन किया। व्यवहारवादियों का मत है कि लोक प्रशासन एक वैज्ञानिक अध्ययन का विषय है, इसको केवल मूल्यों संबंधी विवेचन करने की अपेक्षा तथ्यसंगत, वास्तविक और व्यवहारिक बनाया जाना चाहिए। इसके निष्कर्ष स्थायी, निश्चित एवं सर्वव्यापी होने चाहिए। इसके लिए वैज्ञानिक अध्ययन प्रणाली को अपनाया जाना चाहिए। ऐसा होने पर ही लोक प्रशासन का अध्ययन सत्य, निष्पक्ष, गहन एवं विश्वसनीय बन पायेगा। यही कारण है सभी व्यवहारवादी विचारक, निरीक्षणवादी, अनुभववादी एवं प्रयोगवादी शोधकर्ता बन गए हैं।

3. **सन्दर्भ विशेष का महत्व** – व्यवहारवादी विचारकों की यह भी मान्यता है कि लोक प्रशासन की समस्याओं का विवेचन वैज्ञानिक विधि के संदर्भ में ही किया जाना चाहिए। हम कह सकते हैं कि यह दृष्टिकोण ज्ञान की पूर्णता या निरपेक्षता में विश्वास नहीं करता। इस दृष्टिकोण की यह मान्यता है कि ज्ञान की सत्यता और उपयोगिता उसके संदर्भ विशेष पर ही निर्भर करती है। ज्ञान के दूसरे अन्य विषयों के साथ उसके अन्तर्सम्बन्ध महत्व रखते हैं।

4. **अनुभवमूलक सिद्धान्त** – व्यवहारवादी विचार अनुभववाद से अत्यधिक प्रभावित हैं क्योंकि व्यवहारवादी विचारक अनुभव, निरीक्षण, प्रयोग, संदर्भ–ज्ञान और परिस्थिति के विवेचन के आधार पर समस्याओं का विवेचन करते हैं। इन विचारकों का मानना है कि लोक प्रशासन भी एक स्वतंत्र अध्ययन विज्ञान के रूप में अपनी स्वतंत्र विचारधाराओं को सृजित कर सकने में समर्थ हैं।

5. **व्यक्ति और प्रशासन का सिद्धांत** – व्यवहारवादी उपागम की यह महत्वपूर्ण विशेषता है कि इसमें व्यक्ति के प्रशासनात्मक संगठन के साथ संबंध पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इसमें प्रशासन व व्यक्ति के कार्य करने के उद्देश्य, निर्णय लेने की प्रक्रिया और अधिकार के स्वरूप पर विशेष विचार किया जाता है।

6. **अनौपचारिक संबंधों का अध्ययन** – व्यवहारवादी उपागम मनुष्यों के अनौपचारिक संबंधों का अध्ययन करने पर विशेष बल देता है, क्योंकि प्रशासनिक संगठनों में यदि केवल औपचारिकतापूर्ण व्यवहार रखा जाए तो यह कभी–कभी अव्यावहारिक एवं अमानवीय भी हो सकता है। प्रशासन में भी इस प्रकार की अनेक समस्याएँ होती हैं जिनमें मानवीय दृष्टिकोण को महत्व दिया जाना आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त लोक प्रशासक भी मानव ही होते हैं, अतः उनके अनौपचारिक संबंधों का महत्व और भी बढ़ जाता है।

7. **नेतृत्व का गुण** – यह दृष्टिकोण इस बात पर बल देता है कि लोक प्रशासन में नेतृत्व के ऐसे गुण होने चाहिए जिनके कारण वह अपने अधीनस्थ व्यक्तियों से अपने कार्य में सहयोग प्राप्त कर सके व उनका कुशलतापूर्वक नेतृत्व कर सकें।

8. **अन्तर्निर्भरता और अन्तर्अध्ययन संबंधी ज्ञान की समन्वित पुष्टि** – व्यवहारवादी उपागम अन्तर्निर्भरता और अन्तर्अध्ययन संबंधी ज्ञान की एक समन्वित दृष्टि है। एक ओर जबकि यह उपागम लोक प्रशासन के अन्तर्शास्त्रीय अध्ययन पर बल देता है तो दूसरी ओर वह लोक प्रशासन को एक स्वतंत्र विज्ञान मानता है।

योगदान :

लोक प्रशासन के अध्ययन के क्षेत्र में व्यवहारवादी दृष्टिकोण 1960 के आसपास सर्वोच्च शिखर पर था। इस दृष्टिकोण के लोक प्रशासन में योगदान को निम्नांकित बिन्दुओं से स्पष्ट किया जा सकता है।

1. **विश्लेषणात्मक एवं व्याख्यात्मक सिद्धांत के समारम्भ का सूचक** – लोक प्रशासन को व्यवहारवादी दृष्टिकोण सभी समाज विज्ञानों में विश्लेषणात्मक एवं व्याख्यात्मक सिद्धांत के समारम्भ का सूचक है। इस दृष्टिकोण से लोक प्रशासन के अध्ययन को एक नवीन दृष्टि, दिशा–बोध एवं नया स्वरूप प्राप्त हुआ है।

2. **वैज्ञानिक अनुभववाद** – व्यवहारवाद ने अपने वैज्ञानिक अनुभववाद के माध्यम से लोक प्रशासन को नवीन दृष्टि तथा नवीन क्षेत्र प्रदान किया। व्यवहारवादी विचारकों ने औपचारिक दृष्टिकोण के साथ व्यवहारवादी मान्यताएँ जोड़कर उसे पूर्ण बनाने का प्रयास किया है।

3. **संदर्भ के महत्व का प्रतिपादन** – व्यवहारवादी दृष्टिकोण ने लोक प्रशासन के विद्वानों को संदर्भ का महत्व बताया है। यह दृष्टिकोण लोक प्रशासन के अध्ययन को मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, मानवशास्त्री, अर्थशास्त्र और राजनीतिशास्त्र के सिद्धांतों, पद्धतियों, उपलब्धियों तथा दृष्टिकोणों को नजदीक लाने में सफल रहा है।

4. **लोक प्रशासन को व्यावहारिक विषय बनाना** – व्यवहारवादी दृष्टिकोण या उपागम ने लोक प्रशासन को एक वैचारिक अध्ययन विषय के स्थान पर व्यवहारिक अध्ययन का विषय बनाया है तथा उसे केवल वर्णनात्मक विषय से विश्लेषणात्मक विषय की ओर उन्मुख किया है।

5. **लोक प्रशासन का सम्बन्ध 'क्या होना चाहिए' की जगह पर 'क्या है' से स्थापित करना–** व्यवहारवादी दृष्टिकोण ने लोक प्रशासन के मूल्यों को स्वतंत्र बनाने की चेष्टा की है। उसे आधुनिकता और एकता प्रदान करने से उसका संबंध 'क्या होना चाहिए' की जगह पर 'क्या है' से स्थापित किया है।

6. **नवीन दृष्टि प्रदान करना** – व्यवहारवादी दृष्टिकोण ने अपने निष्कर्षों के माध्यम से लोक प्रशासन को नवीन दृष्टि, नवीन पद्धति, नये मापन और नवीन विषय–क्षेत्र प्रस्तुत किये हैं।

7. **शोध का विषय बनाना** –व्यवहारवादी दृष्टिकोण से सैद्धान्तिक प्रस्थापनाओं को यथार्थ के संदर्भ में शोध का विषय बनाया जा सकता है।

8. **प्रविधियों एवं तकनीकों का प्रयोग** – व्यवहारवाद ने लोक प्रशासन में नवीन और परिष्कृत प्रविधियों तथा तकनीकों के प्रयोग को संभव बनाया है।

व्यवहारवादी उपागम की आलोचना – इस उपागम की आलोचना निम्नलिखित आधारों पर की जा सकती है –

1. **अपने सिद्धान्तों के प्रतिपादन में कट्टरपंथी** – व्यवहारवादी विचार जहाँ एक ओर अपने निष्कर्षों तथा मान्यताओं को सापेक्ष मानते हैं वहीं दूसरी ओर वे उस समय तक किसी के अस्तित्व को महत्व देने के लिए तैयार नहीं होते जब तक कि उसे गिना, तोला या मापा नहीं जा सकता। इस प्रकार ये भी धार्मिक कट्टरपंथियों के समकक्ष बन जाते हैं।

2. **लोक प्रशासन को विज्ञान मानने की बात अनिश्चयपूर्ण** –व्यवहारवादी विचारकों द्वारा अभी तक मानव व्यवहार का विज्ञान प्रस्तुत नहीं किया जा सका है। इतने समय बाद भी लोक प्रशासन को एक विज्ञान के रूप में मानने की बात अभी अनिश्चयपूर्ण बनी हुई है।

3. **तथ्यों तथा आंकड़ों को एकत्रित करने में व्यस्त**– व्यवहारवादी विचारक अध्ययन की पद्धति पर अत्यधिक बल देते हैं। अनेक बार यह देखा गया है कि व्यवहारवादी विचारकों ने महत्वपूर्ण विषय को छोड़कर प्रायः महत्वहीन विषयों के संबंध में तथ्य और आंकड़ों को एकत्रित करने में अपने आपको आवश्यकता से अधिक ही व्यस्त रखा है।

4. **लोक प्रशासन में प्राकृतिक या भौतिक विज्ञानों के समकक्ष बनाने का दुराग्रह** – व्यवहारवादी विचारक यह भूल जाते हैं कि प्राकृतिक विज्ञानों तथा लोक प्रशासन के तथ्यों में अत्यधिक अंतर है। वास्तव में लोक प्रशासन को प्राकृतिक या भौतिक विज्ञानों के समकक्ष बनाने का प्रयास करना अत्यधिक कठिन है।

5. **व्यवहारवादी सिद्धांत निर्माण एवं सत्यापन प्रक्रियाएँ अपर्याप्त –** कुछ आलोचकों ने व्यवहारवादी सिद्धांत निर्माण और सत्यापन प्रक्रियाओं को अपर्याप्त माना है।

6. **अन्तिम मूल्यों के संबंध में स्पष्ट नहीं** – कुछ आलोचकों का विचार है कि व्यवहारवादी विचारकों ने अंतिम मूल्यों के विवेचन में कुछ नहीं कहा है। यह असन्तोषजनक स्थिति है। कोई भी उद्देश्यहीन कार्य प्रशासनिक कार्य की कोटि में कैसे हो सकता है?

7. **इतिहासेत्तर प्रकृति** – व्यवहारवादी विचारकों की प्रकृति इतिहासेत्तर है। उनकी पद्धति में अब तक जो कुछ हो चुका है उसकी नियमित अवहेलना की गई है।

8. **लघु–स्तरीय एवं अधिक महत्वपूर्ण घटनाओं पर अधिक ध्यान** –व्यवहारवादियों ने अपनी समस्त शक्ति लघु–स्तरीय एवं महत्वपूर्ण घटनाओं के अध्ययन में लगा दी है। इन्होंने व्यष्टि और समष्टि दोनों स्तरों पर अनेक महत्वपूर्ण प्रश्नों को उपेक्षित किया है।

9. **रूढ़िवादी** – व्यवहारवादी विचारक अपने आपको मूल्य निरपेक्ष तो मानते ही हैं किंतु वास्तव में वे स्थायित्व के पक्षधर हैं और इस प्रकार रूढ़िवादी बन गये हैं।

10. **तात्कालिक गंभीर समस्याओं के विवेचन से दूर** –व्यवहारवादी दृष्टिकोण के आलोचकों का कहना है कि व्यवहारवादियों ने तात्कालिक गंभीर समस्याओं से अपने आपको पृथक करके आरामकुर्सी वाले बुद्धिजीवियों में सम्मिलित कर लिया है।

11. **उपयोगिता पर प्रश्नचिन्ह्** –व्यवहारवादी विचारकों ने वैज्ञानिकता की आड़ में जिस तरह से कल्पना–शक्ति का सहारा लिया है, उसके कारण इस वाद की उपयोगिता पर ही प्रश्न–चिन्ह् लग गया है।

12. **सिद्धांतवादी** – व्यवहारवादी विचारक सिद्धांतवादी रहे हैं तथा उनके निष्कर्षों का प्रशासनिक वास्तविकताओं के जगत में कोई उपयोग नहीं था क्योंकि वहाँ मूल्य, इतिहास, संस्कृति, परंपराएँ आदि सब घुले–मिले रहते हैं।

'अपनी प्रगति जांचिए'

5. संरचनाएँ कितने प्रकार की होती हैं?

6. पारिस्थितिकी उपागम की दो विशेषताएँ बताइए।

7. संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक उपागम का उपयोग लोक प्रशासन में किए जाने पर किस विद्वान द्वारा बल दिया गया और कब?

8. व्यवहारवादी उपागम का सार लिखिए।

9. लोक प्रशासन में व्यवहारवादी उपागम का सबसे पहले उपयोग करने वाले विद्वान कौन–2 थे?

2.11 सारांश :

लोक प्रशासन अपने पर्यावरण के साथ गहनतम रूप से जुड़ा हुआ है अतः यह इससे न केवल प्रभावित होता है बल्कि इसे भी प्रभावित करता है। यह विचार वनस्पति विज्ञान से ग्रहण किया गया है। लोक प्रशासन मानव द्वारा संचालित क्रिया होने के कारण अपने चारों ओर व्याप्त सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनैतिक पर्यावरण के साथ अन्तःक्रिया करता है। इस अन्तःक्रिया में पर्यावरण के ये सभी पहलू प्रशासन पर गंभीर एवं निर्णायक असर डालते हैं।

सामाजिक पर्यावरण के तहत लोक प्रशासन के ऊपर सामाजिक वर्गीकरण (वर्ग/जातियाँ) परिवार, पारिवारिक संबंध, समाजिक मूल्य, सामाजिक एवं स्वैच्छिक संगठनों की समाज में भूमिका आदि का प्रभाव जानने का प्रयास किया जाता है। जबकि सांस्कृतिक पर्यावरण में भाषा, धर्म, क्षेत्रवाद एवं संचार के प्रतीकों के प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। प्रशासन के उपर सबसे अधिक प्रभाव आर्थिक पर्यावरण का पड़ता है, क्योंकि अर्थ के अभाव में प्रशासन के लिए एक कदम चलना भी कठिन कार्य है और अच्छी तकनीक, अच्छी मानवीय शक्ति, अच्छे आधारभूत ढांचें की उपलब्धता प्रशासन के लिए दुलर्भ हो जाती है। इसका दुष्प्रभाव प्रशासन की क्रियाशीलता पर पड़ता है। ठीक उसी प्रकार लोक प्रशासन का राजनैतिक पर्यावरण भी इसे गहनतम रूप से प्रभावित करता है। कुशल राजनैतिक नेतृत्व, प्रजातान्त्रिक आधार पर गठित राजनैतिक दल, दबाव समूहों की बहुलता, जनमत, निष्पक्ष प्रेस, जनभागीदारी आदि प्रशासन की क्षमता एवं प्रभावशीलता को अत्यधिक बढ़ा देती है। इसके विपरीत इन सब राजैनतिक पहलुओं का राजनैतिक स्तर पर अभाव प्रशासन में भ्रष्टाचार क्षमता एवं निष्क्रियता को जन्म देता है।

इसके अतिरिक्त इस इकाई में तुलनात्मक लोक प्रशासन के विभिन्न उपागमों का भी वर्णन किया गया है। संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक उपागम जैसा कि इसके नाम से प्रतीत है, दो मुख्य अवधारणों के इर्द–गिर्द घूमता है– संरचना एवं कार्य। किसी देश की प्रशासनिक व्यवस्था को समझने हेतु यह उपागम इन दोनों पहलुओं का प्रयोग करता है। लोक प्रशासन में इसके प्रयोग हेतु सुझाव डी. वेल्डो ने 1955 में दिया। इसके पश्चात् प्रो0 रिग्स ने इस उपागम का प्रयोग अपने मॉडलों की उत्पत्ति में किया।

पारिस्थितिकी उपागम लोक प्रशासन एवं उसके पर्यावरण के मध्य होने वाली अन्तःक्रियाओं का अध्ययन करता है और प्रशासन पर्यावरण पर क्या प्रभाव डालता है और पर्यावरण प्रशासन को कैसे प्रभावित करता है, को जानने का प्रयास करता है। तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन क्षेत्र में यह नवीनतम उपागम है तथा 1970 के दशक में उभर कर आया। इसके प्रमुख प्रयोगकर्ता एफ. डब्ल्यू. रिग्स हैं।

व्यवहारवादी उपागम विभिन्न सांस्कृतिक संदर्भों में स्थित प्रशासनिक व्यवस्थाओं में कार्यरत कर्मचारियों के प्रशासनिक व्यवहार का वैज्ञानिक विश्लेषण करने से संबंधित है। लोक प्रशासन में व्यवहारवाद का आगमन 1930 के दशक में मानवीय संबंध दृष्टिकोण के साथ हुआ और बाद में चेस्टर बर्नाड एवं हाबर्ट साइमन इस उपागम के प्रमुख सूत्रधार रहे।

2.12 मुख्य शब्दावली (Key terms)

पर्यावरण : प्रशासन के चारों तरफ व्याप्त आवरण ही उसका पर्यावरण कहलाता है।

वनस्पति विज्ञान : विज्ञान की वह शाखा, जो पेड़ पौधों का अध्ययन करती है, जीव–विज्ञान कहलाती है।

संरचना : किसी तन्त्र के व्यवहार का वह पैट्रन जो उसकी प्रमुख विशेषता बन गई है।

प्रकार्य : संरचनाओं की अन्तःक्रियाओं का परिणाम ही प्रकार्य कहलाता है।

अर्न्तविषयी उपागम : ऐसा उपागम जो विभिन्न विषयों के ज्ञान का प्रयोग करता है।

मूल्य निरपेक्ष उपागम : ऐसा उपागम जो मूल्यों की बजाए तथ्यों पर केन्द्रित हो।

2.13 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर (Answer to check your progress)

1. अ) परिवार एवं रिश्तेदारी ब) जाति/वर्ग
2. अ) भाषा ब) धर्म स) क्षेत्रवाद द) संचार के प्रतीक
3. अ) आर्थिक विकास का स्तर ब) संसाधनों की उपलब्धता
4. अ) राजनैतिक नेतृत्व ब) राजनैतिक दलों का प्रजातान्त्रिक आधार
5. संरचनाएँ दो प्रकार की होती हैं– (1) साकार (Concrete) (2) विश्लेषणात्मक (Analytical)
6. अ) अर्न्तविषयी उपागम ब) जटिल विषय वस्तु
7. डी. वेल्डो ने 1955 में
8. प्रशासनिक व्यवस्था में कार्यरत कर्मचारियों के व्यवहार का वैज्ञानिक विश्लेषण करना ही व्यवहारवादी उपागम का सार है।
9. चेस्टर बनार्ड एवं हबर्ट साइमन।

2.14 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. लोक प्रशासन के अध्ययन में पर्यावरण की क्या महत्ता है?
2. लोक प्रशासन के सामाजिक पर्यावरण का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
3. सांस्कृतिक पर्यावरण लोक प्रशासन पर कैसे प्रभाव डालता है?
4. लोक प्रशासन के आर्थिक पर्यावरण की संक्षेप में व्याख्या कीजिए।
5. राजनैतिक पर्यावरण लोक प्रशासन पर गहरा प्रभाव डालता है, वर्णन कीजिए।
6. संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक उपागम से आपका क्या अभिप्राय है?
7. पारिस्थितिकी उपागम की विशेषताएँ लिखिए।
8. व्यवहारवादी उपागम के गुण व दोष लिखिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. लोक प्रशासन के सामाजिक–आर्थिक पर्यावरण का सविस्तार वर्णन करें।

2. लोक प्रशासन के सामाजिक–सांस्कृतिक पर्यावरण का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
3. लोक प्रशासन के राजनैतिक पर्यावरण का सविस्तार विवरण दीजिए।
4. संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक उपागम की विशेषताएँ, गुण एवं दोष लिखिए।
5. पारिस्थितिकी उपागम के संदर्भ में एक प्रस्ताव लिखिए।
6. व्यवहारवादी उपागम का अर्थ, विशेषताएँ, गुण व दोषों का वर्णन कीजिए।

2.15 आप ये भी पढ़ सकते हैं

यूनाईटिड किंग्डम, अमेरिका, फ्रांस व जापान के प्रशासन की विशेषताएँ

(Salient Features of Administration in U.K. USA, France & Japan)

इकाई की रूपरेखा

3.0 परिचय

3.1 इकाई के उद्देश्य

3.2 ब्रिटिश प्रशासनिक तन्त्र की विशेषताएँ

3.3 अमेरिका के प्रशासन की विशेषताएँ

3.4 फ्रांस के प्रशासनिक तंत्र की विशेषताएँ

3.5 जापान के प्रशासन की विशेषताएँ

3.6 सारांश

3.7 मुख्य शब्दावली

3.8 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

3.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

3.10 आप ये भी पढ़ सकते हैं।

3.0 परिचय

विश्व के भिन्न–भिन्न देशों में विभिन्न प्रकार की शासन व्यवस्थाएँ कार्यरत पाई जाती हैं। अधिकत्तर राष्ट्रों में संसदीय शासन प्रणाली या अध्यक्षीय शासन प्रणाली पाई जाती है। संसदीय शासन प्रणाली में कार्यपालिका एवं विधानपालिका के मध्य गहरा सम्बन्ध पाया जाता है तथा प्रधानमंत्री राष्ट्र का वास्तविक मुखिया एवं राष्ट्रपति/सम्राट नाममात्र के मुखिया के रूप में कार्य करते हैं लेकिन अध्यक्षीय शासन प्रणाली में राष्ट्रपति वास्तविक मुखिया के रूप में कार्य करता है और सारी की सारी कार्यकारी शक्तियाँ उसमें निहित होती हैं। कुछ देशों में अर्धसंसदीय व अर्ध अध्यक्षीय शासन व्यवस्था भी देखने को मिलती है, इसे 'दोहरी कार्यपालिका' वाली शासन प्रणाली भी कहा जाता है। यहाँ पर राष्ट्रपति एवं प्रधानमंत्री दोनों ही वास्तविक रूप में कार्य करते हैं जबकि प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। इसके अतिरिक्त कुछ राष्ट्रों में शासन की शक्तियाँ एकल कार्यपालिका की बजाय बहुल

कार्यपालिका में निहित होती हैं। बहुल–कार्यपालिका में 5–7 सदस्य भी हो सकते हैं जिनकी शक्तियाँ समान होती हैं।

तुलनात्मक लोक प्रशासन विभिन्न शासन प्रणालियों में कार्यरत प्रशासनिक व्यवस्थाओं का गहन अध्ययन करता है ताकि उनकी यथा संभव तुलनाएँ की जा सके। इस इकाई में विभिन्न शासन प्रणालियों खासतौर से ग्रेट ब्रिटेन, अमेरिका, फ्रांस व जापान आदि की प्रशासनिक व्यवस्थाओं की प्रमुख विशेषताओं को जानने का प्रयास किया गया है।

3.1 इकाई के उद्देश्य :

ब्रिटेन के प्रशासन की विशेषताओं की जानकारी हासिल करना।

अमेरिका के प्रशासनिक तन्त्र की प्रमुख विशेषताओं का पता लगाना।

फ्रांसीसी प्रशासनिक व्यवस्था को समझना व उसकी विशेषताओं को जानना।

जापानी प्रशासन तन्त्र की प्रमुख विशेषताएँ जानना।

3.2 ब्रिटिश प्रशासनिक तन्त्र की विशेषताएँ

जिस देश को हम इंग्लैण्ड, ब्रिटेन या ग्रेट ब्रिटेन कहते हैं उसका पूरा नाम ग्रेट ब्रिटेन और उत्तरी आयरलैण्ड का संयुक्त राज्य (United Kindom of Great Britain & Northern Ireland) है। ग्रेट ब्रिटेन में इंग्लैण्ड, स्काटलैंड व वेल्स के प्रदेश सम्मिलित हैं। विकसित देशों में बड़े स्तर पर प्रायः लोक प्रशासन की समस्याएँ विभिन्नताओं की अपेक्षा समानता अधिक रखती हैं। फिर भी इन देशों की प्रशासकीय सेवाएँ अपनी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं कार्य के राजनैतिक तथा सामाजिक वातावरण के आधार पर कुछ राष्ट्रीय निजी विशेषताएँ भी रखती हैं।

संसदीय लोकतंत्र के जनक ब्रिटेन में प्रधानमंत्री तथा मंत्रिमण्डल का प्रभुत्व, शासन व्यवस्था पर स्पष्ट दिखाई देता है। शासन प्रणाली का वास्तविक सूत्र मंत्रिमण्डल के हाथों में रहता है और राजा नाममात्र की सत्ता है। मंत्रिमण्डल देश के प्रशासन की नीतियाँ बनाता है तथा संसद की स्वीकृति के बाद उन्हें कार्यरूप में लोक सेवकों के माध्यम से लागू करता है। विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका का अलग–अलग कार्यक्षेत्र है। ब्रिटिश संसद बहुत शक्ति–संपन्न संस्था है जो किसी भी कानून नियम या परंपरा को परिवर्तित कर सकती है। मंत्रिमण्डल को उसके प्रशासनिक कार्यों में सहयोग देने हेतु मंत्रिमण्डल सचिवालय है। विभागों की व्यवस्था लगभग भारत के विभागों के समान है। ब्रिटेन का संविधान अलिखित है किंतु वहाँ की परंपराएँ, संधियाँ, निर्णय, आदेश, लोकमत आदि संविधान का ही कार्य करती हैं। विस्तृत तथा लिखित संवैधानिक दस्तावेज के अभाव में सफलतापूर्वक शासन को संचालित करना ब्रिटिश शासन प्रणाली की विशिष्ट विशेषता है।

ब्रिटेन में एकात्मक प्रशासनिक व्यवस्था प्रचलित है। वहाँ सभी लोक–सेवक केन्द्रीय सरकार के अधीन कार्यरत हैं। भारत के समान राज्य प्रशासनिक व्यवस्था ब्रिटेन में प्रचलित नहीं है। स्थानीय स्तर पर प्रशासन के कार्यों को संचालित करने के लिए 'काउण्टी बरो' 'काउण्टी परिषदें', 'म्यूनिसिपल बरो', 'शहरी जिलों' तथा 'ग्रामीण जिलों' में बंटा हुआ है। इसी प्रकार लंदन शहर को वृहत्तर लंदन तथा लंदन बरो नामक स्थानीय संस्थाओं द्वारा प्रशासित किया जाता है। यह व्यवस्था भारतीय नगरपालिकाओं तथा नगरनिगमों के समान है। सरकार के प्रत्येक स्तर तथा विभागों में समितियाँ बनाकर कार्य करने की परंपरा भी ब्रिटिश प्रशासन की विशेषता है। संक्षेप में ब्रिटिश प्रशासन की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

1. **विकास का परिणाम** – ग्रेट ब्रिटेन का संविधान निर्मित न होकर विकसित है वहाँ का प्रशासन भी लंबे विकास का परिणाम है। जे.ए. क्रॉस के शब्दों में, ''ब्रिटिश प्रशासन की संरचना तार्किक की अपेक्षा कालक्रम

के अनुसार है।'' मध्यकालीन राजाओं के समय प्रशासनिक विभागों की स्थिति ऐसी थी मानो वे राजाओं की घरेलू समितियाँ हों। तत्कालीन सरकारी अधिकारियों की स्थिति आज से भिन्न थी। लॉर्ड चांसलर राजा का एक मुख्य क्लर्क मात्र होता था। सरकार के सीमित कार्यों को संपन्न करने के लिए विभागों का संगठन किया जाता था। ये विभाग राज्य की सुरक्षा, राजनयिक संबंधों का संचालन, राजस्व एकत्रित करना, आंतरिक शांति व्यवस्था बनाए रखना आदि कार्य करते थे। राज्य के कार्यों में वृद्धि के साथ–साथ प्रशासकीय विभागों की संख्या तथा कार्यों में वृद्धि हुई। अनेक नए विभागों का जन्म और पुराने विभागों के संगठन तथा कार्यों में परिवर्तन किए गए। पुराने विभागों में मुख्य विभाग राजकोष (Treasury) है। स्टुअर्ट राजाओं के समय तक राजकोष लॉर्ड हाई ट्रेजरार के अधीन था। जेम्स प्रथम ने निर्णय लिया कि इस शक्तिशाली अधिकारी के दायित्वों को अन्य मंत्रियों में बांट दिया जाए। 1612 में इस हेतु एक बोर्ड बनाया गया और उसे राज्य के वित्त विभाग के पर्यवेक्षण का काम सौंपा गया। बोर्ड का मुख्य कार्यकर्ता 'चांसलर ऑफ द एक्सचेकर' है। यह महत्वपूर्ण पदाधिकारी प्रधानमंत्री नागरिक सेवा नियंत्रण रखता है बोर्ड के अन्य सदस्य कॉमन्स सभा के बहुमत दल के सचेतक होते हैं। पुराने प्रशासनिक कार्यालयों में राजा की परिषद् प्रिवी परिषद, लॉर्ड चांसलर, राज्य सचिव का कार्यालय आदि उल्लेखनीय हैं।

2. **एक जीवंत संगठन** – ग्रेट ब्रिटेन के प्रशासन में समयानुकूल परिवर्तन होते हैं। वह परिस्थिति ओर आवश्यकताओं के अनुसार संशोधित हुआ है। ग्रेट ब्रिटेन प्रशासन समय और स्थान की परिस्थितियों के अनुसार समायोजन के प्रश्न को महत्वपूर्ण मानता है। वहाँ विभागों का संगठन करते समय मंत्रालयों की संख्या एवं उत्तरदायित्व की कोई योजना नहीं बनाई गई थी। जब राज्य के कार्य बढ़े तो उन्हें तत्कालीन मंत्रालयों को सौंप दिया गया और नए मंत्रालयों की स्थापना कर दी गई। कालांतर में विभागीय संगठनों में एकरूपता और कार्यकुशलता की समस्या उपस्थित हुई, विभागीय पुनर्गठन के प्रयास किए गए। इन प्रयासों द्वारा अनावश्यक विभागों को समाप्त किया गया तथा एक मंत्रालय में समान प्रकृति के कार्य रखे गए।

   मंत्रालयों के पुनर्गठन पर विचार के लिए हेल्डेन समिति (Haldane Committee) नियुक्त की गई। इस समिति का सुझाव था ब्रिटिश शासन को दस प्रमुख भागों में संगठित किया जाए–वित्त, राष्ट्रीय सुरक्षा, विदेशी मामले, अनुसंधान और सूचना, उत्पादन, रोजगारपूर्ति, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं न्याय। समिति की राय थी कि यदि कोई विषय बड़ा है तो एक से अधिक विभाग भी बनाए जा सकते हैं। हेल्डेन समिति के प्रतिवेदन को लोकप्रियता प्राप्त हुई, किंतु सरकार ने कदम नहीं उठाए और प्राक्कलन समिति के आग्रह पर सरकारी संगठन समिति की स्थापना की गई। प्रधानमंत्री एटली ने प्रशासनिक विकास को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ब्रिटिश संसद प्रशासकीय संगठन की सुव्यवस्था एवं कार्यकुशलता में पर्याप्त रुचि लेती है। कॉमन्स सभा की प्राक्कलन एवं जनलेखा समितियाँ समय–समय पर इस संबंध में अध्ययन करती हैं तथा उपयुक्त सिफारिशें करती हैं।

3. **केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति** –यद्यपि ब्रिटिश शासन में केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति व्याप्त है, जिसके अंतर्गत शासन की समस्त शक्तियाँ मंत्रिमंडल नामक संस्था में समाहित होती जा रही हैं किंतु 'विधि के शासन' के मूलभूत सिद्धांत ब्रिटेन में प्रवर्तित हैं इसके अंतर्गत कानून की सर्वोच्चता, सभी के लिए समानता तथा न्यायिक निर्णयों का आदर सभी को सहजता में स्वीकार्य है। संविधान सहित बहुत से कानून असंहिताबद्ध हैं फिर भी भ्रम या असमंजस्यता की स्थिति उत्पन्न नहीं होती है क्योंकि प्राकृतिक न्याय एवं मानवाधिकारों में सरकार, प्रशासन एवं आम व्यक्ति की समान रुचि रहती है।

4. **ईमानदारी तथा प्रशासनिक पारदर्शिता** – ब्रिटिश लोक प्रशासन प्रायः भ्रष्टाचार मुक्त रहा है। रिश्वतखोरी एवं भाई–भतीजावाद की व्याधियाँ दशकों पूर्व समाप्त हो चुकी हैं। नागरिक शिकायतों के निवारण हेतु 1967 से संसदीय आयुक्त अर्थात् ब्रिटिश औम्बुड्समैन नामक संस्था कार्यरत है। संसदीय आयुक्त लोक सेवकों के

विरूद्ध अनियमितताओं, भ्रष्टाचार एवं लापरवाही की जांच करता है। रोचक तथ्य यह है कि संसदीय आयुक्त के पास वर्ष भर में मात्र 400–500 शिकायतें ही आती हैं और उनमें भी अभी तक भ्रष्टाचार का बड़ा मामला सामने नहीं आया है। प्रशासनिक कार्यकुशलता तथा जवाबदेयता में वृद्धि करने के लिए अनेक ठोस कदम मार्गरेट थ्रैचर सरकार द्वारा उठाए गए हैं। इसी प्रकार जॉन मेजर द्वारा जून 1991 में नागरिक अधिकार पत्र (Citizens Charter) नामक व्यवस्था भी प्रारंभ की गई है। नागरिक अधिकार पत्रों के माध्यम से प्रशासनिक पारदर्शिता सुनिश्चित हुई है। ब्रिटेन में नागरिक अधिकारपत्र न केवल अंग्रेजी भाषा में बल्कि पंजाबी, गुजराती, बंगाली, हिन्दी, चीनी, वियतनामी इत्यादि भाषाओं में भी उपलब्ध हैं। प्रशासनिक ईमानदारी, कार्यकुशलता तथा पारदर्शिता बनाए रखने के लिए प्रधानमंत्री स्वयं निगरानी रखते हैं तथा संसद में इसकी पृथक से रिपोर्ट प्रस्तुत करते हैं।

5. **एकात्मक प्रशासन** – इंग्लैण्ड, स्कॉटलैंड, वेल्स तथा उत्तरी आयरलैंड इत्यादि द्वीपों का क्षेत्रफल कम है तथा जनसंख्या भी सीमित है, अतः ब्रिटेन में एकात्मक शासन व्यवस्था को अपनाया गया है। भारत तथा अमेरिका की तरह ब्रिटेन में केन्द्रीय एवं प्रान्तीय दो स्तरों पर सरकारें नहीं होती हैं बल्कि एक ही सरकार के अंतर्गत समस्त ग्रेट ब्रिटेन का प्रशासन संचालित होता है जो 'एकात्मक (Unitary) प्रशासन का पर्याय है। यद्यपि नगरों एवं गांवों में स्थानीय स्वशासन की स्वतंत्र सरकारें होती हैं किन्तु इन सरकारों को प्रधानमंत्री एवं उनके मंत्रिमण्डल द्वारा ही दिशा निर्देश जारी किए जाते हैं। लंदन स्थित प्रशासनिक विभागों, मंत्रालयों तथा उनके कार्यकारी संगठनों की शाखाएँ संपूर्ण देश (द्वीपों) में फैली हुई है जिनका नियंत्रण–निर्देशन संबंधित विभाग का मंत्री ही करता है।

6. **प्रशासन में समन्वय** – ब्रिटिश लोक प्रशासन में समन्वय की उपयुक्त व्यवस्था है। प्रत्येक सरकारी विभाग राष्ट्रीय नीति के अलग–अलग पहलुओं को क्रियान्वित करता है। विभागों के कार्य क्षेत्र में पृथकता रहते हुए भी आधारभूत एकरूपता रहती है। वे मूलतः एक ही लक्ष्य के लिए कार्य करते हैं। विभागों के कार्यों में प्रतिद्वन्दिता रोकने के लिए मानव शक्ति एवं संसाधनों का उचित उपयोग करने के लिए तथा उपलब्ध सुविधाओं का लाभ उठाने के लिए विभागों के बीच समन्वय स्थापित किया जाता है। समन्वय द्वारा प्रशासन में कार्यकुशलता लाई जाती है, अपव्यय की रोकथाम की जाती है, अनावश्यक देरी को रोका जाता है, विभिन्न विभागों में सहयोगपूर्ण संबंधों की स्थापना की जाती है तथा जनता को अधिक से अधिक सेवाएँ प्रदान की जाती हैं। समन्वय की स्थिति ने प्रशासन को जनाकांक्षाएँ पूरा करने में सक्षम बनाया है।

   ब्रिटिश प्रशासन में समन्वय की स्थापना के लिए विभिन्न संस्थागत प्रबंध किए गए हैं। मंत्रालय स्तर पर मंत्रिमंडल द्वारा समन्वय स्थापित किया जाता है। मंत्रिमंडल की स्थायी समिति द्वारा यह कार्य संपन्न किया जाता है। निम्न अधिकारी स्तर पर ट्रेजरी समन्वय स्थापना करती है। यह विभिन्न सरकारी विभागों के व्यय पर नियंत्रण रखती है और प्रशासकीय सेवाओं में दोहराव तथा अतिराव पर रोक लगा कर उसकी कार्यकुशलता एवं मितव्ययता को बढ़ाती है। प्रत्येक विभाग ट्रेजरी को वार्षिक अनुमान प्रस्तुत करता है। ट्रेजरी सभी विभागों के कार्यों का परीक्षण कर जहाँ समन्वय न हो वहाँ समन्वय स्थापित करने का सुझाव भी देती है। समन्वय स्थापना के लिए अनेक अंतर्विभागीय समितियाँ होती हैं। सरकारी विभागों के अधिकारी इन समितियों के सदस्य होते हैं। प्रत्येक मंत्रालय भी समन्वय का कार्य करता है।

7. **अविशेषज्ञों तथा विशेषज्ञों का समन्वय (Co-ordination of Amateurs and Experts)** – ब्रिटिश शासन–सूत्र का संचालन मंत्रिगण एवं लोकसेवक करते हैं। मंत्रियों में प्रशासनिक अनभिज्ञता होती है। मंत्री अपने–अपने विभाग के अध्यक्ष होते हैं, किंतु उन्हें वास्तविक अनुभवों और प्रशासनिक बारीकियों का ज्ञान नहीं होता है। राजनीतिक आधार पर नियुक्त मंत्री का कार्यकाल अनिश्चित होता है वह राजनीतिक प्रपंचों में इतना फँसा रहता है कि प्रशासन के वास्तविक संचालन का ज्ञान उसे नही हो पाता। वह नौसिखिया

अथवा गैर–विशेषज्ञ होता है। ऐसे अवसर कदाचित् ही आते हैं जबकि अर्थशास्त्री को चांसलर ऑफ एक्सचेकर, डॉक्टर को स्वास्थ्य मंत्री तथा अध्यापक को शिक्षामंत्री नियुक्त किया जाए। किसी नौसीखिए सांसद को मंत्री नियुक्त किया जा सकता है। लोकसेवक प्रशासन के क्षेत्र में विशेषज्ञ होते हैं। वे मंत्रियों को नीति निर्धारण व नीतियों को कार्यान्वित करने में सहायता देते हैं। लोकसेवकों का प्रशिक्षण और अनुभव उनको विशेषज्ञ बना देता है। राजनीतिक प्रपंचों से दूर रह कर वे अपने विभाग की भीतरी नीति, तथ्यों का अच्छा ज्ञान रखते हैं। वे मंत्रियों को उचित परामर्श तथा अपने पद की परिधियों में रहकर नीतियों को कार्यरूप देने में सहायता करते हैं। ब्रिटिश प्रशासन में इनके द्वारा अविशेषज्ञ–विशेषज्ञ के मध्य समन्वय रहता है।

8. **गैर विशेषज्ञ अधिकारियों की प्रभावशीलता (Dominance of Non-expert Officials)** ब्रिटिश लोक प्रशासन में विशेषज्ञ अधिकारियों की अपेक्षा गैर–विशेषज्ञ अधिकारियों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। मंत्रालय में मुख्य स्थायी अधिकारी सामान्य प्रशासक (Generalis) होते हैं। वे संबंधित मंत्री से अधिक विशेषज्ञ नहीं होते। सर वारेन् फिशर के कथनानुसार ''एक सरकारी विभाग का स्थायी अध्यक्ष किसी विषय में विशेषज्ञ नहीं होता है। वह मंत्री का परामर्शदाता होता है। वह मंत्री के अधीन सामान्य प्रबंधक और नियंत्रक है। अपने पद पर पहुंचने से पूर्व वह संभवतः आधे दर्जन से अधिक विभागों में कार्य का अनुभव प्राप्त कर लेता है।''

9. **विधि का शासन (Rule of Law)** ग्रेट ब्रिटेन में विधि का शासन है। वहाँ कानून की दृष्टि से साधारण नागरिकों एवं प्रशासनिक अधिकारियों में कोई भेद नहीं है। फ्रांस की भाँति यहाँ प्रशासनिक कानून अथवा प्रशासनिक न्याय की व्यवस्था नहीं है। किसी व्यक्ति को स्वेच्छापूर्ण शक्तियाँ नहीं दी गई हैं। प्रो0 डायसी ने विधि के शासन की तीन मुख्य बातों का उल्लेख किया –

   (i) कानून की सर्वोपरिता : जब तक कोई व्यक्ति कानून के विरूद्ध आचरण न करे और यह देश के सामान्य न्यायालय में सिद्ध न हो जाए तब तक किसी को दण्ड नहीं दिया जा सकता है और न ही किसी को शारीरिक हानि पहुंचायी जा सकती है।

   (ii) कानून की समानता : कोई व्यक्ति कानून के ऊपर नहीं है वरन् प्रत्येक व्यक्ति देश के सामान्य कानून से शासित होता है तथा सामान्य ट्रिब्यूनलों के क्षेत्राधिकार में रहता है। जो एक व्यक्ति के लिए कानून है, वह समस्त नागरिकों के लिए कानून है।

   (iii) संवैधानिक सिद्धांतों का न्यायिक निर्णय की उपज होना : विधान में अस्पष्टता होने पर न्यायालयों के निर्णय ही अंतिम माने जाते हैं। संसदीय कानूनों का निर्माण विधि के शासन की रक्षा के लिए किया जाता है। विधि के शासन ने ब्रिटिश प्रशासन पर लोक संप्रभुता का वर्चस्व स्थापित किया है।

10. **तटस्थता एवं प्रतिबद्धता**– लोक सेवाओं में तटस्थता का सिद्धांत ब्रिटेन से प्रतिपादित हुआ है तटस्थता या निष्पक्षता से तात्पर्य लोक सेवकों का राजनीतिक रूप से तटस्थ रहना है। ब्रिटेन में चाहे कोई भी दल सत्ता में हो, मंत्री किसी भी राजनीतिक विचारधारा का हो तथा नीतियाँ किसी भी रूप में परिवर्तित की जाएं, लोक सेवकों का कार्य निष्पक्ष भाव से उन्हें स्वीकारना है। प्रतिबद्धता का आशय आस्था एवं पूर्ण सहयोग से है। यद्यपि तटस्थता एवं प्रतिबद्धता दो विपरीत विचारधाराएं हैं, फिर भी ब्रिटेन में लोक सेवक तटस्थ होते हुए राष्ट्र, कानून, लोकतंत्र तथा जनकल्याण के उच्च आदर्शों के प्रति प्रतिबद्धता प्रकट करते हैं।

11. **समिति व्यवस्था –** किसी बड़े उद्देश्य कार्य या संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु कुछ छोटे समूह या विशेषज्ञ इकाईयाँ उपकार्यों के अनुसार गठित कर दी जाती हैं। यही समिति (कमेटी) व्यवस्था है। विश्व के सभी देशों में समिति व्यवस्था प्रवर्तित है किंतु ब्रिटेन तथा भारत में इसका प्रसार कुछ अधिक प्रतीत होता है। ब्रिटेन में संसद, मंत्रिमंडल, मंत्रालयों, विभागों, स्थानीय निकायों तथा शिक्षा तंत्र में असंख्य समितियाँ कार्यरत

होती हैं। समिति व्यवस्था के जहाँ अनेक लाभ हैं वहीं हानियाँ भी पर्याप्त हैं। ब्रिटेन की समिति व्यवस्था से दुखी होकर (**सर विंसटन चर्चिल**) ने कहा था– ''मेरी समझ से ये समितियाँ समाप्त हो जानी चाहिए, क्योंकि इन्होंने हमें इस तरह नियंत्रित कर लिया है जैसे कि आस्ट्रेलियावासी खरगोशों से नियंत्रित हैं।'' (ज्ञात रहे एक समय खरगोशों की अधिक संख्या आस्ट्रेलिया की भीषण समस्या बन गई थी)।

12. **प्रभावी स्थानीय स्वशासन** – यद्यपि ब्रिटेन में एकात्मक शासन पद्धति है तथापि नगरीय एवं ग्रामीण स्थानीय स्वशासन की स्वतंत्र इकाईयाँ भी संगठित की गई हैं। सन् 1888 के कानून के माध्यम से प्राचीन लंदन शहर में महानगरीय स्वशासन पद्धति है जबकि लंदन के आस–पास बसी कालोनियों के लिए महानगरीय काउंटी है। ब्रिटेन में स्थानीय शासन की सबसे प्राचीन संस्था काउंटी है। इन्हें शायर भी कहा जाता है जैसे हैम्पशायर, योर्कशायर। वस्तुतः काउंटी ब्रिटिश प्रशासन तथा निर्वाचन की मूलभूत इकाई भी है। काउंटी भी दो प्रकार की है। प्रशासनिक काउंटी तथा काउंटी बरो इसके दो रूप हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय स्वशासन की मूल इकाई पेरिश कहलाती है। पेरिश वे संस्था हैं जहाँ किसी गांव में स्थानीय चर्च एवं शासन संचालन की परिषद/समिति हो। बहुत सारे पेरिश मिलकर जिले का निर्माण करते हैं। स्थानीय स्वशासन की अधिकांश इकाइयों में जनप्रतिनिधियों से युक्त संचालन समिति होती है जो प्रायः तीन वर्ष के लिए चुनी जाती हैं। जिस काउंटी में निर्वाचित प्रतिनिधि नहीं होते हैं वहाँ प्रिंसीपल अधिकारी, (स्थानीय लेफ्टीनेंट), शेरिफ तथा जस्टिस ऑफ पीस काउंटी प्रशासन को संचालित करते हैं। पेयजल, विद्युत स्वच्छता, टीकाकरण, शिक्षा तथा समाज कल्याण के कार्य स्थानीय स्वशासन के अधीन हैं।

एच. एम. स्टाउट ने अपनी पुस्तक 'British Government' में ब्रिटिश प्रशासनिक तंत्र की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए लिखा है ''ग्रेट ब्रिटेन के नागरिकों की विश्व की सर्वश्रेष्ठ प्रशासनिक तंत्र द्वारा सेवा की जा रही है। यह राष्ट्रीय नीति के संचालन का एक प्रभावशाली माध्यम है। सत्ता एवं अधिकारों की दिशाएं प्रत्यक्ष एवं स्पष्ट हैं। लोक सेवक आज्ञाकारी, सक्षम तथा ईमानदार हैं। जब सार्वजनिक नीति घोषित कर दी जाती है तब उसकी क्रियान्विति को प्रशासनिक अधिकारियों के विरोध के बावजूद भी शायद ही कभी परिवर्तित किया जाता है। शांति एवं युद्ध में, राष्ट्रीय प्रशासन ने भारी उत्तरदायित्वों को निभाने तथा कार्यकुशलता बनाए रखने में सदैव अपनी योग्यता का प्रदर्शन किया है।''

3.2 अमेरिका के प्रशासन की विशेषताएँ :

यदि ब्रिटेन को ससंदीय लोकतंत्र का जनक माना जाता है तो अमेरिका को अध्यक्षीय शासन व्यवस्था का प्रारंभकर्ता। दोनों की शासन प्रणाली तथा राजनीतिक रूप–रचना में भी पर्याप्त विभिन्नताएं हैं। अमरीका का संविधान लिखित, निर्मित और कठोर है। सरकार अध्यक्षात्मक और संधात्मक है। अध्यक्षीय शासन व्यवस्था के फलस्वरूप राष्ट्रपति का पद अत्यंत महत्वपूर्ण है। राष्ट्रपति ही वास्तविक कार्यपालिका का प्रमुख होता है तथा संसद के प्रति उत्तरदायी नहीं होता है। न्यायपालिका स्वतंत्र है तथा शक्ति–पृथक्करण सिद्धांत को अपनाया गया है लिखित संविधान के होते हुए भी अमेरिका में बहुत से कार्य परंपराओं पर आधारित हैं जैसे कि समस्त प्रत्यक्ष निर्वाचन मंगलवार को होते हैं और सर्वोच्च न्यायालय अपने निर्णय केवल शुक्रवार को ही देते हैं। वहाँ राष्ट्रपति के मंत्रिमंडल के सदस्य संसद के सदस्य नहीं होते हैं, बल्कि वे राष्ट्रपति के दल के सदस्य तथा विशेषज्ञ होते हैं। अमेरिका में मंत्री को 'सचिव' कहा जाता है प्रशासनतंत्र में विशेषज्ञों का महत्व होता है। सरकारी विभागों के अतिरिक्त स्वतंत्र नियामकीय आयोग या बोर्ड भी महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। इस प्रकार संयुक्त राज्य अमेरिका की प्रशासनिक व्यवस्था, सुदृढ़, कुशल तथा आधुनिक प्रवृत्तियों से युक्त मानी जाती है। स्वाभाविक रूप से इस प्रशासनिक व्यवस्था पर संविधान तथा शासन का प्रभाव स्पष्टतः दिखाई देता है। अमेरिकी प्रशासन की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं।

1. **लोकतांत्रिक एवं लोक कल्याणकारी स्वरूप** –अमेरिकी लोक प्रशासन का स्वरूप प्रजातांत्रिक मूल्यों से

प्रभावित है क्योंकि संघीय स्तर पर राष्ट्रपति तथा राज्यों में गवर्नर का चयन जनता की इच्छा पर निर्भर करता है। इसी प्रकार विधान मंडलों में जनप्रतिनिधियों का निर्वाचन भी जनता ही करती है। ये जनप्रतिनिधि प्रशासन के संचालन हेतु विविध प्रकार के कानून निर्मित करते हैं। अप्रत्यक्ष रूप से शासन की समस्त शक्तियाँ जनता में समाहित हैं। इसी प्रकार अमेरिका में नागरिकों के कल्याण, विकास तथा सुरक्षा का दायित्व प्रशासन के कंधों पर है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए जीवन की न्यूनतम तथा मूलभूत आवश्यकताओं जैसे कि भोजन, वस्त्र, आवास, सुरक्षा, परिवहन, बीमा, शिक्षा तथा स्वास्थ्य इत्यादि की पूर्ति में सरकार सहायता करती है। लोक प्रशासन द्वारा संचालित सामाजिक सेवाओं में शिथिलता किसी भी स्तर पर सहजता से स्वीकार्य नहीं है।

2. **विधि का शासन** –आधुनिक लोककल्याणकारी राज्यों में विधि का शासन प्राथमिक आवश्यकता है। विधि के शासन से आशय उस व्यवस्था से है जिसमें कानून की सर्वोच्चता रहती है तथा व्यक्ति या संस्था को विधि से अधिक महत्व नहीं दिया जाता है। अमेरिकी प्रशासन के उद्देश्य, कार्यप्रणाली तथा व्यवहार का उसी प्रकार निर्धारण किया जाता है जैसा कि संविधान में वर्णित आदर्शों तथा कांग्रेस द्वारा पारित कानूनों में उल्लेख होता है। बहुभाषी, बहुराष्ट्रीयता तथा बहुनस्लों एवं विविध संस्कृतियों से युक्त अमेरिका में समान कानून लागू है यद्यपि कतिपय प्रकरणों में विशिष्टता का नियम भी प्रवर्तित है।

3. **प्रशासन का कानूनी आधार (Legal Basis of the Administration) –** अमेरिकी राष्ट्रीय सरकार के प्रशासन का स्वरूप कांग्रेस द्वारा पारित कानूनों पर निर्भर है। संविधान में प्रशासनिक संगठन के लिए कोई विशेष प्रावधान नहीं मिलता। कांग्रेस अपनी वर्णित शक्तियों का प्रयोग कर ऐसे अनेक अधिनियम पारित करती है जो प्रशासनिक अभिकरणों की रचना एवं संगठन की व्यवस्था कर सके। राष्ट्रपति समय–समय पर ऐसे कार्यपालिका आदेश प्रसारित करते हैं जिनसे अस्थाई प्रकृति के संकटकालीन अभिकरणों की रचना होती है या स्थाई विभागों के संगठन बनते रहते हैं।

4. **तकनीकी का प्रभाव (The Impact of Technology)** संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रशासन पर तकनीकी का प्रभाव चार रूपों में हुआ है –1. इसमें सेवीवर्ग व्यवस्था आवश्यक है जो प्रत्येक स्तर पर नए प्रत्याशियों के प्रवेश को स्वीकार एवं प्रोत्साहित कर सके। नए वातावरण में सेवीवर्ग प्रशासन को भर्ती, वेतन, कार्यकाल एवं सेवानिवृति के प्रावधानों में लोचशीलता रखने के लिए सदैव तैयार रहना चाहिए। 2. सेवाकालीन प्रशिक्षण का महत्व बढ़ा है। पूर्णकालीन प्रशिक्षण के लिए कर्मचारी को बहुत समय तक सेवा से पृथक रखना उचित नहीं है। यह व्यवस्था कर्मचारी को तकनीकी परिवर्तनों से परिचित रखने में सक्षम नहीं है। सरकारी प्रयोगशालाओं तथा कार्यालयों में कार्य करने वाले इंजीनियरों, वैज्ञानिकों, तकनीकी विशेषज्ञों, चिकित्सकों आदि के लिए प्रशिक्षण आवश्यक है। 3. व्यावसायिक कार्यकर्ता तथा विशेषतः वैज्ञानिक स्वयं को एक विशेष जाति का मानने लगे हैं। वे विशेषाधिकार की मांग करते हैं। वे अपने कर्त्तव्यों एवं दायित्वों की ओर ध्यान देने की अपेक्षा पद स्तर को ऊँचा उठाने पर समय तथा शक्ति व्यय करते हैं। 4. तकनीकी युग वैज्ञानिकों को लोक–सेवक होने के नाते उन्हें वैज्ञानिक से अधिक होने की प्रेरणा देता है।

5. **जटिल एवं उलझा हुआ प्रशासनिक तंत्र** – भारत की भाँति अमेरिकी प्रशासनिक तंत्र भी अत्यंत जटिल तथा उलझा हुआ है क्योंकि वहाँ पर विविध प्रकृति, आधार एवं उद्देश्यों से युक्त प्रशासनिक कार्यरत हैं। कुछ प्रशासनिक विभाग, उनके ब्यूरो, सेवाएं तथा कार्यालय के नाम से बहुधा भ्रांति उत्पन्न हो जाती है। कतिपय विभाग ऐसे भी हैं जो संघीय एवं प्रान्तीय दोनों स्तरों पर कार्यरत हैं। मंत्रिमंडल के प्रशासनिक विभागों पर प्रत्यक्ष नियंत्रण के अतिरिक्त स्वतंत्र कार्यकारी अभिकरण, स्वतंत्र नियामकीय आयोग तथा लोक उपक्रमों के रूप में कई प्रकार के बोर्ड, निगम तथा आयोग कार्यरत हैं तो प्रशासनिक जटिलता एवं विविधता के परिचायक हैं। विविध प्रकार के प्रशासनिक संगठनों के निर्माण से कांग्रेस एवं राष्ट्रपति दोनों के लिए विधि

निर्माण, नियंत्रण और समन्वय किंचित कठिन हो जाता है। भारत की भांति अमेरिका में भी लोक उपक्रमों के नामकरण में अस्पष्टता है। उदाहरण के लिए National Rural Electric Cooperative Association एक लोक उपक्रम है।

6. **कुशल कार्मिक प्रशासन**– संघीय अथवा केन्द्रीय स्तर पर संरचित प्रशासनिक संस्थाओं पर कांग्रेस के कानून प्रभावी होते हैं तथा इन संस्थाओं के कर्मिकों को वे कार्य भी संपादित करने पड़ते हैं जो संविधान की संघीय सूची में वर्णित किए गए हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका के संघीय प्रशासन के अधीन लगभग 32 लाख लोक सेवक कार्यरत हैं जबकि सभी राज्यों के कर्मिकों सहित यह संख्या सवा दो करोड़ से भी अधिक हो जाती है। कुशल, प्रतिबद्ध तथा आधुनिक प्रकृति के कार्मिक प्रशासन की कतिपय विशेषताएँ निम्नांकित हैं :–

   (क) संयुक्त राज्य अमेरिका में लोक सेवाओं का वर्गीकरण पद की स्थिति के आधार पर किया गया है भारत या फ्रांस की तरह रैंक वर्गीकरण नहीं है लोक सेवाओं को जनरल शिड्यूल 1 से 18 तक विभक्त किया गया है। सन् 1978 से Senior Executive Service भी शुरू की गई है जो सर्वोच्च लोक सेवाएं हैं।

   (ख) भर्ती का मुख्य आधार योग्यता को बनाया गया है तथापि लूट प्रणाली अभी प्रवर्तित है। सन् 1978 के सिविल सर्विस सुधारों के पश्चात् संघीय लोक सेवा आयोग समाप्त कर दिया गया है तथा कार्मिक भर्ती, प्रशिक्षण, वर्गीकरण एवं सेवा शर्तों से संबंधित कार्य **"Office of Personnel Management"** करता है।

   (ग) भर्ती के लिए आयु सीमा 18 से 70 वर्ष है। कतिपय तकनीकी पदों को छोड़कर शेष पदों हेतु कोई शैक्षिक योग्यता निर्धारित नहीं है केवल संबंधित पद हेतु प्रतियोगी परीक्षा उत्तीर्ण करनी पड़ती है।

   (घ) सेवापूर्व तथा सेवाकालीन प्रशिक्षण सहित कम्प्यूटर के प्रयोग पर अत्यधिक बल दिया जाता है। विशेषज्ञों का वर्चस्व है।

   (ङ) अमेरिकी प्रशासन में लोक सेवाओं को स्थायी कैरियर के रूप में नहीं देखा जाता है बल्कि अच्छे अवसर मिलने पर बार–बार नौकरी छोड़ना एक साधारण प्रवृत्ति है। पदोन्नति में योग्यता तथा वरिष्ठता दोनों का महत्व रहता है। कार्य निष्पादन मूल्यांकन गंभीरतापूर्वक किया जाता है।

   (च) वेतन प्रति सप्ताह दिया जाता है तथा निजी क्षेत्र की तुलना में लोक सेवाओं का वेतन कम आकर्षक माना जाता है।

   (छ) टाफ्ट हर्टले अधिनियम 1947 के बाद लोक सेवकों द्वारा हड़ताल करना पूर्णतया वर्जित है।

   (ज) कार्मिकों के व्यावसायिक संघों की स्थिति सुदृढ़ है तथा वे सरकार पर दबाव डालने के अतिरिक्त सदस्यों की योग्यताओं, ज्ञान एवं व्यावसायिक आदर्शों में वृद्धि के प्रयास भी करते हैं।

   इसी प्रकार कम्प्यूटर, फैक्स, इंटरनेट, उपग्रह, पेजर, ई–मेल तथा अन्य फाइबर ओप्टिक इलैक्ट्रोनिक सुविधाओं से युक्त अमेरिकी प्रशासन उन्नत एवं आधुनिकीकृत माना जाता है। 30 जून, 2000 को राष्ट्रपति बिल क्लिंटन ने इलैक्ट्रानिक हस्ताक्षर कर ई–कॉमर्स तथा ऑनलाईन अनुबंधों को वैधता प्रदान कर दी थी।

7. **प्रशासन पर दलों का प्रभाव (Influence of Parties on Administration) -** अमेरिकी प्रशासन पर दलों का भारी प्रभाव है। अमेरिका में मुख्य कार्यपालक अधिकारी के बदलते ही प्रशासनिक अधिकारी भी बदल जाते थे, लेकिन 1883 के बाद अब ये अधिकारी प्रतियोगिता के आधार पर प्रशासनिक आयोग द्वारा चुने जाते हैं। उच्च प्रशासनिक पदों पर अब भी व्यापक दलीय प्रभाव है और राष्ट्रपति द्वारा राजनीतिक

नियुक्तियों की कीमत चार्ल्स ब्रियर्ड के अनुसार 'कई करोड़ डॉलर वार्षिक' है। आयोगों, निगमों, एजेन्सियों आदि के प्रधान राजनीतिक आधार पर चुने जाते हैं। इनके अधिकांश सदस्यों की नियुक्ति दलबंदी के आधार पर होती है। परामर्शदाता मंडल में राष्ट्रपति के विश्वासपात्र दलीय नेताओं और व्यक्तिगत मित्रों को स्थान मिलता है। प्रशासनिक नीतियों के निर्धारण में स्थायी प्रशासकों का व्यवहार में कोई महत्व नहीं है।

8. **राजनीतिक नेतृत्व** – राज्य की निर्वाचित या नियुक्त कार्यपालिका देश की नौकरशाही को नेतृत्व प्रदान करती है और प्रशासन को उत्तरदायी बनाए रखने की व्यवस्था करती है। आशंका यह है कि कहीं इसके कारण लोकसेवक अपनी व्यावसायिक ईमानदारी से न फिसल जाएँ। राजनीतिक नेतृत्व के प्रति स्वामिभक्ति और कर्मचारी के स्वतंत्र विचारों में उपयुक्त संतुलन होना चाहिए। एक के लिए दूसरी का बलिदान करना अनुचित है। लोकसेवक का अपना राजनीतिक दृष्टिकोण कुछ भी हो सकता है तथा राजनीतिक नेताओं के प्रति उसकी भावनाएँ कैसी भी रहे किंतु उसे अपने कर्त्तव्य निर्वाह में बाधक नहीं बनाते हैं। संयुक्त राज्य में नौकरशाही का परीक्षाकाल आम चुनावों के बाद होता है जब नया राजनीतिक नेतृत्व कुर्सी पर आता है। यह संक्रमण नए तथा पुराने अधिकारियों के लिए कष्टदायक बन जाता है। अतः लोकसेवकों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे नए राजनीतिक नेतृत्व के साथ सामंजस्य स्थापित करें।

9. **विशेष हित समूहों का प्रभाव** – हित समूह अमेरिकी राजनीतिक क्षितिज की महत्वपूर्ण यथार्थताएँ हैं। सरकारी कार्यकलापों की भाँति प्रशासन क्षेत्र में विशेष हित समूह सक्रिय रहते हैं। इनकी सक्रियता एवं संगठन इतना सक्षम नहीं होता कि ये श्रेष्ठ प्रशासन हितों के समर्थन के लिए कोई संयुक्त मोर्चा बना सकें। यहाँ के कुछ मुख्य हित समूह ये हैं – National Civil League, American Society for Public Administration, Public Personnel Association, The Society for Personnel Administration आदि। ये हित समूह उचित तकनीकी कार्य संचालन तथा योग्यता व्यवस्था के प्रसार में उपयुक्त भूमिका निभाते हैं। इनकी रुचि प्रशासनिक कार्यकुशलता एवं सक्षमता में नहीं रहती। ये अपने सदस्यों के हितों की पूर्ति के प्रयास करते हैं। संयुक्त राज्य में कोई ऐसा हित समूह नहीं है जो व्यवस्थापिका में जाकर श्रेष्ठ, कल्पनाशील और रचनात्मक सेवीवर्ग प्रबंध के लिए संघर्ष करे।

10. **स्वतंत्र राज्य प्रशासन** – संघीय शासन व्यवस्था अपनाने के कारण संयुक्त राज्य अमेरिका में संघीय तथा प्रान्तीय दोनों स्तरों पर पृथक–पृथक संविधान तथा प्रशासनिक तंत्र कार्यरत हैं। संघीय संविधान के अनुच्छेद–1(8) में वर्णित विषयों के अतिरिक्त सभी विषय राज्य सूची या राज्य प्रशासन से संबंधित माने गए हैं। प्रत्येक राज्य का अपना संविधान, विधानमंडल, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका कार्यरत हैं जो उस राज्य की भौगोलिक परिस्थितियों, ऐतिहासिक संदर्भों, जनाकांक्षाओं और सामाजिक आर्थिक परिवेश से प्रभावित हैं। राज्य प्रशासन में आपातकालीन या संकटकालीन परिस्थितियों के अतिरिक्त संघ सरकार का कभी कोई हस्तक्षेप नहीं रहता है।

11. **सुस्थापित स्थानीय स्वशासन** – संयुक्त राज्य अमेरिका में नगरीय तथा ग्रामीण स्थानीय स्वशासन राज्य सूची का विषय है अतः संबंधित राज्य के संविधान में स्थानीय संस्थाओं का वर्णन किया गया है। स्थानीय स्वशासन की इन संस्थाओं को लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की पर्याय मानते हुए पर्याप्त शक्तियों एवं अधिकारों से युक्त किया गया है। बड़े नगरों में नगर निगम तथा छोटे नगरों में सिटी, काउंटी, टाउनशिप कौंसिल नामक संस्थाएँ कार्यरत हैं जबकि गांवों में भी स्थानीय स्वशासन की जड़ें व्याप्त हैं। नगरपालिका चुनाव में जीता मंडल, साक्षात्कार द्वारा अपना 'सिटी मैनेजर' चुनता है।

12. **नौकरशाही का वर्चस्व** – वर्तमान विश्व के अधिकांश देशों में चाहे वे विकसित हों या विकासशील,

नौकरशाही एक बुराई या समस्या के रूप में आंकी जाती है लेकिन इस बुराई का अन्य कोई अच्छा विकल्प नहीं है। मंत्रियों को परामर्श, तथ्यों के प्रस्तुतीकरण, नियमों के निर्माण, कानूनों के क्रियान्वयन तथा जनसंपर्क के संबंध में राजनीतिज्ञों को कुशल कार्मिकों की आवश्यकता है लेकिन इन कार्मिकों में सर्वत्र अहं तथा विशिष्ट प्रस्थिति का भाव व्याप्त है। **नार्मन जे. पावेल** के अनुसार– ''संयुक्त राज्य अमेरिका की लोक सेवाएँ विशाल, महंगी तथा शक्तिशाली है।'' उच्च पदों पर आसीन नौकरशाही तथा राजनीतिज्ञों का घनिष्ठ संबंध पाया जाता है जो प्रशासनिक कुशलता में सार्थक अथवा सकारात्मक योगदान शायद ही कभी देता है। 1966 से जनता को 'सूचना का अधिकार' प्राप्त है जिससे नौकरशाही पर अंकुश लगा है।

13. **निजी क्षेत्र का वर्चस्व** – यद्यपि लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन दो पृथक ध्रुव हैं तथापि सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक संदर्भों में ये एक ही सिक्के के दो पहलू माने जाते हैं। अमेरिकी अर्थव्यवस्था पूंजीवाद की पोषक मानी जाती है अतः प्रतिरक्षा, पुलिस, परमाणु अस्त्र–शस्त्र, अंतरिक्ष कार्यक्रम तथा केंरेंसी नियंत्रण के अतिरिक्त अन्य सभी क्षेत्रों में पूंजीपतियों का हस्तक्षेप इतना अधिक है कि सरकार की भूमिका लगभग गौण है। शिक्षा , स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग, वाणिज्य, संचार, व्यापार तथा अनुसंधान के क्षेत्रों में निजी क्षेत्र का बोलबाला है। आधुनिक तकनीक एवं उच्च प्रबंधकीय योग्यताओं के कारण निजी क्षेत्र का संगठन, कार्यप्रणाली, उत्पादन तथा उसकी गुणवत्ता विश्वसनीय मानी जाती है अतः अधिसंख्य योग्य एवं प्रतिभाशाली व्यक्तियों का झुकाव निजी क्षेत्र की ओर पाया जाता है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. यूनाईटिड किंग्डम से आपका क्या अभिप्रायः है?
2. विधि के शासन से आप क्या समझते हैं?
3. अमेरिकी प्रशासन की एक विशेषता बताइए।
4. शक्ति–पृथक्करण के सिद्धांत से आप क्या समझते हैं?

3.3 फ्रांस के प्रशासनिक तन्त्र की विशेषताएँ

सन् 1789 की महान क्रांति के पश्चात् फ्रांस में लोकतांत्रिक मूल्यों, समानता, भाईचारे तथा मानवाधिकार के प्रसार हेतु लोककल्याणकारी शासन व्यवस्थाओं की मांग निरंतर बलवती होती गई। सन् 1791 से 1958 तक फ्रांस में बार–बार संविधान निर्मित किए गए, शासन–सत्ताएँ परिवर्तित हुई तथा निरंतर अस्थिरता का दौर जारी रहा लेकिन समस्त भीषण झंझावतों को जूझ कर फ्रांसिसी प्रशासन एक उत्कृष्ट एवं जन हितकारी प्रशासन के रूप में स्थापित हो गया जिसकी निम्नांकित विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं –

1. **शास्त्रीय प्रशासन** – फ्रांस का लोक प्रशासन अति उत्तम या शास्त्रीय प्रशासनिक व्यवस्था का पर्याय माना जाता है क्योंकि लोक प्रशासन के सिद्धांतों तथा मानवीय पक्षों के संयुक्त आधार पर निर्मित यह प्रशासन अत्यधिक औपचारिक एवं विधिवत रूप से गठित है। **फैरल हैडी** इस व्यवस्था को शास्त्रीय इसलिए मानते हैं कि राजनीतिक अस्थिरता के दौर में भी फ्रांस की प्रशासनिक व्यवस्था ने कभी भी जनकल्याण एवं लोक महत्व के विषयों एवं कार्यों को तिलांजलि नहीं दी बल्कि प्रशासनिक निरंतरता सदैव बनी रही। जर्मनी तथा फ्रांस के प्रशासन की यह विशेषता अस्थिर राजनीति वाले देशों के लिए उदाहरण है। लोक सेवाओं का सुदृढ़ ढांचा तथा राष्ट्र के प्रति भक्ति सहित लोक सेवकों के विकास के समस्त आवश्यक प्रावधान इस व्यवस्था की विशेषता है। प्रत्येक व्यक्ति के जन्म के पूर्व से लेकर मृत्यु के पश्चात् तक लोक प्रशासन अपना दायित्व कदम–कदम पर निर्वाहित करता है। यद्यपि वाल्टेयर तथा क्वसने जैसे फ्रांसिसी दार्शनिक 'अहस्तक्षेपवादी राज्य' के समर्थक रहे हैं तो भी फ्रांस में अधिकांशतः विद्वान राज्य तथा लोक प्रशासन को

जनहित एवं विकास का ही माध्यम मानते हैं। फ्रांस में सरकारों का स्वरूप समयानुसार परिवर्तित होता रहा है किंतु लोक प्रशासन यथावत जनकल्याण से संलग्न रहा है। इसी क्रम में **अलफ्रेड डाइमन्ट** ने कहा है – ''गणराज्य समाप्त हो जाता किंतु प्रशासन बना रहता है।'' हरबर्थ लूथी भी मानते हैं कि फ्रांस में जब संसद कार्य नहीं कर रही होती है तो पूर्व के निर्णयों से प्रशासन संचालित होता रहता है। सप्ताहों तक सरकार नहीं होती, तो भी सैंकड़ों प्रीफेक्ट प्रशासन संचालित करते रहते हैं।

2. **राज्य की सर्वोच्चता** –फ्रांस में प्राचीनकाल से ही रोमन सभ्यता, संस्कृति तथा कानूनों का प्रभाव रहा है अतः राज्य को महत्वपूर्ण अवयव के रूप में देखने की प्रवृत्ति रही है। राज्य द्वारा निर्मित कानून तथा नियम, प्रशासनिक व्यवस्था के लिए मार्गदर्शक रहते हैं। आज भी फ्रांस की शासन व्यवस्था में लोक प्रशासनिक व्यवस्था कुशलतापूर्वक कार्य कर रही है किंतु बड़े ही सहज ढंग से स्वयं को सर्वोच्च सत्ता अर्थात् राजनीतिक कार्यपालिका एवं संविधान के अधीन ही स्वीकारती है। सरकार, राज्य का एक आवश्यक अंग होती है तथा प्रशासन सरकार के कार्यों के संचालन का एक माध्यम है। स्थायित्व के बावजूद भी लोक प्रशासन के अधिकारियों ने कभी भी राजनीतिक अस्थिरता का दुरुपयोग नहीं किया है।

3. **केन्द्रीकृत प्रशासन** – फ्रांस का लोक प्रशासन प्राचीनकाल से ही केन्द्रीकरण की प्रवृत्तियों से युक्त रहा है। संभवतः राजनीतिक अस्थिरता के दौर ने प्रशासनिक व्यवस्था एवं सत्ता के विकेन्द्रीकरण की राह में व्यावहारिक कठिनाइयाँ उत्पन्न की हैं। गणराज्य की स्थापना के उपरांत नेपोलियन बोनापार्ट द्वारा पुनः राजतंत्र स्थापित करना तथा प्रशासन को केन्द्रीकृत कर पेरिस तक समेटना तत्कालीन परिस्थितियों का प्रतिफल है लेकिन आज भी प्रशासनिक कार्यकरण केन्द्रीकृत बना हुआ है। यद्यपि 1982 के सुधारों के पश्चात् विकेन्द्रीकरण के प्रयास होने लगे हैं, लेकिन अभी भी महत्वपूर्ण निर्णय पेरिस स्थित मंत्रालय तथा निदेशालय ही लेते हैं। केन्द्रीकृत प्रशासन का एक मुख्य कारण यह भी माना जाता है कि फ्रांस की कुल जनसंख्या का 20 प्रतिशत हिस्सा अभी भी पेरिस में रहता है। इसीलिए कहते हैं कि पेरिस को छींक आने का मतलब संपूर्ण फ्रांस को न्यूमोनिया हो जाना है। वस्तुतः फ्रांस में शक्तियों का बंटवारा नहीं बल्कि कार्यों का विकेन्द्रीकरण किया हुआ है।

4. **एकात्मक शासन** – ब्रिटेन की भांति फ्रांस में भी शासन एक स्तरीय है अर्थात् संपूर्ण देश की एक ही विधायिका तथा सरकार होती है भारत या अमेरिका की तरह, राज्य सरकारों का अस्तित्व नहीं है। यद्यपि फ्रांस को प्रादेशिक क्षेत्रों में विभक्त किया गया है लेकिन ऐसा प्रशासनिक सुविधा के लिए है न कि शासन की दोहरी इकाईयाँ कार्य करती हैं। प्रादेशिक क्षेत्रों को डिपार्टमेंट्स (अर्थात् जिलों) में विभक्त किया गया है जहाँ प्रीफेक्ट नामक अधिकारी समस्त कार्य संपादित करता है। संपूर्ण देश में एक जैसा सामान्य एवं प्रशासकीय कानून तथा व्यवस्था प्रावर्तित है जो मूलतः राष्ट्रीय एकता में वृद्धि करती है।

5. **प्रभावी लोक सेवाएँ** –फ्रांस की लोक सेवाएँ अत्यंत श्रेष्ठ तथा अनुशासित मानी जाती हैं। यहाँ पर अस्थिर सरकारें रहने के कारण लोकसेवाओं का प्रभाव एवं महत्व लगातार बढ़ता गया। राजनीतिक उलट–फेर पर भी प्रशासनिक स्थिरता बनी रही। सरकारी अधिकारियों ने स्वयं को राज्य के साथ एकाकार कर लिया तथा वे अपने आप को संप्रभु मानने लगे तथा जनता ने उनकी यह स्थिति स्वीकार की। वे लोकसेवक (Public Servant) न रहकर लोक अधिकारी (Public officer) बन गए। आज भी उनका विशेष सम्मान है। लोकसेवकों की भर्ती, प्रशिक्षण, सेवा शर्तें निम्न प्रकार हैं –

   (i) **लोकसेवकों की भर्ती** – फ्रांस में लोक सेवा एक आजीवन व्यवसाय है। नियुक्ति के बाद, पुनर्नियुक्ति हेतु लोक सेवक इधर–उधर नहीं जाते। यहाँ भर्ती व्यवस्था को शिक्षा से जोड़ दिया गया है। उच्च पदों पर वे ही प्रत्याशी आ सकते हैं जिन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की है, किंतु उच्च शिक्षा जनसंख्या के

एक छोटे से भाग तक सीमित है। उच्च प्रशासनिक पदों पर एक वर्ग विशेष के लोग ही आ पाते हैं।

(ii) लोक सेवकों का प्रशिक्षण भर्ती के बाद कर्मचारियों को व्यापक प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। यह कार्य 1945 में स्थापित प्रशासन के राष्ट्रीय विद्यालय द्वारा संपन्न किया जाता है। नवागन्तुक लोकसेवकों के लिए 3 साल का पाठ्यक्रम है। उच्च प्रशासकीय सेवा के लिए व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया जाता है। शैक्षणिक विशेषीकरण के लिए चार क्षेत्र हैं–सामान्य प्रशासन, आर्थिक और वित्तीय प्रशासन, सामाजिक प्रशासन तथा विदेशी मामले। औद्योगिक प्रबंध में ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रशिक्षणार्थी को निजी उद्योग में भी रखा जाता है।

(iii) **सेवा की शर्तें** – लोक सेवकों को सुरक्षा एवं स्तर की पूरी गारंटी है। इनका कार्यकाल आजीवन होता है। अनुशासनात्मक कार्यवाही के अधीन लोक सेवकों को पदमुक्त किया जा सकता है किंतु यह कार्यवाही एक लंबी प्रक्रिया द्वारा संपन्न होती है। अनुशासनात्मक कार्यवाही ट्रिब्यूनल में लोकसेवकों के भी प्रतिनिधि लिए जाते हैं। पदोन्नति आदि इन्हीं लोक सेवकों द्वारा नियंत्रित की जाती है। लोक सेवकों को पर्याप्त वेतन दिया जाता है। इसके अतिरिक्त परिवार भत्ता, सामाजिक सुरक्षा एवं सेवानिवृत्ति पर पेंशन की व्यवस्था भी की जाती है।

(iv) **राजनीतिक कार्य** – फ्रांस में लोक सेवक सरकार के कार्यों में सक्रिय भाग लेते हैं। लोकसेवकों को राजनीतिक कार्यों में भाग लेने पर कोई प्रतिबंध नहीं है। एक लोकप्रिय लोकसेवक मंत्री भी बन सकता है। व्यक्तिगत रुचि के कारण लोकसेवक सक्रिय राजनीति में कूद पड़ते हैं और पुनः लोक सेवा में अपने पूर्व पद पर आ सकते हैं। राजनीतिक अस्थिरता और मंत्रिमंडलों के शीघ्र पतन के कारण लोक प्रशासकों को राजनीति में आने का पूरा अवसर मिलता है।

6. **नियंत्रण की व्यवस्था** – फ्रांसीसी प्रशासन पर दो प्रकार के नियंत्रण हैं – बाह्य नियंत्रण और आंतरिक नियंत्रण। बाह्य नियंत्रण, व्यवस्थापिका और कार्यपालिका द्वारा तथा आंतरिक नियंत्रण निर्धारित इकाइयों द्वारा रखा जाता है। फ्रांसीसी क्रांति के बाद यहाँ राजनीतिक अस्थिरता का वातावरण रहा है। फलस्वरूप प्रशासन की आंतरिक नियंत्रण व्यवस्था सशक्त बनी है तथा राजनीतिक निर्देशन का क्षेत्र सीमित हुआ है।

प्रशासन के बाहरी नियंत्रण का मुख्य अभिकरण व्यवस्थापिका है। यह विधायी नियंत्रण सदैव कमजोर रहा है। व्यवस्थापिका ने अपनी अनेक शक्तियाँ कार्यपालिका को हस्तांतरित कर दी और प्रशासन पर नियंत्रण कमजोर पड़ गया। नियंत्रणकारी शक्तियाँ व्यवस्थापिका के पास हैं उनका प्रयोग विधायी समितियों द्वारा किया जाता है। इन समितियों के सभापति भूतपूर्व मंत्री होते हैं और नियंत्रित विषय भली प्रकार जानते हैं इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण वित्तीय समिति हैं यह अनेक उप–समितियों में विभाजित है। प्रत्येक उप–समिति में एक सभापति और रिपोर्टर होता है प्रत्येक उप–समिति एक मंत्रालय के बजट पर नियंत्रण रखने के लिए उत्तरदायी है। प्रशासन पर दूसरा बाहरी नियंत्रण कार्यपालिका का होता है। फ्रांस में प्रशासन पर इसका नियंत्रण प्रभावशाली नहीं रहता। अस्थिर मंत्रिमंडल एवं सरकार की संविद प्रकृति से यहाँ अंर्तःमंत्रिमंडलीय समन्वय नहीं रह पाता।

प्रशासन पर आंतरिक नियंत्रण सशक्त और प्रभावशाली होता है। इसके मुख्य अभिकरण हैं– कॉंसिल डी इटाट (Conseil 'd' etat) का नियंत्रण, बजट तथा वित्तीय नियंत्रण, सेवीवर्ग संबंधी नियंत्रण, सरकार की विकेन्द्रीकृत सेवाओं पर नियंत्रण आदि। यह जनमत एवं राजनीतिक नियंत्रण से स्वतंत्र है।

प्रो0 अल्फ्रेड डाइमन्ट (Prof. Alfred Diamant) ने फ्रांसीसी प्रशासन की नियंत्रण व्यवस्था की निम्न विशेषताओं का उल्लेख किया है – 1. लोक सेवा कार्य संपन्नता को नियंत्रित करने तथा मापने में संकीर्ण वित्तीय और कानूनी मापदण्डों पर जोर दिया जाता है। 2. इन मापदण्डों पर लाइन अभिकरण की अपेक्षा

स्टाफ अभिकरण का महत्व बढ़ जाता है। स्टाफ में शक्ति तथा प्रभाव अधिक होने के कारण इसमें श्रेष्ठ लोग ही प्रवेश कर पाते हैं। 3. उच्चत्तर सेवाओं के विशिष्ट वर्ग लाइन अभिकरण के उच्च पदों पर भी एकाधिकार रखते हैं। 4. कौंसिल डी इटाट वित्तीय निरीक्षक तथा ऐसे ही नियंत्रणकारी अंगों ने प्रशासकीय स्व–विवेक एवं पहल की शक्ति को घटा दिया है।

7. **स्वच्छ, स्थायी एवं कुशल प्रशासन** – फ्रांस की प्रशासनिक व्यवस्था साफ–सुथरी, अनुशासित तथा राष्ट्रहितों के प्रति प्रतिबद्ध मानी जाती है अमेरिका की भांति लूट प्रणाली का व्यापक प्रचलन फ्रांस में कभी भी नहीं रहा। भ्रष्टाचार, रिश्वत, लापरवाही तथा अकर्मण्यता के उदाहरण फ्रांसीसी प्रशासन में बहुत कम देखने को मिलते हैं। प्रशासनिक अनियमितताओं के कारण उत्पन्न होने वाले विवादों तथा जनशक्तियों की सुनवाई के लिए प्रशासनिक न्यायालय इसीलिए स्थापित किए गए हैं ताकि सामान्य न्यायालयों की दुरुह एवं लंबी प्रक्रिया से छुटकारा मिले तथा प्रशासनिक अधिकारी चौकस रहकर कार्य करें। सूचना का अधिकार नागरिकों को प्राप्त है।

8. **मिशनरी भावना** – फ्रांस के लोक सेवक प्रत्येक सरकारी कार्य को ड्यूटी मानकर पूरा नहीं करते हैं बल्कि नागरिक सेवा को अपना ध्येय मानते हैं। **एसप्रिट डी कोर्प्स** की भावना लिए फ्रांसीसी लोक सेवक मानव कल्याण को ईश्वर सेवा के समान स्वीकारते हैं। वस्तुतः फ्रांस की सरकार एक आदर्श नियोक्ता की भूमिका निभाती है तथा लोक सेवक एक आज्ञाकारी कार्मिक का दायित्व सहर्ष उठाते हैं। सामाजिक एवं मानसिक स्तर पर परिपक्वता प्राप्त फ्रांसीसी नागरिक भी प्रशासनिक कार्यों में पूर्ण सहभागिता प्रकट करना अपना दायित्व समझते हैं। राष्ट्रीय कानूनों में आस्था प्रकट करना सर्वोच्च नैतिकता की निशानी है। यह मान्यता लोक सेवक एवं आम व्यक्ति दोनों ही स्वीकारते हैं। अधिकारों एवं कर्त्तव्यों के बोध सहित मानव धर्म को प्रधानता दी गई है।

9. **दोहरे कानून** – फ्रांस में सामान्य कानून (दीवानी या फौजदारी) तथा प्रशासनिक कानून पृथक–पृथक हैं। नागरिकों के आपसी विवाद तथा झगड़े सामान्य न्यायालयों द्वारा निपटाए जाते हैं जबकि प्रशासन एवं जनता के मध्य उत्पन्न होने वाले विवाद प्रशासनिक कानूनों के अंतर्गत निर्धारित प्रक्रियानुसार सुलझाये जाते हैं। प्रशासनिक कानूनों के अंतर्गत आने वाले मुकद्दमें प्रारंभिक स्तर पर प्रादेशिक परिषदों या प्रशासनिक न्यायाधिकरणों द्वारा निपटाए जाते हैं। यद्यपि भारत एवं ब्रिटेन में भी प्रशासनिक न्यायाधिकरण हैं किंतु फ्रांस की भांति इन देशों में स्वतंत्र प्रशासनिक कानून नहीं है।

10. **प्रीफेक्ट व्यवस्था** –आधुनिक फ्रांस की प्रशासनिक व्यवस्था नेपोलियन बोनापार्ट की ऋणी है क्योंकि प्रीफेक्ट, कोपर्स तथा तकनीकी प्रशिक्षण संस्थान इत्यादि की स्थापना नेपोलियन ने ही की थी। फ्रांस को भौगोलिक आधार पर 26 रीजन अर्थात् प्रादेशिक संभागों में बांटा गया है जिनके पश्चात् डिपार्टमेंट्स होते हैं। फ्रांस के डिपार्टमेंट्स भी जापान की भांति भौगोलिक इकाई है जो भारत के जिलों के समकक्ष हैं। इन डिपार्टमेंट्स के अधिकारी प्रीफेक्ट तथा सबप्रीफेक्ट कहलाते हैं। प्रीफेक्ट की पदस्थिति बहुत कुछ भारत के जिला कलक्टर से मिलती जुलती है। नेपोलियन ने शुरू में फ्रांस को 91 डिपार्टमेंट्स (जिलों) में बांटा था जिसकी संख्या अब 100 है। प्रीफेक्ट नामक अधिकारी केन्द्र व स्थानीय प्रशासनिक संगठनों एवं जनता व सरकार के बीच समन्वय की भूमिका निभाता है। वह सरकार के प्रतिनिधि के रूप में कुछ छोटे–बड़े प्रशासनिक कार्य भी करता है। प्रीफेक्ट किसी एक विभाग का अधिकारी नहीं बल्कि सभी विभागों का सामान्य अधिकारी होता है। फ्रांस में पृथक से प्रीफेक्ट कोर्प्स बनी हुई है जो सम्मानजनक लोक सेवा मानी जाती है। केन्द्र सरकार के अभिकर्त्ता के रूप में प्रीफेक्ट के कार्य बहुत महत्वपूर्ण है। बार्थलेमी ने अपनी पुस्तक "The Government of France" में प्रीफेक्ट के कार्य बताते हुए कहा है "यह राजनीतिक अभिकर्ता जो राजनीतिक कारणों से नियुक्त एवं पदमुक्त किया जाता है तथा यह नीति संबंधी प्रश्नों के बारे में मंत्रिमंडलीय क्रियाओं से संबंधित है, न केवल गृह मंत्रालय बल्कि सभी मंत्रालयों का प्रतिनिधित्व करता है। अपने विभाग के अंतर्गत वह

प्रशासनिक सत्ता का प्रतीक होता है तथा निर्णयन सहित कार्यपालिका संबंधी नियुक्तियाँ करता है। प्रीफेक्ट का कार्य गृह मंत्रालय की अधीनस्थ संस्थओं के निर्देशन, निरीक्षण एवं प्रबंध तक ही सीमित नहीं हैं बल्कि सभी प्रकार के अधिकारियों, दण्डनायकों, शिक्षकों तथा कुछ अर्थों में राजनीतिक कार्यकर्ताओं पर निगरानी रखता है। यह उपर्युक्त सभी अधिकारियों के संबंध में गुप्त एवं सही रिपोर्ट गृह मंत्रालय को देता है तथा पुलिस की निगरानी करता है। सार्वजनिक शांति व्यवस्था के अतिरिक्त वह अनेक तकनीकी मामलों के संबंध में निर्णय भी करता है तथा तकनीकी अधिकारियों की बड़ी संख्या में नियुक्ति भी करता है।''

11. **अर्द्धस्वायत्त स्थानीय प्रशासन** – एकात्मक तथा केन्द्रीयकृत फ्रांस की प्रशासनिक व्यवस्था में शहरी एवं ग्रामीण स्थानीय स्वशासन की इकाईयाँ सदैव से ही केन्द्रीय प्रशासन के अधीन रही हैं। फ्रांस में स्थानीय स्वशासन का स्वरूप उतना स्वायत्त नहीं होता जैसा कि जापान, स्विट्जरलैंड तथा अमेरिका में है। फ्रांस में समाजवादी सरकार द्वारा 2 मार्च 1982 को पारित कानून के पश्चात् 'प्रशासन का विकेन्द्रीकरण' प्रारंभ हुआ जो अभी निरंतर सुधारों की ओर अग्रसर है। इस कानून के द्वारा फ्रांस में स्थानीय प्रशासन की इकाइयों को उनके कार्य क्षेत्र में वैधानिक स्वतंत्रता दी गई है। मूलतः नगरपालिकाएँ, डिपार्टमेंट्स तथा प्रादेशिक संभाग स्थानीय प्रशासन के तीन स्तर हैं। इनमें एरोन्टाइमेंट तथा कैंटन तथा कम्यून भी बने हुए हैं। केन्द्रीय स्तर पर 'आंतरिक एवं विकेन्द्रीकरण विभाग' स्थानीय प्रशासन की इकाईयों को दिशा निर्देश प्रदान करता है। कम्यून में मेयर तथा डिपार्टमेंट्स में प्रेजीडेंट नामक अधिकारी स्थानीय प्रशासन संचालित करते हैं। स्थानीय निकायों में एक परिषद् होती है जो निम्न स्तरीय पदों पर भर्ती, प्रशिक्षण एवं पदोन्नति का कार्य संपादित करती है। भारत की भांति 'स्थानीय निकाय निदेशालय' नियंत्रणकर्ता की भूमिका निभाता है। फ्रांस के स्थानीय निकायों में भी पूर्णतया योग्यता का सिद्धांत लागू होता है।

12. **सुदृढ़ अर्थव्यवस्था एवं दबाव समूह** – फ्रांस की अर्थव्यवस्था तुलनात्मक रूप से सुदृढ़ एवं विश्वसनीय मानी जाती है। यद्यपि फ्रांस में बेरोजगारी एक विकराल समस्या बन चुकी है तथापि आम फ्रांसिसी का जीवन स्तर अत्यंत उच्च स्तरीय होता है। फ्रांस के नियोजन तंत्र को निर्देशित करने वाला 'सामान्य नियोजन आयोग' आर्थिक तंत्र में प्रभावी भूमिका निर्वाहित करता है। फ्रांस में केवल प्रतीकात्मक नियोजन किया जाता है लोक एवं निजी दोनों ही प्रकार के उपक्रम आयोग के परामर्श को गंभीरता से स्वीकार करते हैं। राजनीतिक जागरूकता की दृष्टि से फ्रांस अत्यंत उच्च श्रेणी का राष्ट्र है अतः लोक प्रशासन एवं अर्थव्यवस्था में विभिन्न दबाव समूहों का पर्याप्त सम्मानजनक स्थान रहता है। विश्व भर में जारी आर्थिक उदारीकरण की प्रवृतियाँ फ्रांस में भी स्पष्ट प्रभाव दिखाने लगी हैं। 1 जनवरी 1999 से फ्रांस में भी 'यूरो मुद्रा' प्रचलित हो गई है जो यूरोपीय संघ के राष्ट्रों के मध्य नए समीकरण बनाने में कारगर है।

13. **आर्थिक नियोजन** –द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद फ्रांस के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती दयनीय आर्थिक स्थिति से कैसे उबरे थी । युद्ध की क्षतिपूर्ति, अर्थव्यवस्था आधुनिकीकरण और समाज के चहुंमुखी विकास के उद्देश्य से फ्रांस में आर्थिक नियोजन को अपनाया गया। वहीं आर्थिक नियोजन के संबंध में व्यावहारिक दृष्टिकोण को अपनाया। अतः वहाँ सेवारत वरिष्ठ लोक–सेवकों ने फ्रांस के नियोजन के विकास को आसान बना दिया है तथा लोक–सेवकों की रूचि के कारण ही कम समय में ही आर्थिक नियोजन ने सफलता प्राप्त करके अपना सम्मानजनक स्थान बना लिया और आज फ्रांस विश्व की महान शक्ति बन गया है। वहाँ आर्थिक नियोजन की प्रमुख विशेषताएँ हैं –1. नियोजनतंत्र की प्रकृति निर्देशक (इंडीकेटिव) 2. नियोजन अर्थव्यवस्था की विभिन्न इकाइयों के समुचित विचार–विमर्श पर आधारित 3. नियोजन में लचीलापन तथा 4. नियोजन का लोकतांत्रिक स्वरूप।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि फ्रांस में केन्द्रीकरण, स्थायित्व, तटस्थता, योग्यता, मिशनरी भावना जैसी विशेषताएँ विद्यमान हैं। इसने समय के अनुसार बदलते हुए परिवेश में अपनी कार्य–सम्पन्नता के मापदण्ड निश्चित किए हैं।

3.4 जापान के प्रशासन की विशेषताएँ :

जपान का लोक प्रशासन, कुशलता, प्रतिबद्धता तथा संवेदनशीलता का पर्याय माना जाता है। राजशाही शासन प्रणालियों से लेकर अद्यतन इसमें अनेक समयानुकूल परिवर्तन आए हैं। यह परिवर्तन जापान की आंतरिक सामाजिक व्यवस्था तथा अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों सहित द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् जापान के पुनर्निर्माण के संकल्प से प्रभावित दिखाई देते हैं। जापानी प्रशासनिक व्यवस्था के प्रमुख लक्षणों तथा विशेषताओं का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है –

1. **विशेषीकृत एवं कुशल सेवाएँ** – जापानी लोक प्रशासन में कार्यरत कर्मिक किसी न किसी क्षेत्र या विषय में तकनीकी क्षमताओं से युक्त विशेषज्ञ होते हैं। प्रशासनिक पदों, कार्यों, प्रक्रियाओं तथा नियमों में भी विशेषीकरण का प्रभाव दिखाई देता है। प्रशासनिक संरचनाएँ प्रायः जटिल प्रकृति की होती है। नीति निर्माण की अधिकांश शक्तियां मंत्रिमंडल में निहित हैं तथापि विशेषज्ञों एवं उच्च लोक सेवकों की भूमिका भी सशक्त रहती है क्योंकि भारत की भांति जापान में सामान्यज्ञ अधिकारियों के माध्यम से प्रशासन संचालित नहीं होता है। केन्द्रीय एवं स्थानीय प्रशासन में लगभग 40 लाख लोक सेवक कार्यरत हैं जो उच्चाधिकारियों एवं राष्ट्र के प्रति वफादार पाए जाते हैं। व्यक्तिक उपलब्धि के स्थान पर सामूहिक लक्ष्य प्राप्ति पर बल दिया जाता है। जापान लोक प्रशासन तथा उद्योगों में कुछ शब्द बहुत प्रचलित हैं। उनमें से एक है – Kanban अर्थात् ''प्रभावी संचार'' कीजिए अन्यथा कार्य बाधित होता है। इसी प्रकार कहा जाता है कि Muri (अधिक तनाव) Mura (कार्य में किसी तरह के उतार चढ़ाव या अस्थिरता) तथा Muda (किसी भी तरह की फिजूलखर्ची) हो तो लागत एवं अकार्यकुशलता बढ़ेगी अतः एक ही रास्ता है कि सभी लोग मिल बैठकर वार्ता (Kaizen) करें। सहभागी प्रबंध तथा लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रकार के कारण ही जापान में प्रशासनिक एवं तकनीकी कुशलता उच्च स्तरीय बन सकी है।
2. **योग्यता एवं प्रतिष्ठा** – जापान की लोक सेवाओं में प्रवेश के इच्छुक उम्मीदवार को प्रायः कड़ी प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ता है। "The National Personnel Authority" के माध्यम से लोक सेवकों का चयन किया जाता है। भारत, फ्रांस, ब्रिटेन की भाँति जापान में भी लोक सेवाओं को पर्याप्त प्रतिष्ठा प्राप्त है। यही कारण है कि अधिकांश प्रतिभावान उम्मीदवार शिक्षा प्राप्ति के पश्चात् लोक सेवाओं की ओर आकर्षित होते हैं। लोक सेवाओं से राजनीति में प्रवेश की दर भी जापान में अधिक ही है। टोक्यों स्थिति "Institute of Administrative Management" प्रशिक्षण तथा सुधार कार्यों में सार्थक भूमिका निभाता है।
3. **लोक सेवाओं में निरंतर सुधार** – मैजी संविधान काल के दौरान जापानी नौकरशाही कुलीन गुट, धनिक गुट, सैनिक अधिकारी गुट तथा प्रशासनिक अधिकारी गुट में विभक्त थी जो भेदभाव को बढ़ावा देती थी। सन् 1885 में राजकुमार ईतो ने जापानी लोक सेवा में निम्नलिखित सुधार किए –

   क. राजकीय कार्यों में उत्तरदायित्वों का स्पष्ट वर्णन

   ख. भर्ती तथा नियुक्ति के निश्चित नियम

   ग. राजकीय परिपत्रों में वृद्धि

   घ. निरर्थक प्रशासनिक व्यय पर नियंत्रण

   ङ. कार्मिक अनुशासन में वृद्धि

इन सुधारों के पश्चात् जापानी लोक सेवा में परिवर्तन दिखाई देने लगे तथा भाई भतीजावाद पर नियंत्रण होने लगा। सन् 1887 में प्रतियोगी परिक्षाओं के माध्यम से लोक सेवकों का चयन होने लगा। शोवा संविधान के निर्माण के समय 1946 में लोक सेवाओं को परिवर्तित करने का कार्य व्यापक स्तर पर शुरू कर दिया गया। सन्

1947 में नेशनल सर्विस लॉ पारित किया इसकी अनुपालना में 1949 में 'नेशनल पर्सोनेल अथोरिटी' अर्थात् राष्ट्रीय कार्मिक प्राधिकरण की स्थापना की गई। प्रधानमंत्री तथा मंत्रिमंडल के नियंत्रण से मुक्त यह प्राधिकरण अर्द्ध स्वायत्त संस्था है जिसमें एक आयुक्त तथा दो सदस्य डायट के अनुमोदन से मंत्रिमंडल की अनुशंसा पर सम्राट द्वारा 4 वर्ष के लिए नियुक्त किए जाते हैं। प्राधिकरण के तीनों पदाधिकारी मंत्रियों के समान शक्तियाँ तथा सुविधाएँ प्राप्त करते हैं। प्राधिकरण स्वयं अपना महानिदेशक तथा अन्य कार्मिक भर्ती करता है। प्रशासन सेवा, भर्ती, प्रतिकर, समानता तथा कर्मचारी संपर्क ब्यूरो में बंटा यह प्राधिकरण देश की सेवाओं में भर्ती वर्गीकरण, वेतन, पदोन्नति, कुशलता, सुरक्षा, कल्याण, विवादों की सुनवाई, अपील तथा कार्मिक प्रशासन से संबंधित अन्य प्रकरण निबटाता है। संविधान का अनुच्छेद–15 लोक सेवकों के चयन एवं बर्खास्तगी में जनता की भूमिका सुनिश्चित करता है। अतः जापानी प्रशासन एक उत्तरदायी प्रशासन सिद्ध हुआ है। सूचना का अधिकार जनता को प्राप्त है अतः प्रशासन चौकस रहता है।

4. **लोक सेवकों में वर्गीकरण एवं पद चेतना** – जापानी प्रशासनिक तंत्र में कार्यरत लोक सेवकों में उच्च, मध्यम तथा निम्न पदों के रूप में अत्यधिक चेतना का भाव पाया जाता है। पदसोपान की व्यवस्था को अधिक महत्व देने के कारण ही उच्चाधिकारियों द्वारा पारित आदेश का भयमिश्रित सम्मान के साथ तत्परता से पालन किया जाता है। जापान लोक सेवाएँ मूलतः दो वर्गों में विभाजित हैं –

क. विशिष्ट राजकीय सेवाएं – इस वर्ग में मंत्रिमंडल के सदस्य, डायट के अनुमोदन से नियुक्त अधिकारी, शाही न्यायालय में नियुक्त अधिकारी, न्यायाधीश, राजदूत, डायट के कर्मिक, सामान्य श्रमिक तथा लोक उपक्रमों के कर्मिक सम्मिलित हैं।

ख. नियमित राजकीय सेवाएँ – इस वर्ग में केन्द्रीय प्रशासन में कार्यरत प्रशासनिक, लिपकीय तथा अन्य बचे हुए पद सम्मिलित किए गए हैं। जापानी लोक सेवाएँ केवल तीन श्रेणियों–प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय में विभक्त हैं।

उच्च श्रेणी के पद, कठिन प्रतियोगी परीक्षा द्वारा भरे जाते हैं। सामान्यतः 21 से 33 वर्ष आयु वर्ग के स्नात्तक युवा 'प्रिंसीपल सीनियर ए–क्लास'' पदों के लिए राष्ट्रीय परीक्षा में सम्मिलित होते हैं। निम्न पदों पर सैकण्डरी उत्तीर्ण 17 से 23 वर्ष आयु समूह के युवा नियुक्त होते हैं। इनमें सदैव उच्च पद–निम्न पद का मनोभाव बना रहता है।

5. प्रशासन का भौगोलिक विभाजन – जापान में 4000 छोटे–बड़े द्वीप इधर–उधर फैले हुए हैं। इन द्वीपों में मात्र 20 प्रतिशत भू–भाग ही मानव के रहने तथा कृषि योग्य है। भूकंप तथा ज्वालामुखी की समस्या भी विकट है। विश्वप्रसिद्ध फूजी पूर्वत का फूजियामा, असाया, यामा, माउंट तथा असो प्रमुख ज्वालामुखी क्षेत्र जापान में ही है। जापान के प्रशासनिक तंत्र का विभाजन भी भौगोलिक आधार पर निर्भर करता है। भौगोलिक सभ्यता के आधार पर जापान को आठ डिपार्टमेंटस में विभक्त किया गया है। एक समान भौगोलिक तथा सामाजिक परिस्थितियों के क्षेत्र प्रिफेकचर्स (Prefactures) में बांटे गए हैं। भौगोलिक आधार पर विभक्त विभागों का आशय सचिवालयी व्यवस्था के विभागों से नहीं बल्कि क्षेत्रों से है। जापान के आठ भौगोलिक विभाग निम्नांकित हैं –

1. हाक्काईडो
2. तोहोकू अथवा ओयू
3. क्वान्टो
4. चुबू
5. किन्की

6. चुगोकू
7. शिकोकू
8. क्यूश्यू

जापान का होक्काईडो खनिज तथा कोयला संसाधन युक्त विभाग है जबकि तोहोकू एक ग्रामीण तथा आदिवासी समाज है। क्वान्टो नगरीय सभ्यता का पर्याय विभाग है जिसमें टोक्यो तथा याकोहामा शहर स्थित है। चुगोकू में हीरोशिमा, नागासाकी सहित ऐतिहासिक नगर स्थित हैं।

6. **स्थानीय प्रशासन** – जापान उन देशों में अग्रणी है जहाँ स्थानीय स्वशासन को सुदृढ़ संवैधानिक तथा व्यावहारिक आधार प्रदान किया गया है। जापानी संविधान के अनुच्छेद 92 से 95 तक स्थानीय सरकार को वर्णित किया गया है। स्थानीय स्वशासन की ग्रामीण तथा नगरीय संस्थाएँ अपने संगठन, कार्यकरण, कार्मिक प्रशासन, संपत्ति अधिग्रहण तथा प्रशासन के क्रम में स्वायतत्ता प्राप्त है। किसी भी स्थानीय स्वशासन संस्था के क्रम में डायट भी कानून नहीं बना सकती है जब तक कि स्थानीय मतदाता उसे बहुमत से अनुमोदित न कर दें। भौगोलिक आधार पर जापान को कई विभागों अर्थात् डिपार्टमेंट्स में बांटा गया है। इन डिपार्टमेंट्स के अधीन कई प्रकार की प्रशासनिक इकाइयाँ जिलों के रूप में हैं। स्थानीय स्वशासन की इकाईयाँ प्रिफेक्चर कहलाती हैं जिनकी संख्या 46 है। इन 46 प्रिफेक्चर्स को सिटी, टाउन तथा ग्रामीण सरकार में बांटा गया है। स्थानीय नागरिक अपने जनप्रतिनिधियों के माध्यम से इन संस्थाओं को संचालित करते हैं। महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि शिक्षा तथा पुलिस जैसे दो महत्वपूर्ण कार्य इन स्थानीय संस्थाओं को सौंपे गए हैं। स्थानीय संस्थाओं में कार्मिक प्रशासन के संबंध में सन् 1950 में 'स्थानीय लोक सेवा अधिनियम' पारित किया गया था। अधिनियम के अंतर्गत कर्मिकों की भर्ती, प्रशिक्षण, क्षतिपूर्ति तथा आचरण नियम इत्यादि निर्धारित होते हैं। केन्द्रीय गृहमंत्रालय को स्थानीय लोक सेवाओं के क्रम में परिवर्तन एवं नियंत्रणकर्ता अभिकरण बनाया गया है। सन् 1906 में बनी जापानीज एसोशियेशन ऑफ सिटी मेयर्स एक महत्वपूर्ण दबाव समूह है जो मंत्रिमण्डल तथा डायट के निर्णयों को व्यापक रूप से प्रभावित करती है। सन् 1953 में बना ''ऑटोनोमी कॉलेज'' (Autonomy College) स्थानीय संस्थाओं के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करता है।

7. **एकात्मक प्रशासन** – जापान में सरकार की सारी शक्तियाँ टोकियो सरकार में होने के कारण यहाँ के प्रशासन का स्वरूप एकात्मक पाया जाता है। भारत और अमेरिका की तरह ब्रिटेन में केन्द्रीय एवं प्रान्तीय दो स्तरों पर सरकारें नहीं होती हैं, बल्कि एक ही सरकार जो केन्द्र में पाई जाती है, में समस्त शक्तियाँ समाहित होती हैं। हालांकि जापान में प्रशासनिक सुविधा के लिए प्रिफेक्चर व्यवस्था को अपनाया गया है लेकिन राष्ट्रीय एवं स्थानीय मामलों के संबंध में कानून एवं नीतियाँ बनाने की जिम्मेदारी केन्द्र सरकार की होती है। ये कानून एवं नीतियाँ विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत अलग–अलग विभागों के अधिकारियों के द्वारा लागू किए जाते हैं। स्थानीय प्रशासन में प्रिफेक्चर के स्तर पर गर्वनर तथा म्यूनिसिपलीटी के स्तर पर मेयर केन्द्र सरकार के एजेन्ट के रूप में कार्य करते हैं तथा केन्द्र सरकार की नीतियों को स्थानीय स्तर पर निष्ठापूर्वक लागू करते हैं। इसके साथ–साथ केन्द्र सरकार के हाथों में Power of Purse भी निहित होती है जो केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति को बढ़ावा देती है और प्रशासन को एकात्मक बनाती है।

8. **प्रशासन पर तकनीकी का प्रभाव** – जापान के प्रशासन की अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यहाँ के प्रशासन पर तकनीकी का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि प्रशासन के विभिन्न स्तरों पर तकनीकी विशेषज्ञों का बोलबाला पाया जाता है। इसका कारण यह है कि भारत व इंग्लैण्ड जहाँ सामान्यज्ञों की प्रभावशीलता पाई जाती है, के विपरीत जापान में विशेषज्ञों को प्रशासन में अधिक महत्व दिया जाता है। जापान में तकनीकी का अधिकाधिक प्रयोग यहाँ के प्रशासन की न केवल

Efficiency एवं Economy को बढ़ावा देता है बल्कि प्रशासन के विभिन्न अंगों में समन्वय को भी बढ़ावा देता है।

9. **Specialised and Efficient Administration** –जापान की प्रशासनिक कार्यवाही में प्रशासन के प्रत्येक स्तर पर विशेषीकरण को अधिकाधिक बढ़ावा दिया जाता है। इस विशेषीकरण के कारण यहाँ पर प्रशासन के जटिल से जटिल कार्य विभिन्न प्रशासनिक पदों पर कार्यरत विशेषज्ञ अधिकारियों के द्वारा पूरे किए जाते हैं। हालांकि नीति–निर्माण संबंधी कार्य जापान में कैबिनेट में निहित होता है लेकिन वास्तव में यह कार्य विशेषज्ञों एवं सामान्यज्ञों की मदद से पूरा किया जाता है। अधिकाधिक विशेषीकरण की प्रवृत्ति के कारण यहाँ के प्रशासन में अत्यधिक Efficiency पाई जाती है।

10. **Secular and Liberal Administration** – जापान के नए संविधान में अनुच्छेद 20 के तहत धर्म की स्वतंत्रता को स्थापित किया है और शिन्टो अब राज्य का धर्म नहीं रहा। यहाँ पर राज्य और धर्म में कोई संबंध न होने के कारण यहाँ का प्रशासन धर्म–निरपेक्ष एवं उदार पाया जाता है। प्रशासन के द्वारा धर्म के आधार पर विभिन्न धर्मों के लोगों के साथ कोई भेदभाव नहीं किया जाता बल्कि सब धर्मों के साथ एक समान व्यवहार किया जाता है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

5. फ्रांस में प्रीफेक्ट व्यवस्था की शुरुआत कब और किसके द्वारा की गई?

6. दोहरी कार्यपालिका किस देश में पाई जाती है?

7. फ्रांस के सर्वोच्च प्रशासनिक न्यायालय का नाम लिखिए।

8. जापान के लोक सेवकों की नियुक्ति करने वाली एजेन्सी का नाम लिखिए।

9. जापान के प्रशासन की एक विशेषता बताइए।

3.6 सारांश

संसदीय लोकतंत्र के जनक ब्रिटेन की शासन व्यवस्था का विकास एक जीवंत संगठन के रूप में हुआ है। यहाँ की राजनैतिक एवं प्रशासनिक संस्थाओं ने अपना वर्तमान स्वरूप समयानुकूल परिस्थितियों के अनुरूप धारण किया है। यही कारण है कि इस प्रशासन में इमानदारी एवं प्रशासनिक पारदर्शिता झलकती है और यह भ्रष्टाचार से कुछ हद तक मुक्त प्रशासन है। यहाँ विधि का शासन देखने को मिलता है जहाँ कानून सर्वोपरि है और कानून के सामने सभी समान हैं। वेबर आधारित नौकरशाही के मॉडल को ब्रिटेन में अपनाया गया है तथा कर्मचारियों का वर्गीकरण रैंक के आधार पर किया गया है। यहाँ के लोक सेवकों को समाज में काफी सम्मान प्राप्त है। ब्रिटेन का प्रशासन एक जिम्मेदार प्रशासन के रूप में कार्य करता है, क्योंकि प्रशासन के सभी कर्मचारी निष्ठापूर्वक अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करते हैं। इसके साथ–2 प्रशासन के प्रत्येक स्तर पर गहन समन्वय देखने को मिलता है।

अमेरिका को अध्यक्षीय शासन व्यवस्था का प्रारंभकर्ता कहा जाता है। शक्ति के पृथक्करण सिद्धांत के अपनाए जाने के कारण सरकार के तीनों अंगों की शक्तियाँ अलग–अलग पाई जाती हैं। कार्यकारी सभी शक्तियाँ राष्ट्रपति में निहित हैं जिसके कारण वह एक सशक्त कार्यपालिका के रूप में कार्य करता है। हालांकि सरकार के तीन अंग–(कार्यपालिका, विधानपालिका एवं न्यायपालिका) परस्पर नियंत्रण भी स्थापित करते हैं। संघात्मक शासन प्रणाली अपनाए जाने के कारण शक्तियों का बंटवारा केन्द्र व राज्यों के बीच किया गया है और राज्य सरकारें केन्द्र सरकार से काफी हद तक स्वायत्त हैं। प्रत्येक राज्य का अपना संविधान है। अमेरिका के प्रशासन पर न केवल ब्रिटिश शासन का प्रभाव देखने को मिलता है बल्कि उदारवादिता का प्रभाव भी स्पष्ट रूप में झलकता है। इसके

साथ दबाव समूह भी इस प्रशासन को काफी हद तक प्रभावित करते हैं। नीजिकरण की तरफ झुकाव होने के कारण प्रशासन में लोक सेवकों की भूमिका बहुत कम देखने को मिलती है। लोकसेवकों की नियुक्ति जीवनपर्यन्त न होकर एक कार्यक्रम हेतु की जाती है।

सन् 1789 की महान् क्रांति के बाद भी फ्रांस में राजनैतिक स्तर पर उथल पुथल का दौर रहा। 1789–1958 के लगभग 200 वर्षों के कालखण्ड में फ्रांस में 11 बार राजनैतिक परिवर्तन देखने को मिले, लेकिन प्रत्येक उथल–पुथल के दौरान प्रशासनिक निरंतरता बनी रही। यही कारण है कि फ्रांस के प्रशासन में केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति अत्यधिक मात्रा में देखने को मिलती है। फ्रांस में राजनैतिक स्तर पर दोहरी कार्यपालिका पाई जाती है जहाँ राष्ट्रपति के साथ–साथ प्रधानमंत्री भी वास्तविक शक्तियों का प्रयोग करता है। हालांकि प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा ही की जाती है। फ्रांस में एकात्मक शासन व्यवस्था देखने को मिलती है जहाँ पर स्थानीय शासन संसदीय कानूनों के अनुसार चलाया जाता है।

ब्रिटेन की भांति, फ्रांस में भी सशक्त लोक सेवाएं पाई जाती हैं जो प्रशासन के सभी कार्य करने के लिए जिम्मेदार हैं। इनका कार्यकाल जीवनपर्यंत है और इन्हें समाज में अत्यधिक सम्मान प्राप्त है। फ्रांस के लोक सेवकों के राजनैतिक अधिकार ब्रिटेन के लोक सेवकों से बहुत अधिक है। उन्हें हड़ताल करने का अधिकार भी प्राप्त है जो ब्रिटेन के प्रशासन में नहीं दिया गया है। इसके अतिरिक्त फ्रांस के प्रशासन पर तकनीकी का प्रभाव भी स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है।

जापान में आधुनिक राज्य की शुरुआत 1868 में मैजी संविधान अपनाए जाने के बाद हुई लेकिन द्वितीय विश्वयुद्ध में भाग लेने और हार जाने के कारण अमेरिकी विद्वान मैकआर्थर के द्वारा जापान में लिखित संविधान का सूत्रपात हुआ जिसमें राजा को संवैधानिक मुखिया में तब्दील करके सारी शक्तियाँ प्रजा में निहित कर दी गई। वर्तमान में ब्रिटेन की भांति कार्यपालिका की सभी शक्तियाँ प्रधानमंत्री एवं केबिनेट में निहित है। जापान के प्रशासन में भी फ्रांस की भाँति केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति पाई जाती है जहाँ स्थानीय शासन संसदीय कानूनों के अनुसार कार्य करता है। जापान में सशक्त नौकरशाही पाई जाती है जिनके उपर प्रशासन की निर्भरता काफी अधिक है। यहाँ पर लोक सेवक न केवल नीति क्रियान्वयन में ही भूमिका निभाते हैं बल्कि नीति निर्माण में भी उनकी अहम भूमिका है। ब्रिटेन व फ्रांस की भाँति, जापान के लोक सेवकों को भी समाज में अत्याधिक सम्मान प्राप्त है। ब्रिटेन की भांति उनके राजनैतिक अधिकार सीमित हैं तथा हड़ताल का अधिकार जापान में प्रतिबन्धित किया गया है।

3.7 मुख्य शब्दावली (Dey Terms)

एकात्मक – जहाँ शासन की शक्तियाँ केन्द्रीय स्तर पर ही केन्द्रित हों।

संघात्मक – जहाँ शासन की शक्तियाँ केन्द्र व राज्यों के मध्य विभक्त की गई हों।

जनभागीदारी – प्रशासन के कार्यों में जनता का सहयोग व भागीदारी।

सामूहिक उत्तरदायित्व –केबिनेट के सदस्य एक ही बोट में सवार होते हैं, एक साथ तैरते हैं एवं एक साथ डूबते हैं और सामूहिक रूप से उत्तरदायी होते हैं।

उदारवादी दर्शन – व्यक्ति के मामलों में राज्य की कम से कम भूमिका।

3.8 'अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर (Answer to Check your Progress)

1. यूनाईटिड किंग्डम के तहत ग्रेट ब्रिटेन एवं उत्तरी आयरलैण्ड आते हैं। ग्रेट ब्रिटेन के तहत इंग्लैण्ड, स्कॉटलैंण्ड एवं वेल्स सम्मिलित हैं।

2. विधि के शासन से अभिप्रायः है कि जहाँ कानून की सर्वोच्चता हो, तथा कानून की नजर में कोई छोटा या बड़ा न हो और कानून सबके ऊपर समान रूप से लागू हो।
3. स्वतन्त्र राज्य प्रशासन
4. शक्ति पृथक्करण का सिद्धान्त अमेरिका में लागू किया गया है जहाँ सरकार की कार्यकारी शक्तियाँ राष्ट्रपति में, विधायनी शक्तियाँ कांग्रेस में एवं न्यायिक शक्तियाँ न्यायपालिका में निहित हैं तथा संसदीय शासन प्रणाली की तरह विधानपालिका एवं कार्यपालिका में कोई संबंध नहीं पाया जाता।
5. फ्रांस में प्रीफेक्ट व्यवस्था की शुरुआत नैपोलियन बोनार्पाटा ने 1799 में की।
6. कौंसिल डी इटाट (Gonseil d'etat) या राज्य कौंसिल
7. नेशनल परसोनल अर्थोटी (National Personnel Authority)
8. सशक्त नौकरशाही या एकात्मक एवं केन्द्रीयकृत प्रशासन

3.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. अमेरिका के प्रशासन पर ब्रिटिश प्रभाव का वर्णन कीजिए।
2. यूनाईटिड किंग्डम के प्रशासन की दो विशेषताएँ बताइए।
3. फ्रांस के प्रशासन में दोहरी कार्यपालिका पाई जाती है, वर्णन करें।
4. जापान के प्रशासन की दो विशेषताएं लिखिए।
5. यूनाईटिड किंग्डम में प्रशासनिक सुधार के सम्बन्ध में नोट लिखिए।
6. जापान की लोक सेवाओं में हुए सुधार को संक्षेप में लिखिए।
7. स्पष्ट कीजिए कि फ्रांस का प्रशासन केन्द्रीयकृत प्रशासन है।
8. एकात्मक शासन से आपका क्या अभिप्राय है, वर्णन कीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. यूनाईटिड किंग्डम के प्रशासन की प्रमुख विशेषताओं का सविस्तार वर्णन कीजिए।
2. अमेरिकी प्रशासन की मुख्य विशेषताएँ कौन–2 सी हैं, सविस्तार विवरण दीजिए।
3. फ्रांस के प्रशासन की मुख्य विशेषताओं का सविस्तार उल्लेख कीजिए।
4. जापान की प्रशासनिक व्यवस्था से संबंधित प्रमुख विशेषताओं का विस्तार सहित वर्णन करें।

यूनाईटिड किंग्डम, अमेरिका, फ्रांस व जापान की मुख्य कार्यपालिका

(Chief Executive of UK, USA, France and Japan)

इकाई की रूप रेखा

4.0 परिचय

4.1 इकाई के उद्देश्य

4.2 यूनाईटिड किंग्डम की मुख्य कार्यपालिका

4.2.1 सम्राट

4.2.2 प्रधानमंत्री

4.2.3 मंत्रिमण्डल

4.3 संयुक्त राज्य अमेरिका की मुख्य कार्यपालिका

4.3.1 राष्ट्रपति

4.3.2 राष्ट्रपति का मन्त्रिमण्डल

4.3.3 राष्ट्रपति के सहायक

4.4 फ्रांस की मुख्य कार्यपालिका

4.4.1 राष्ट्रपति

4.4.2 प्रधानमंत्री

4.4.3 मन्त्री परिषद्

4.5 जापान की मुख्य कार्यपालिका

4.5.1 सम्राट

4.5.2 प्रधानमंत्री

4.5.2 मन्त्रिमण्डल

4.6 सारांश

4.7 मुख्य शब्दावली

4.8 अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

4.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

4.10 आप ये भी पढ़ सकते हैं

4.0 परिचय

यूनाईटिड किंग्डम में संसदीय शासन प्रणाली पाई जाती है। यहाँ पर कार्यपालिका में सम्राट, प्रधानमंत्री एवं मंत्रिमण्डल सम्मिलित हैं। सम्राट नाम मात्र की कार्यपालिका माना जाता है जिसे स्वर्णिम शून्य तथा रबड़ की मुहर कहा जाता है जबकि शासन की वास्तविक शक्तियाँ प्रधानमंत्री एवं उसके मन्त्रिमण्डल में निहित हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका में अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली है। राष्ट्र की सभी कार्यकारी शक्तियाँ राष्ट्रपति में निहित हैं और वह वास्तविक कार्यपालिका के रूप में कार्य करता है। इन शक्तियों के प्रयोग हेतु राष्ट्रपति के द्वारा एक मन्त्रिमण्डल का गठन किया जाता है जो कि राष्ट्रपति की देख–रेख में कार्य करता है।

फ्रांस की शासन प्रणाली विशुद्ध रूप से न तो अध्यक्षीय व्यवस्था कहला सकती है और न ही संसदीय व्यवस्था के दायरे में आती है। इस शासन प्रणाली में कुछ विशेषताएँ अमेरिका की अध्यक्षीय शासन प्रणाली के समान दिखाई देती हैं जबकि कुछ समानताएँ ब्रिटिश संसदीय शासन प्रणाली जैसी हैं। इसी कारण यहाँ पर दोहरी कार्य पालिका पाई जाती है। अमेरिका की भांति राष्ट्रपति का चयन सीधा जनता द्वारा किया जाता है जोकि वास्तविक कार्यपालिका के रूप में कार्य करता है। राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री एवं उसकी मन्त्रिपरिषद् का गठन करता है, जो वास्तविक कार्यपालिका के रूप में सरकार के नियमित कार्यों का संचालन करता है।

जापान में द्वितीय विश्वयुद्ध से पूर्व शासन की सभी शक्तियाँ सम्राट में निहित होती थी और वह वास्तविक कार्यपालिका के रूप में कार्य करता था, लेकिन द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् सम्राट की सभी शक्तियाँ प्रजा में चली गई और वह शक्तिहीन हो गया। जापान में प्रधानमंत्री व उसका मन्त्रीमण्डल जो जनता के प्रतिनिधि हैं, वास्तविक कार्यपालिका के रूप में कार्य करते हैं।

4.1 इकाई के उद्देश्य : इकाई के अध्ययन पश्चात् आप जान पाऐंगे :–

यूनाईटिड किंग्डम की कार्यपालिका के कौन–2 से अंग हैं और वह कैसे कार्य करती है।

अमेरिका का राष्ट्रपति एक सशक्त कार्यपालिका के रूप में कैसे भूमिका निभाता है।

फ्रांस में दोहरी कार्यपालिका परस्पर कैसे सामंजस्य स्थापित करती है।

जापान की कार्यपालिका की संरचना एवं कार्यों के बारे में ज्ञान प्राप्त करना।

4.2 यूनाईटिड किंग्डम की मुख्य कार्यपालिका

यूनाईटिड किंग्डम की मुख्य कार्यपालिका में निम्नलिखित अंग सम्मिलित हैं –

4.2.1 सम्राट

प्राचीन समय में शासन की सभी शक्तियाँ राजा में निहित होती थी, लेकिन प्रजातन्त्र के विकास के साथ–2

सम्राट/राजा शक्ति विहीन हो गया और उसकी सभी शक्तियाँ प्रजा में रूपांतरित हो गई। वर्तमान में सम्राट संवैधानिक अध्यक्ष बन गया है और शासन की वास्तविक शक्तियों का प्रयोग कानून द्वारा किया जाने लगा। लेकिन ब्रिटेन में सम्राट के पद को समाप्त नहीं किया गया। आज भी सम्राट का पद वंशानुगत आधार पर जारी है।

सम्राट एवं क्राउन में भारी अंतर पाया जाता है। सम्राट एक व्यक्ति है जबकि ताज एक संस्था है, सम्राट की मृत्यु हो सकती है जबकि ताज अमर है।

सम्राट की शक्तियाँ :

क्राउन की समस्त शक्तियों का प्रयोग मंत्रिपरिषद् के परामर्श पर सम्राट द्वारा किया जाता है। सम्राट एक नाममात्र का शासक है जो अपने किसी भी कार्य के लिए उत्तरदायी नहीं होता। संसदीय प्रणाली में शासन की समस्त गतिविधियों के लिए मंत्रिमंडल ही संसद के प्रति उत्तरदायी होता है। क्राउन की शक्तियों का विस्तृत वर्णन इस प्रकार है–

1. **कार्यपालिका शक्तियाँ (Executive Powers)** – कार्यपालिका की सभी शक्तियाँ क्राउन में निहित हैं। यह समस्त देश के शासन के लिए उत्तरदायी होता है। प्रधानमंत्री, मंत्रिमण्डल के सदस्यों, सेनाध्यक्षों, न्यायाधीशों व उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति क्राउन द्वारा की जाती है। इसी प्रकार अधिराज्यों (Dominions) के महाराज्यपाल (Governor-General) की नियुक्ति भी क्राउन द्वारा की जाती है। वह राष्ट्रीय कोष पर नियंत्रण रखता है तथा संसद की स्वीकृति से राजस्व को एकत्रित कर सकता है और व्यय भी करता है। न्यायाधीशों को छोड़ कर वह प्रशासनिक अधिकारियों को अपदस्थ भी कर सकता है। सम्राट राष्ट्रीय सेनाओं का सर्वोच्च सेनापति होता है। वह युद्ध एवं तटस्थता की घोषणा कर सकता है। वह अन्य देशों के साथ संधि व समझौते करता है। ताज ही विदेशों में ब्रिटेन के राजदूतों और अन्य कूटनीतिक प्रतिनिधियों की नियुक्ति करता है। वह अन्य देशों से आए हुए राजदूतों के प्रमाण–पत्रों को ग्रहण करता है। क्राउन ही भारत, आस्ट्रेलिया, कनाडा, न्यूजीलैंड इत्यादि राष्ट्रमण्डलीय देशों का औपचारिक अध्यक्ष होता है।

2. **विधायी शक्तियाँ (Legislative Powers)** – सम्राट सहित संसद को संवैधानिक दृष्टिकोण से विधि–निर्माण का अधिकार प्राप्त है। किसी भी विधेयक को जब संसद द्वारा कानून का रूप दिया जाता है तो उसमें लिखा होता है, ''यह अधिनियम सम्राट द्वारा लार्ड सभा के सदस्यों की अनुमति से और उनके अधिकार से पारित किया जाता है।'' सम्राट संसद के प्रथम अधिवेशन को बुलाने अथवा भंग करने का अधिकार रखता है। यह संसद के प्रथम अधिवेशन में भाषण देता है जिसे 'सिंहासन भाषण' कहा जाता है। इसमें शासन की राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय नीतियों पर प्रकाश डाला जाता है। इसके अतिरिक्त ताज सपरिषद् आदेश (Orders-in-Council) जारी करता है। ये साधारण प्रशासकीय नियम हो सकते हैं अथवा संसद द्वारा आज्ञा प्राप्त अधिनियम भी। वर्तमान समय में इस प्रकार के आदेशों की संख्या बहुत बढ़ गई है। इनका महत्व कानून के सदृश होता है। वित्त विधेयक सम्राट की पूर्वानुमति से ही लोक सदन में प्रस्तुत किए जा सकते हैं। सम्राट को विधेयकों पर निषेधाधिकार प्राप्त है, परंतु 1707 के बाद से इनका प्रयोग नहीं किया गया है। अतः अब यह परंपरा बन गई है कि सम्राट इस विशेषाधिकार का प्रयोग नहीं करेगा।

3. **न्यायिक शक्तियाँ (Judicial Powers)** – ताज न्याय का स्रोत है। ब्रिटेन के समस्त न्यायालय सम्राट के न्यायालय हैं। प्राचीन समय में सम्राट का सद्विवेक न्याय की अंतिम शक्ति माना जाता था। यद्यपि ब्रिटेन में स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायालयों की स्थापना की गई है, तथापि ताज को अनेक न्यायिक शक्तियाँ प्राप्त हैं। सम्राट ही मंत्रिपरिषद की सहमति से प्रमुख न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है, किंतु न्यायाधीशों को संसद द्वारा महाभियोग लगा कर ही पदच्युत किया जा सकता है। समस्त फौजदारी मुकद्दमों पर ताज की ओर से ही विचार–विमर्श होता है। सम्राट प्रिवी कौंसिल की न्याय–समिति के आधार पर उपनिवेशों व अधिराज्यों

की अपील भी सुनता है। सम्राट को दण्ड में कमी करने, दण्ड को स्थगित करने अथवा क्षमादान का भी अधिकार प्राप्त है। प्रशासनिक न्याय व्यवस्था के अंतर्गत कार्यपालिका के उच्च पदाधिकारी भी कुछ क्षेत्रों में ताज के नाम पर न्यायिक निर्णय करते हैं।

4. **धार्मिक शक्तियाँ (Religious Powers)** – ताज ब्रिटिश चर्च का अध्यक्ष है। ब्रिटेन में एंग्किलन (Anglican) व प्रेसबिटेरियन (Presbyterian) चर्च के ही अंग हैं। फलतः ताज कैंटरबरी के आर्क बिशप, मिशन तथा अन्य धार्मिक पदाधिकारियों की नियुक्ति करता है। ताज ही चर्च की सभाओं का आयोजन करता है और अनुशासन संबंधी नियम की अनुमति प्रदान करता है। धार्मिक न्यायालयों की अंतिम अपील प्रिवी कौंसिल की न्यायिक समिति के पास आती है। स्कॉटलैंड में स्थापित चर्च के संबंध में ताज की शक्तियाँ अधिक महत्वपूर्ण नहीं हैं किंतु ब्रिटिश चर्च की राष्ट्रीय सभा की समस्त गतिविधियाँ सम्राट की अनुमति से होती हैं।

5. **अन्य शक्तियाँ (Miscellaneous Powers)** – सम्राट सम्मान का स्रोत है। वह स्वयं समाज में सर्वाधिक सम्मानित व्यक्तित्व है। वह राष्ट्र की एकता एवं गौरव का प्रतीक है। अंर्तराष्ट्रीय क्षेत्र में भी उसका विशेष महत्व है। वह ब्रिटेन तथा अन्य संस्थाओं का प्रतीकात्मक अध्यक्ष है। सम्राट सामाजिक उत्सवों में सक्रिय भाग लेता है। वह अपने जन्म दिवस तथा नव वर्ष के उपलक्ष्य में विशिष्ट नागरिकों को उपाधियों से विभूषित करता है। सम्राट कुछ व्यक्तियों को संरक्षण भी प्रदान कर सकता है। प्रधानमंत्री के परामर्श से वह नए 'पीअर' नियुक्त कर लार्ड सभा के सदस्यों की संख्या में वृद्धि कर सकता है, जिसका राजनीति में विशेष महत्व हो सकता है।

सम्राट के विशेषाधिकार व उन्मुक्तियाँ (Royal Privileges and Immunities)

वैधानिक दृष्टिकोण से सम्राट की स्थिति महत्वपूर्ण है। उसके विरूद्ध षड्यंत्र या विद्रोह की सजा मौत है। ऑग के शब्दों में, ''राजा को कुछ व्यक्तिगत उन्मुक्तियाँ व विशेषाधिकार प्राप्त हैं। किसी न्यायालय में उसके व्यक्तिगत आचरण के विरूद्ध अभियोग नहीं लगाया जा सकता है और न ही कोई वैधानिक प्रक्रिया लागू की जा सकती है। न उसे बंदी बनाया जा सकता है और न ही उनकी संपत्ति नीलाम हो सकती है और जब तक वह किसी राजमहल में रहता है वहाँ उसके विरूद्ध कोई न्यायिक प्रक्रिया शुरु नहीं की जा सकती।''

सम्राट की वास्तविक स्थिति :

यद्यपि सरकार की वास्तविक सत्ता सम्राट में निहित नहीं होती, तथापि सम्राट का पद महान् प्रतिष्ठापूर्ण, गौरवशाली तथा प्रभावकारी है। साम्राज्ञी विक्टोरिया के विषय में कहे गए बैजहॉट के शब्द आज भी उसके उत्तराधिकारियों के विषय में सत्य सिद्ध होते हैं ''एक गौरवपूर्ण स्थिति में साम्राज्ञी की उपयोगिता अतुलनीय है। यदि वह ब्रिटेन में न हो तो वर्तमान अंग्रेजी सरकार विफल हो जाएगी और उसका अंत हो जाएगा।'' सम्राट राज्य का प्रतीक है। वह सुदूर व्याप्त साम्राज्यों की एकता का आधार है। यदि ब्रिटेन में गणराज्य स्थापित हो जाए तो राज्याध्यक्ष को कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड इत्यादि देशों से वह सम्मान नहीं मिलेगा जो वर्तमान साम्राज्ञी एलिजाबेथ को प्राप्त है। सम्राट ब्रिटिश तथा अन्य अधिराज्यों और उपनिवेशों के बीच कड़ी का काम करता है। सिडनी तथा बीट्रिस वैब के शब्दों में, ''ब्रिटिश सम्राट का विशेष कार्य, किसी भी रूप में, शासन की शक्तियों का प्रयोग करना नहीं है, अपितु इससे सर्वथा भिन्न है, वह उन संस्कारों को सम्पन्न करता है जो ब्रिटिश जाति की राजनीतिक संस्थाओं को ऐतिहासिक निरंतरता का सौंदर्य प्रदान करते हैं और जो वर्तमान स्थितियों में राष्ट्रमण्डल की जातियों तथा मतावलम्बियों में एकता की भावना बनाए रखने में अत्यधिक सहायक सिद्ध हुए हैं।'' सम्राट कुछ उपयोगी कार्य भी करता है जैसे विदेशी राजदूतों का स्वागत करना, सिंहासन–भाषण देना तथा पीअर की नियुक्ति इत्यादि। सम्राट सम्मान तथा शक्ति दोनों का प्रतीक है।

सम्राट का पद केवल एक अंलकरण की वस्तु नहीं है और न ही उसकी स्थिति स्वर्णिम शून्य की है। अनेक अवसरों पर सम्राट अपनी बुद्धिमता, निष्पक्षता, कूटनीतिज्ञता व कार्यकुशलता द्वारा शासन पद्धति पर व्यापक प्रभाव डाल सकता है। प्रश्न उठता है कि क्या ब्रिटिश सम्राट मंत्रिमण्डल के परामर्श के बिना, स्वेच्छापूर्वक कोई कार्य कर सकता है? बेजहॉट, एन्सन, कीथ इत्यादि की दृष्टि में ब्रिटेन का सम्राट स्वेच्छा से प्रधानमंत्री की नियुक्ति कर सकता है, लोक सदन को भंग कर सकता है और पुननिर्वाचन भी करा सकता है। सम्राट के इन परमाधिकारों का वास्तविकता में प्रयोग नहीं किया जाता, फिर भी विशेष राजनीतिक तथा राष्ट्रीय आपातकालीन स्थितियों में उनके फिर से महत्वपूर्ण हो जाने की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता।

प्रधानमंत्री की नियुक्ति करना सम्राट का एक महत्वपूर्ण अधिकार है जिसके प्रयोग के लिए वह निवृत होने वाले प्रधानमंत्री के परामर्श को मानने के लिए बाध्य नहीं है। प्रधानमंत्री को चुनने का उसका अधिकार सीमित है। सम्राट लोकसदन के बहुमत प्राप्त दल के नेता को ही प्रधानमंत्री चुनता है, किंतु कई बार स्पष्ट बहुमत प्राप्त न होने की स्थिति में, सम्राट स्वेच्छापूर्वक निर्णय ले सकता है। 1894 में ग्लैडस्टोन के बाद साम्राज्ञी विक्टोरिया ने सर विलियम हारकोर्ट बटलर के स्थान पर लार्ड रोजबरी को प्रधानमंत्री नियुक्त किया। 1923 में सम्राट जार्ज प्रथम ने प्रधानमंत्री बोनर ला के त्यागपत्र दे देने पर, उपप्रधानमंत्री लार्ड कर्जन के स्थान पर बाल्डविन को प्रधानमंत्री बनाया। इसी विशेषाधिकार का प्रयोग कर 1931 में जार्ज पंचम ने मैक्डानल को संयुक्त सरकार का प्रधानमंत्री नियुक्त किया। उदार बल के समर्थकों ने इसे सम्राट की सफलता माना और संवैधानिक भी, किंतु लास्की व ग्रीब्स के अनुसार, सम्राट का यह आचरण संवैधानिक भावना के अनुकूल न था। इसी प्रकार 1940 में चैम्बरलेन के स्थान पर चर्चिल, 1957 में उपप्रधानमंत्री बटलर के स्थान पर हैराल्ड मैक्मिलन को प्रधानमंत्री चुना गया जिससे सिद्ध होता है कि सम्राट प्रधानमंत्री के चुनाव में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

विशेष राजनीतिक परिस्थितियों में सम्राट संसदीय शासन में हस्तक्षेप भी कर सकता है। जैनिंग्स के मतानुसार, यदि सम्राट को ऐसा विश्वास हो जाए कि सत्तारूढ़ दल को लोकसदन में बहुत प्राप्त नहीं है तो वे मंत्रिमण्डल को त्यागपत्र देने अथवा लोकसदन के विघटन पर जोर दे सकता है। 1918 से यह परंपरा स्थापित हो चुकी है कि सम्राट प्रधानमंत्री के परामर्श पर ही लोकसदन को विघटित करेगा। कार्टर का विचार है कि 'जब राजा स्वेच्छा से कार्य करे तो उसे प्रत्यक्ष आलोचना के लिए भी तैयार रहना चाहिए, क्योंकि वास्तव में विवादास्पद समस्याओं में हस्तक्षेप करना उचित नहीं है।'' कीथ के शब्दों में 'इस शक्ति का प्रयोग बुद्धिमतापूर्वक केवल गंभीर परिस्थितियों में ही किया जाना चाहिए।'

सम्राट को केवल संवैधानिक अध्यक्ष के रूप में स्वीकार करना प्रतिक्रियावादी तत्वों को बढ़ावा देना मात्र है। शासन के दैनिक कार्यों, मंत्रिमण्डल की नीतियों, विरोधी दलों के व्यवहार, संसद में विधि–निर्माण इत्यादि पर सम्राट का विशेष प्रभाव पड़ता है। एक बार रूढ़िवादी दल ने 'आयरिश स्वशासन विधेयक' को गृह–युद्ध का सूचक मानकर सम्राट जार्ज प्रथम से उदारवादी सरकार व लोकसदन को भंग करने की मांग की थी। सम्राट के प्रभाव से प्रधानमंत्री एस्क्विथ ने एक समझौते को स्वीकार कर लिया जिसके परिणामस्वरूप उक्त विधेयक में कुछ संशोधन कर दिए गए। एक अन्य अवसर पर सामंत सदन के निषेधाधिकार को समाप्त करने के लिए लोकसदन में एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया। प्रधानमंत्री ने तत्कालीन सम्राट जार्ज पंचम से सामंत सदन में नए पीअर बनने की मांग की, ताकि इस प्रस्ताव को सामंत सदन में पारित कराया जा सके। इसी प्रश्न पर दो बार लोकसदन को भी भंग किया गया। अंत में सम्राट ने सूझ–बूझ से काम लिया। उसने गुप्त रूप से सामंत–सदन के सदस्यों को समझाया। इस प्रकार बिना नए पीअरों की नियुक्ति के उक्त विधेयक अधिनियम बना दिया गया। डायसी तथा एन्सन के अनुसार, सम्राट विशेष परिस्थितियों में प्रधानमंत्री की सलाह के बिना कार्य कर सकता है। 'आयरलैंड होमरूल बिल पर सम्राट उस समय भी निषेधाधिकार का प्रयोग कर सकता था। कानूनी तौर पर सम्राट द्वारा परमाधिकारों के प्रयोग पर कोई बाधा नहीं है।

ब्रिटिश सम्राट का पद अत्यधिक महत्वपूर्ण है। राजनीतिक और सार्वजनिक विषयों पर उसका विशेष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। जैनिंग्स के शब्दों में, ''सम्राट केवल नाममात्र का प्रधान नहीं है। यद्यपि वह शासन–पोत का चालक नहीं है फिर भी उसे देखना है कि प्रधान–पोत क्रियाशील रहे।'' इसी संदर्भ में बेजहॉट के ये शब्द स्मरणीय हैं कि, ''प्रशासन तथा नीति निर्धारण के संबंध में सम्राट के तीन अधिकार हैं – परामर्श के लिए पूछे जाने का अधिकार, प्रोत्साहित करने का अधिकार व चेतावनी देने का अधिकार।'' एक कुशल सम्राट इन अधिकारों के द्वारा राजनीति के प्रवाह पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाल सकता है। 'आयरिश स्वशासन विधेयक' पर जार्ज पंचम द्वारा प्रधानमंत्री एस्क्विथ को दी गई चेतावनी राजनीतिक दृष्टि से बहुत प्रभावशाली सिद्ध हुई। जैनिंग्स के शब्दों में ब्रिटिश सम्राट को, ''मंत्रिमंडल का लगभग एक सदस्य ही कहा जा सकता है, और वह एकमात्र निर्दलीय सदस्य होता है। वह सबसे अधिक जानकारी रखने वाला सदस्य भी होता है। केवल वही एक सदस्य है जिसे चुप रहने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। उसका पद अपने विचारों को एक प्रस्ताव में रखने वाले मंत्री अथवा प्रस्ताव न करने वाले मंत्रियों पर दबाव डाल सकता है। वह इससे भी अधिक कर सकता है, वह अपने विचारों को मानने के लिए प्रधानमंत्री पर जोर डाल सकता है जिसकी सत्ता मंत्रिमण्डल के फैसलों में निर्णयकारी सिद्ध हो सकती है। राजा शासन का आलोचक परामर्शदाता और मित्र होता है। राबर्ट पील के अनुसार, ''राजा को राज्य करने के पश्चात् सरकारी तंत्र का ज्ञान समस्त देश में सबसे अधिक हो जाना चाहिए।'' सम्राट ही एक ऐसा व्यक्ति होता है जो कि राष्ट्र हितों को सबसे अधिक समझ सकता है। वह सदैव राष्ट्रहित में मंत्रिमंडल की नीतियों को प्रोत्साहित कर सकता है।

राजनीतिक क्षेत्र में नहीं, अपितु राष्ट्रीय जीवन के सभी क्षेत्रों में सम्राट का प्रभाव व्याप्त है। उसका आचार–व्यवहार समाज के समक्ष आदर्श प्रस्तुत करता है। वह कला, विज्ञान, संस्कृति की उन्नति में विशेष रुचि लेता है। राजपरिवार के सदस्य अनेक प्रकार की सामाजिक सेवाओं में लग्न रहते हैं। राजतंत्र का ब्रिटिश जनता पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी पड़ा है। ऑग व जिंक के शब्दों में, –''जब सम्राट बकिंघम के महल में हो तो जनता सुख की नींद सोती है।'' सम्राट के जीवन काल में उसके प्रभाव का अनुमान नहीं लगाया जा सकता, क्योंकि समस्त गतिविधियाँ गुप्त रखी जाती हैं। अब हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि आयरलैंड के विभाजन के लिए स्वयं जार्ज पंचम ही उत्तरदायी था। अतः सिद्ध है कि सीमित राजतंत्र की मर्यादा में भी सम्राट की राजनीतिक शक्तियाँ नगण्य नहीं हैं।

4.2.2 ब्रिटिश प्रधानमंत्री

जिस प्रकार अध्यक्षीय प्रणाली में राष्ट्रपति की स्थिति है उसी प्रकार संसदीय शासन व्यवस्था में प्रधानमंत्री सर्वोच्च शासक होता है। ब्रिटिश प्रधानमंत्री को अमेरिकी राष्ट्रपति की भांति शक्तिशाली पदस्थिति प्राप्त है। यद्यपि ब्रिटेन में मंत्रिमंडल तथा प्रधानमंत्री जैसी संस्थाएँ बहुत प्राचीन हैं किंतु आधुनिक संसदीय प्रणाली के अनुरूप सन् 1721 में नियुक्त वाल्पोल को प्रथम प्रधानमंत्री माना जाता है। जब सम्राट जार्ज प्रथम ने केबिनेट की बैठकों में आना बंद किया तब से केबिनेट की अध्यक्षता के लिए प्रधानमंत्री पद बना। यद्यपि भारत की तरह ब्रिटेन में भी सामान्यतः उपप्रधानमंत्री पद सृजित नहीं किया गया है किंतु कभी–कभी उपप्रधानमंत्री भी बनाया जाता है।

योग्यताएँ :

ब्रिटेन में प्रधानमंत्री पद के लिए कोई निश्चित योग्यताएँ निर्धारित नहीं हैं तथापि निम्नांकित परंपराएँ निभाई जाती हैं: –

1. उसे लोक सदन में बहुमत वाले राजनीतिक दल का नेता होना चाहिए। लॉर्ड सभा का सदस्य भी प्रधानमंत्री बनाया जा सकता है लेकिन सुस्थापित परंपरा यही है कि प्रधानमंत्री को लोक सदन का सदस्य होना

चाहिए। यदि प्रधानमंत्री संसद का सदस्य नहीं है तो 6 माह में सदस्यता मिलनी आवश्यक है। यही शर्त मंत्रिपरिषद के सदस्यों पर लागू होती है।

2. उसकी छवि जनसाधारण के बीच लोकप्रिय एवं विश्वसनीय होनी चाहिए।
3. यदि कोई सत्तारूढ़ प्रधानमंत्री एवं मंत्रिमंडल अविश्वास प्रस्ताव इत्यादि के कारण त्यागपत्र देता है तो विपक्षी दल के नेता को प्रधानमंत्री पद का अवसर मिलता है यदि सदन में उसका बहुमत हो।

प्रधानमंत्री की नियुक्ति सम्राट द्वारा की जाती है तथा प्रधानमंत्री की अनुशंसा पर मंत्रिपरिषद के अन्य सदस्यों की नियुक्ति भी सम्राट ही करता है। पदमुक्ति प्रधानमंत्री अपनी इच्छा से त्यागपत्र देकर कर सकता है। नये आम चुनावों के पश्चात् नये मंत्रिमंडल का गठन किया जाता है। लोक सदन में प्रधानमंत्री तथा उनके मंत्रिमंडल के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित होने अथवा विश्वास मत में हार हो जाने पर प्रधानमंत्री को पद त्याग करना पड़ता है।

प्रधानमंत्री की शक्तियाँ :

ग्लैडस्टोन ने सच ही कहा है कि ''कहीं भी इतने छोटे पदार्थ की इतनी बड़ी छाया नहीं पड़ती, कहीं भी ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जिसे वास्तव में इतनी शक्ति प्राप्त हो, परंतु दिखाने के लिए जिसका औपचारिक अधिकार इतना कम हो।'' वास्तव में प्रधानमंत्री उस समय तक अनियंत्रित रूप से शासन कर सकता है जब तक कि उसे लोकसभा में बहुमत प्राप्त हो। प्रधानमंत्री को ही सामान्य हितों का संरक्षक माना जाता है। रेमजे म्योर के शब्दों में, ''उसकी शक्तियों को वैधानिक आधार प्राप्त नहीं है परंतु उसे जितनी व्यापक शक्तियाँ प्राप्त हैं उतनी विश्व में किसी संवैधानिक अध्यक्ष को, यहाँ तक कि अमेरिका के राष्ट्रपति को भी प्राप्त नहीं है।'' प्रधानमंत्री ही वह केंद्र है जिसके चारों ओर समस्त शासन तंत्र परिक्रमा करता है। वह मंत्रिमंडल का अध्यक्ष, संसद का नेता, सम्राट का प्रमुख परामर्शदाता, अपने दल का सर्वमान्य नेता तथा सर्वोच्च शक्ति का साकार रूप है।

1. **मंत्रिमण्डल का नेता** – प्रधानमंत्री मंत्रिमंडल का अध्यक्ष एवं नेता है। वह सम्राट की सहमति से मंत्रिमंडल के सदस्यों की नियुक्ति करता है तथा उनमें विभिन्न विभागों का वितरण करता है। उसे मंत्रियों के चुनाव में पर्याप्त स्वतंत्रता होती है। वह उन्हें त्यागपत्र देने के लिए भी बाध्य कर सकता है। एमरी के शब्दों में, ''अपने मंत्रिपरिषद के निर्माण में प्रधानमंत्री की जितनी स्वेच्छाचारी शक्ति होती है, उतनी शक्ति का उपभोग कोई अधिनायक भी नहीं करता।'' मंत्रिमंडल के सदस्यों की संख्या कितनी हो अथवा उसमें कौन–कौन व्यक्ति लिए जाएँ, इत्यादि निर्णय प्रधानमंत्री संसद तथा दलीय कार्यपालिका के प्रभाव से मुक्त होकर करता है। व्यवहार में, प्रधानमंत्री को मंत्रिमंडल का निर्माण करते समय विभिन्न वर्गों, धर्मों इत्यादि को प्रतिनिधित्व देना पड़ता है। प्रधानमंत्री ही मंत्रिमंडल को गति प्रदान करता है। मंत्रिमंडल की समस्त गतिविधियों पर उसका नियंत्रण होता है। विभिन्न मंत्रालयों में उत्पन्न मतभेदों का समाधान करना, विभिन्न विभागों में समन्वय स्थापित करना तथा उनकी समस्याओं पर विचार करना इत्यादि भी प्रधानमंत्री का कार्य है। प्रधानमंत्री ही मंत्रिमंडल की बैठकों की अध्यक्षता करता है। उसी के साथ समस्त मंत्रिमंडल का भविष्य जुड़ा हुआ होता है। यदि प्रधानमंत्री और किसी मंत्री में मतभेद हो जाए तो मंत्री को ही त्यागपत्र देना पड़ता है। लास्की के अनुसार, ''ब्रिटिश प्रधानमंत्री मंत्रिमण्डल के निर्माण, उसके जीवन एवं मृत्यु के लिए केन्द्रीय स्थिति रखता है।''
2. **लोकसभा का नेता (Leader of the House of Commons)** – प्रधानमंत्री लोकसभा का नेता होता है। शासन का प्रमुख अधिवक्ता होने के नाते वह समस्त सरकारी नीतियों पर अधिकारपूर्वक निर्णय देता है। किसी भी विषय पर उसका वक्तव्य प्रामाणिक तथा अंतिम माना जाता है। सरकार की नीतियों और

कार्यक्रमों के विषय में महत्वपूर्ण घोषणाएँ प्रधानमंत्री द्वारा की जाती हैं। लोकसदन में पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देना अथवा किसी सहयोगी मंत्री द्वारा दिये गए भाषण से उत्पन्न त्रुटियों में सुधार लाना भी प्रधानमंत्री का कर्त्तव्य है। प्रधानमंत्री ही लोकसदन को नेतृत्व प्रदान करता है। बजट तैयार करना, सरकारी विधेयक तैयार करना इत्यादि कार्य प्रधानमंत्री के निरीक्षण में ही संपादित किए जाते हैं। वही इस बात का निश्चय करता है कि संसद का अधिवेशन कब और कितने समय के लिए बुलाया जाए। सरकारी तथा व्यक्तिगत विषयों पर लोकसभा में समय का विभाजन भी उसी की सहमति से किया जाता है। उसे लोकसभा को विघटित करने की शक्ति भी प्राप्त है। 1942 तक प्रधानमंत्री स्वयं लोकसदन का नेता नियुक्त करता था, परंतु कार्यों की अधिकता के कारण 1842 में बटलर को लोकसदन का नेता नियुक्त किया गया। तब से प्रधानमंत्री व लोकसदन के नेता दो भिन्न–भिन्न व्यक्ति हो सकते हैं, किंतु इससे प्रधानमंत्री के उत्तरदायित्वों व शक्तियों में कोई कमी नहीं आती। 1977 में माइकल फुट को लोकसभा का नेता नियुक्त किया गया था।

3. **दल का नेता (Leader of the Party)** – प्रधानमंत्री दल का प्रमुख नेता होता है। बहुमत दल का नेता होने के कारण उसका व्यक्तित्व, सार्वजनिक रूप ग्रहण कर लेता है। वह दलीय प्रचार में पूर्ण रूप से सक्रिय रहता है। वह अपने दल की केन्द्रीय समितियों तथा संगठनों का प्रमुख होता है। प्रधानमंत्री के व्यक्तित्व के साथ ही दल का भविष्य जुड़ा हुआ होता है। सामान्य निर्वाचन एक प्रकार से प्रधानमंत्री पद के प्रत्याशियों के बीच जनमत–संग्रह होता है। 1945 के अनुसार दल की अपेक्षा चर्चिल ने व्यक्तिगत रूप से जनता से अपील की थी। उस निर्वाचन का प्रमुख नारा था 'चर्चिल या लास्की।' इसी प्रकार 1966 का चुनाव अनुदार और श्रमिक दल में मुकाबला न होकर विल्सन और हीथ के बीच था। प्रधानमंत्री ही संसदीय दल का प्रमुख होता है। एक बार प्रधानमंत्री बन जाने पर उसे राजनीतिक दल द्वारा नेतृत्व से वंचित करना कठिन हो जाता है। उदाहरणार्थ, चर्चिल और उसके अनुयायी, चेम्बरलेन को प्रधानमंत्री के पद से हटाने में सफल न हो सके। निर्वाचन में सफलता के कारण वह राष्ट्र की एकता का प्रतीक बन जाता है। 1983 में प्रधानमंत्री थैचर के विषय में कहा गया कि वह अनुदार दल का सबसे अधिक शक्तिशाली 'पुरुष' (The strongest 'Man' in Conservative party) है। मुनरो के अनुसार, ''यह कोई नहीं जानता कि अन्य मंत्री कहाँ रहते हैं, परंतु मूर्ख से मूर्ख व्यक्ति भी जानता है कि 10, 'डाउनिंग स्ट्रीट' का क्या अर्थ है?'' प्रधानमंत्री अपने दल की शक्ति तथा प्रतिष्ठा का मूर्त रूप होता है। वह दल की एकता का मुख्य आधार होता है।

4. **सम्राट तथा मंत्रिमण्डल के बीच कड़ी (Liank between the sovereign and the cabinet)** – प्रधानमंत्री मंत्रिमण्डल और सम्राट के बीच कड़ी का काम करता है। सम्राट और मंत्रिमण्डल के मध्य पत्र व्यवहार प्रधानमंत्री के माध्यम से ही होता है। उसका उपनिवेशों के प्रधानमंत्रियों से सीधा संबंध होता है। वह मंत्रिमण्डल के निर्णयों से सम्राट को सूचित करता है। पहले अन्य मंत्री स्वयं भी सम्राट से सीधा संपर्क स्थापित कर लेते थे, किंतु अब केवल प्रधानमंत्री ही ऐसा कर सकता है। विभिन्न मंत्रियों के निजी विचारों से सम्राट को सूचित करना आवश्यक नहीं है। अपवादस्वरूप, प्रधानमंत्री डिजरेली तत्कालीन साम्राज्ञी विक्टोरिया को मंत्रिमंडलीय बैठकों की कार्यवाही की विस्तृत सूचना दिया करते थे, परंतु यह परंपरा उचित नहीं है। इससे सम्राट के मन में किसी भी मंत्री के प्रति गलत धारणा बन सकती है। प्रधानमंत्री सम्राट के व्यक्तिगत जीवन के विषयों पर भी मित्रवत परामर्श दे सकता है। उदाहरणार्थ, बाल्डविन ने एडवर्ड अष्टम को श्रीमती सिम्पसन से विवाह न करने का परामर्श दिया था। सम्राट किन समारोहों में भाग लेगा, किन साम्राज्यों तथा देशों की यात्रा करेगा इत्यादि निर्णय प्रधानमंत्री द्वारा ही लिए जाते हैं।

5. **विदेश नीति का निर्माता (Formulates Foreign Policy)** – प्रधानमंत्री विदेश नीति का प्रमुख निर्माता होता है। वह अंतर्राष्ट्रीय प्रश्नों पर शासन का अधिकृत वक्ता होता है। यद्यपि विदेश विभाग उसके अधीन नहीं होता, तथापि विदेश नीति के निर्माण और क्रियान्वयन पर उसका विशेष प्रभाव होता है। विदेश नीति

संबंधी सभी महत्वपूर्ण घोषणाएँ प्रधानमंत्री द्वारा ही की जाती हैं। प्रधानमंत्री का विदेश मंत्री पर पूर्ण नियंत्रण रहता है जैसे चेम्बरलेन द्वारा इडेन पर तथा मैक्डोनेल्ड द्वारा हेन्डरसन पर था। विदेश मंत्री कोई भी निर्णय लेने से पूर्व प्रधानमंत्री से परामर्श करता है। उदाहरणार्थ, सर एडवर्ड ग्रे ने 30 जुलाई, 1914 को प्रधानमंत्री एस्क्विथ के परामर्श से ही ब्रिटिश तटस्थता संबंधी तार भेजा था। प्रधानमंत्री तथा विदेश मंत्री में घनिष्ठ संबंध होता है। अपने कार्यकाल में प्रधानमंत्री चेम्बरलेन स्वयं विदेश नीति के निर्माता थे। वे ही 'म्यूनिख पेक्ट' के लिए भी उत्तरदायी थे। इसी दौरान प्रधानमंत्री चर्चिल ने छह बार राष्ट्रपति रूजवेल्ट और दो बार स्टालिन से मुलाकात की। अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में प्रधानमंत्री समस्याओं पर विचार–विमर्श करता है। राष्ट्रमंडलीय देशों के साथ प्रधानमंत्री ही मंत्रिमण्डल की ओर से बातचीत करता है। अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रधानमंत्री ही ब्रिटेन का प्रतिनिधित्व करता है। युद्ध तथा आर्थिक संकट के समय में इसकी शक्तियाँ और अधिक बढ़ जाती हैं।

6. **नियुक्ति तथा उपाधि संबंधी शक्ति** (Powers related to Patronages) – प्रधानमंत्री को नियुक्ति संबंधी अपार शक्तियाँ प्राप्त हैं। राज्य तथा साम्राज्यों की सभी महत्वपूर्ण नियुक्तियाँ प्रधानमंत्री द्वारा ही की जाती हैं। बिशपों, राजदूतों, न्यायाधीशों, विभागों के अध्यक्ष तथा उपनिवेशों के राज्यपाल इत्यादि प्रधानमंत्री द्वारा ही नियुक्त किए जाते हैं। प्रधानमंत्री वित्त मंत्रालय के माध्यम से लोकसेवाओं और मंत्रिमंडलीय सचिवालय पर नियंत्रण रखता है। प्रधानमंत्री के परामर्श पर ही सम्राट विशिष्टजनों को उपाधियों से विभूषित करता है तथा नए पीअरों की नियुक्ति करता है। इसके अपवाद स्वरूप, सम्राट को नौसेना, स्थलसेना और वायुसेना संबंधी उपाधियाँ प्रदान करने का अधिकार दिया गया है।

प्रधानमंत्री की शक्ति के स्रोत : (Sources of the Strength of the Prime Minister)

एक बार प्रधानमंत्री पद पर चुन लिए जाने के बाद ब्रिटिश प्रधानमंत्री व्यापक शक्तियों का प्रयोग करता है। प्रधानमंत्री की शक्तियों की मात्रा में अंतर हो सकता है। यह प्रधानमंत्री के व्यक्तित्व तथा राजनीतिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है। यहाँ पर प्रधानमंत्री की शक्तियों के स्रोतों तथा उसकी शक्तियों पर प्रतिबंधों (limitations on powers) पर विचार किया जा रहा है –

1. **दलीय निष्ठा (Party loyalty)** – किसी भी प्रधानमंत्री की स्थिति दलीय निष्ठा की मात्रा पर निर्भर करती है। बहुमत दल सदैव अपने नेता की सफलता की ही कामना करता है। यदि प्रधानमंत्री की नीतियों और तरीकों की सराहना होती है तो दल के सदस्यों को भी इसका लाभ पहुंचता है। इस प्रकार की स्थिति में अगले चुनाव में उनके जीतने की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं। यदि किसी कारणवश, प्रधानमंत्री को कुछ दिक्कतों का सामना करना पड़ता है और विरोधी दल तथा प्रेस द्वारा आलोचनाओं का शिकार बनना पड़ता है तो भी प्रधानमंत्री के दल के साथी उसका साथ देते हैं। यदि इस प्रकार की आलोचनाओं का दृढ़तापूर्वक प्रत्युत्तर न दिया जाए तो समस्त दल को नुकसान पहुंच सकता है। लोकसभा में विश्वासघात (Disloyalty in the Commons) करने पर सरकार का पतन हो सकता है और फिर सभी संसद सदस्यों को नए चुनावों का सामना करना पड़ सकता है। इस प्रकार की प्रतिकूल परिस्थितियों में सत्तारूढ़ दल के फिर से जीतने की संभावना बहुत कम होती है। अतः बहुमत दल के सदस्य प्रत्येक स्थिति में अपने नेता का साथ देने में ही अपनी भलाई समझते हैं

   दलीय निष्ठा और दलीय सचेतक ब्रिटिश राजनीति का अभिन्न अंग बन चुके हैं। दलीय सचेतक संसद सदस्यों पर पर्याप्त दबाव रखते हैं। उन्हें दलीय निष्ठा के कारण अपने दल के सदस्यों का पर्याप्त समर्थन मिलता है। अधिकांश संसद सदस्य अपने चुनाव के अनेक वर्षों के पहले से दल के सदस्य के रूप में काम कर चुके होते हैं। वे दल की सामान्य नीति के प्रति निष्ठा रखते हैं। वे जानते हैं कि दलीय नीति

की हार से उन्हें गहरा आघात पहुँच सकता है। वे दलीय बैठकों में दल की नीति में परिवर्तन की मांग कर सकते हैं अथवा मंत्रिमण्डल और प्रधानमंत्री की नीतियों से असहमति प्रकट कर सकते हैं तथापि जनता के सामने वे दल की नीतियों का समर्थन ही करते हैं। लोकसभा के विघटन की धमकी के द्वारा भी प्रधानमंत्री अपनी बात मनवा सकता है, क्योंकि कोई भी संसद सदस्य समय से पूर्व आम चुनाव का सामना नहीं करना चाहता।

संरक्षण तथा लाभों के वितरण के कारण भी प्रधानमंत्री को अपने दल के सदस्यों का समर्थन मिलता रहता है। प्रधानमंत्री द्वारा संरक्षण अनेक प्रकार का हो सकता है। लोकसभा में ही लगभग 100 स्थान ऐसे हैं जिन पर प्रधानमंत्री स्वेच्छापूर्वक अपने व्यक्तियों को नियुक्त कर सकता है। इसके अतिरिक्त प्रधानमंत्री के परामर्श पर सम्राट किसी भी व्यक्ति को पीअर की उपाधि प्रदान कर सकता है, जिसके फलस्वरूप उस व्यक्ति को लार्ड सभा की सदस्यता प्राप्त हो जाती है। दलीय सचेतक भी अपने दल के संसद सदस्यों को विभिन्न समितियों में स्थान दिला सकते हैं। इस प्रकार दलीय निष्ठा प्रधानमंत्री की शक्ति का प्रमुख स्रोत बन जाता है।

2. **मंत्रिमंडल तथा सेवाओं द्वारा सहयोग (Support of the Cabinet and the Civil Services)** – मंत्रिमंडल तथा लोकसेवाओं के सहयोग के कारण भी प्रधानमंत्री की स्थिति मजबूत होती है। प्रधानमंत्री मंत्रिमण्डल का नेता होता है। वह इच्छापूर्वक मंत्रियों का चुनाव कर सकता है अथवा उन्हें त्यागपत्र देने के लिए मजबूर कर सकता है। दूसरी ओर उसे मंत्रिमंडल सचिवालयों का भी पर्याप्त समर्थन मिलता है। लोक सेवा आयोग (Civil Service Department) भी प्रधानमंत्री के प्रति उत्तरदायी होता है। यह शासन तंत्र को चलाने में प्रधानमंत्री की मदद करता है। अधिकांश प्रधानमंत्री विदेश मामलों में विशेष रुचि रखते हैं। फलस्वरूप ब्रिटिश शासन प्रणाली में प्रधानमंत्री की स्थिति और अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। उदाहरण के लिए 1971 में फ्रांस के राष्ट्रपति पोम्पीडोय (Pompidou) के साथ प्रधानमंत्री हीथ की वार्तालाप के कारण ही ब्रिटेन को यूरोपीय साझा बाजार की सदस्यता प्राप्त हो सकी। इसी प्रकार घरेलू राजनीति में भी प्रधानमंत्री मैकमिलन, विल्सन, हीथ इत्यदि ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया।

अधिकांश प्रधानमंत्री नीतियों के निर्माण अथवा क्रियान्वयन के लिए मंत्रिमंडलीय सचिवालय की मदद लेते हैं। किसी भी निर्णय तक पहुंचने से पूर्व वे आंतरिक मंत्रिमंडल की बैठकों में वरिष्ठ मंत्रियों से परामर्श करना अधिक उपयुक्त समझते हैं। प्रधानमंत्री और मंत्रिमंडल के सदस्यों का उद्देश्य एक ही होता है। अतः वे एक साथ मिलकर काम करना अधिक लाभकारी समझते हैं। प्रधानमंत्री ही बैठकें बुलाता है, विभिन्न विभागों में समन्वय स्थापित करता है। यदि प्रधानमंत्री और किसी मंत्री के बीच मतभेद हो जाए तो मंत्री को ही त्यागपत्र देना पड़ता है, प्रधानमंत्री को नहीं। यदि कोई मंत्री त्यागपत्र न दे, तो प्रधानमंत्री नए मंत्रिमंडल का गठन कर सकता है।

सर ए. डगलस होम के अनुसार– ''आज एक मंत्री की स्थिति प्रधानमंत्री के एजेंट जैसी हो गई है। प्रधानमंत्री ही मंत्रिमंडल का नेता होता है। वही मंत्रिमण्डल की ओर से साम्राज्ञी से बातचीत करता है। दलीय निष्ठा तथा प्रधानमंत्री द्वारा संरक्षण के कारण ही मंत्रियों की स्थिति इस प्रकार की हो गई है।'' इसके अतिरिक्त प्रधानमंत्री को प्रशासन का भी पर्याप्त समर्थन मिलता है। प्रधानमंत्री की सहायता के लिए अनेक निजी कर्मचारी होते हैं। कुछ उसके निर्वाचन क्षेत्र तथा राजनीतिक पत्र–व्यवहार की देखभाल करते हैं, कुछ 'डाउनिंग स्ट्रीट' (प्रधानमंत्री का निवास स्थान) में रहकर प्रधानमंत्री के दिन–प्रतिदिन की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं और उसकी नीतियों के निर्माण और क्रियान्वयन में सहायता करते हैं। मंत्रिमण्डलीय सचिवालय और इसकी अनेक समितियाँ भी प्रधानमंत्री की सहायता के लिए तैयार रहती हैं।

3. **संचार साधनों पर व्यापक प्रभाव (Influence over the mass media)** – प्रधानमंत्री अपने 'प्रैस सहायक अधिकारियों (Press-aids) के माध्यम से जनसंबंधों (public relations) पर पूर्ण नियंत्रण रखता है। प्रधानमंत्री को समस्त मंत्रिमण्डल का अधिकृत वक्ता माना जाता है। प्रधानमंत्री ही समस्त सरकारी नीतियों की व्याख्या करता है। समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, रेडियो और टेलीविजन के रिपोर्टर 10, 'डानिंग स्ट्रीट' को ही सूचना का केंद्र मानकर चलते हैं और इसीलिए प्रधानमंत्री और उसके कर्मचारी (staff) के कृपापात्र बने रहना चाहते हैं। विदेश यात्राओं तथा विदेशों से आए मेहमानों का प्रधानमंत्री द्वारा स्वागत इत्यादि, कुछ ऐसे अवसर होते हैं, जिन्हें समाचार पत्रों और दूरदर्शन द्वारा बहुत महत्व दिया जाता है। इसका जनमत पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। सत्ता में होने के कारण प्रधानमंत्री इस बात के लिए स्वतंत्र होता है कि कब और कैसे बर्ताव किया जाए जबकि विरोधी दल के नेता को अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करके ही संतुष्ट हो जाना पड़ता है।

4. **आम चुनाव की तिथि निर्धारित करने का अधिकार (Right to choose the date of the election)** प्रधानमंत्री ही सरकार के राजनीतिक दावपेंचों के लिए उत्तरदायी होता है। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद से ही यह परंपरा स्थापित हो गई है कि आम चुनाव की तिथि प्रधानमंत्री द्वारा ही निर्धारित की जाती है। प्रधानमंत्री मंत्रिमण्डल के सदस्यों, दलीय सचेतकों तथा अन्य दलीय उच्चाधिकारियों से परामर्श कर सकता है, किंतु उसका निर्णय ही (सही अथवा गलत) अंतिम होता है। प्रधानमंत्री थैचर ने जून, 1983 में मध्यावधि चुनाव कराया जिससे अनुदार दल को भारी लाभ पहुँचा। यही कारण है कि अब मंत्रिमण्डलीय अधिनायकत्व के स्थान पर प्रधानमंत्री द्वारा तानाशाही की बात की जाने लगी है। प्रत्येक मंत्रिमण्डल प्रधानमंत्री से ही जीवन प्राप्त करता है। इसलिए ब्रिटिश मंत्रिमण्डल को उसके प्रधानमंत्री के नाम से पुकारा जाता है। जैसे 'विल्सन मंत्रिमण्डल', 'मैकमिलन मंत्रिमण्डल', 'थैचर मंत्रिमण्डल' इत्यादि।

प्रधानमंत्री पद की सीमाएँ :

प्रधानमंत्री की शक्तिशाली भूमिका होने के बावजूद वह स्वेच्छाचारी तथा अनियंत्रित कदापि नहीं है क्योंकि व्यवहार में उसके आचरण पर अनेक मर्यादाएँ हैं। जैसे–दलीय अनुशासन, संसदीय नियंत्रण, बहुमत का दबाव, जनमत, दबाव समूह, सम्राट का परामर्श, साथियों का प्रभाव, अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ, अप्रत्याशित घटनाएँ तथा परिस्थितियाँ, विरोधी दल की आलोचनाएँ आदि। ये सभी मर्यादाएँ पूर्णतः प्रभावहीन नहीं हैं। वह इन सबसे कितना प्रभावित होगा यह उसके स्वयं के व्यक्तित्व और प्रतिभा पर निर्भर करता है।

प्रधानमंत्री की स्थिति :

प्रधानमंत्री देश का यथार्थ शासक है। उसकी शक्तियाँ अपार हैं। लास्की के मतानुसार, ''प्रधानमंत्री वह धुरी है जिसके चारों ओर संपूर्ण शासनतंत्र परिक्रमा करता है।'' वह कार्यपालिका के प्रभावशाली भाग का अध्यक्ष है। वह विभागों के बीच मतभेदों को दूर करता है, राजा की अनुमति से किसी भी मंत्री से त्यागपत्र मांग सकता है तथा महत्वपूर्ण नियुक्तियों के संदर्भ में उसका मत निर्णायक होता है। वह सभी विभागों, विशेषकर विदेश विभाग पर नियंत्रण रखता है तथा नीति के समन्वयकर्त्ता के रूप में कार्य करता है। वह लोकसदन का नेता होता है। यदि विशेष कठिन परिस्थितियों में, अन्य मंत्री संसद को संतुष्ट नहीं कर पाते तो संसद के सदस्य प्रधानमंत्री से रक्षित शक्ति के नाते अपील करते हैं। वह सम्राट तथा मंत्रिमण्डल के बीच प्रभावकारी कड़ी का काम करता है। प्रधानमंत्री के विरूद्ध उस समय तक विद्रोह नहीं हो सकता जब तक कि उसने अपने कार्यों से व्यापक असंतोष उत्पन्न न कर लिया हो। बेजहॉट के अनुसार प्रधानमंत्री, ''ब्रिटिश संविधान के दक्ष भाग का प्रधान है।'' मेरियट के शब्दों में, ''वह देश का राजनीतिक शासक है।'' जैनिंग्स के मतानुसार, ''प्रधानमंत्री को संपूर्ण संविधान की आधारशिला कहना उपयुक्त है।'' प्रधानमंत्री केवल समकक्षों में प्रथम ही नहीं है, अपितु वह सूर्य है जिसके चारों ओर अन्य नक्षत्र घूमते हैं।

प्रधानमंत्री की स्थिति इतनी महत्वपूर्ण होने पर भी, फाइनर के शब्दों में, ''वह सीजर नहीं है। वह ऐसा देवता नहीं है जिसे चुनौती न दी जा सके। उसके विचार ही आदेश नहीं होते, वह सदैव दया पर निर्भर रहता है। उसकी अवधि उसके द्वारा की गई लाभदायक सेवा पर्यंत है। किसी भी क्षण कोई विरोधी उसको अपदस्थ कर सकता है।'' आधुनिक समय में सरकार के कार्यों में वृद्धि के फलस्वरूप प्रधानमंत्री की शक्तियों में कोई कमी नहीं आई है। जब तक दल पर उसका पूर्ण नियंत्रण होता है, कोई भी उसका विरोध नहीं कर सकता। वस्तुतः वह राष्ट्र का नेता होता है। लॉवेल के मतानुसार, ''मंत्रीमण्डल का निर्माण विभिन्न प्रकार के असमान और विभिन्न आकृति वाले टुकड़ों से किसी वस्तु के निर्माण के समान है।'' लास्की ने इस स्थिति की समीक्षा इन शब्दों में की है, ''उसे अनेक परिस्थितियों को ध्यान में रखना पड़ता है। दल के नेता के रूप में वह कुछ प्रमुख साथियों की उपेक्षा नहीं कर सकता, क्योंकि उनकी उपस्थिति दलीय शासन के लिए उपेक्षित है। उसके कुछ साथी इतने महत्वपूर्ण हो सकते हैं कि वे जिस विभाग को लेना चाहें उन्हें वही विभाग देना पड़ता है। वास्तव में वह एक सावयवी इकाई का निर्माण करता है जिसके सदस्य एक दूसरे के कार्यों के लिए सामूहिक उत्तरदायित्व वहन करने को तत्पर रहते हैं।'' यह सच है कि संसदीय समितियों तथा उच्च प्रशासकीय अधिकारियों के युग ने प्रधानमंत्री को पहले से कहीं अधिक शक्तिशाली बना दिया है। सभी महत्त्वपूर्ण निर्णय विभागाध्यक्ष तथा प्रभावशाली प्रशासकों की सहायता से प्रधानमंत्री द्वारा ही लिए जाते हैं। मंत्रिमण्डलीय सचिवालय पर भी प्रधानमंत्री का पूर्ण नियंत्रण होता है। इसके माध्यम से उसे सभी विभागों की आवश्यक जानकारी मिलती रहती है। आर0 एच0 एस0 क्रॉसमैन (R.H.S. Crossman) जे0 पी0 मैकिन्टोश इत्यादि आधुनिक विचारकों का मत है कि प्रधानमंत्री शासन ने मंत्रिमण्डलीय अधिनायकत्व का स्थान ग्रहण कर लिया है। आज प्रधानमंत्री पर तानाशाह होने पर आरोप लगाया जाता है।

क्रॉसमैन के अनुसार ब्रिटिश मंत्रिमण्डल की स्थिति अब अन्य सम्माननीय संस्थाओं के समान हो गई है। सभी महत्वपूर्ण निर्णय प्रधानमंत्री के द्वारा ही लिए जाते हैं। ब्रिटेन में एटम बम बनाने का निर्णय तत्कालीन प्रधानमंत्री एटली का ही था। क्रॉसमैन के अनुसार यह निर्णय मंत्रिमण्डल की पूर्व सम्मति पर आधारित नहीं था। प्रधानमंत्री के कुछ घनिष्ठ मित्रों को छोड़कर अन्य किसी व्यक्ति को इसका ज्ञान तक नहीं था, किंतु दूसरी ओर यूरोपीय सांझा बाजार (European Common Market) के लिए आवेदन का निश्चय प्रधानमंत्री डगलस स्रोत द्वारा अनेक मंत्रिमण्डलीय बैठकों के उपरांत ही लिया गया। प्रधानमंत्री की स्थिति एक अधिनायक के समान है, किंतु जहाँ एक अधिनायक स्वेच्छाचारी होता है, वहाँ प्रधानमंत्री सुस्थापित विधियों एवं परंपराओं के अनुकूल देश का शासन करता है। सामूहिक उत्तरदायित्व की परंपरा तथा आधुनिक शासन की जटिलताओं के होते हुए प्रधानमंत्री द्वारा शासन का आरोप केवल एक कल्पना मात्र है। हैंस डालडर के शब्दों में, ''स्वयं प्रधानमंत्री का कार्यभार कुछ विशेष महत्वपूर्ण विषयों को छोड़कर अन्य विषयों में हस्तक्षेप के लिए निरोधक का काम करता है। किसी विषय को स्वतंत्र छोड़कर ही वह अपनी इच्छा को मनवा सकता है।

जैनिंग्स के ये शब्द प्रधानमंत्री की स्थिति के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण हैं कि, ''प्रधानमंत्री का पद वैसा होता है जैसा कि उस पद पर आसीन व्यक्ति उसे बनाना चाहते हैं और जैसा कि अन्य मंत्रिगण उसे उसको बनाने देते हैं।'' कहने का तात्पर्य है कि प्रधानमंत्री की स्थिति बहुत कुछ उसके अपने व्यक्तित्व, प्रतिष्ठा तथा सहयोगियों के साथ उसके संबंधों पर निर्भर करती है। डिजरेली, ग्लैडस्टोन, लील और चर्चिल जैसे प्रधानमंत्री बहुत प्रभुत्वशाली थे। उनकी सत्ता को सरलता से चुनौती नहीं दी जा सकती थी। दूसरी ओर, लॉर्ड सैलिसबरी, लॉर्ड रोजवरी इत्यादि का अपने मंत्रिमण्डल पर भी पर्याप्त नियंत्रण नहीं था। प्रधानमंत्री की योग्यता, ज्ञान की व्यापकता, नेतृत्व शीघ्र कार्य करने तथा शीघ्र निर्णय लेने की क्षमता इत्यादि का उसकी शक्तियों और स्थिति पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। फाइनर ने इसका वर्णन बड़े रोचक शब्दों में किया है, ''वह जीन पर दृढ़ता से अवस्थित है, लेकिन वह मंजा हुआ सवार है या लुढ़कने वाला, भाड़े के टट्टू के लायक है या फौजों और घुड़दौड़ के घोड़े के लायक यह उस पर निर्भर करता है।''

प्रो0 चेस का मत है कि आधुनिक काल में ब्रिटिश प्रधानमंत्री की स्थिति अर्द्धअध्यक्षात्मक (Quasi-Presidential) हो गई है इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होने के कारण वह मंत्रिमण्डल और संसद के सदस्यों से स्वतंत्र रूप में अपने पद का उपभोग करता है। सिडनी लॉ के अनुसार, ''वह जर्मन सम्राट तथा अमेरिका के राष्ट्रपति एवं संयुक्त राज्य की कांग्रेस समितियों के सभापतियों से भी अधिक शक्तिशाली होता है।'' वैधानिक शासकों में वह विश्व का सर्वाधिक शक्तिशाली शासक है। लास्की, प्रधानमंत्री की अमेरिका के राष्ट्रपति से तुलना को उपयुक्त नहीं मानता। उसके अनुसार, ''बिटिश प्रधानमंत्री की स्थिति अमेरिका के राष्ट्रपति के समान कहना उचित नहीं है। दलीय संगठन के परिप्रेक्ष्य में उसकी स्थिति कहीं अधिक प्रभावपूर्ण है। उसकी शक्ति का आधार सुनिश्चित रूप में प्रदत्त शक्तियाँ नहीं है। लेकिन मैं यह समझता हूँ कि मंत्रिमण्डल पर प्रधानमंत्री का नियंत्रण जितना अधिक होता है, संसदीय प्रणाली के सफलतापूर्वक चलाने की आशा उतनी ही अधिक होती है।'' अतः कहा जा सकता है कि ब्रिटिश शासन प्रणाली में प्रधानमंत्री का स्थान सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। जब तक उसे अपने दल का समर्थन प्राप्त नहीं होता है, वह स्वेच्छापूर्वक काम कर सकता है, किंतु उसे एक अधिनायक नहीं कहा जा सकता। जहाँ एक अधिनायक मनमानी करता है, वहाँ प्रधानमंत्री नियमों और पंरपराओं के अनुकूल शासन करता है।

4.2.3 ब्रिटिश मंत्रिमण्डल :

ब्रिटिश मंत्रिमण्डल को संसदीय प्रणाली का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण माना जा सकता है–अपने गौरव के लिए, अपितु अपनी सूक्ष्मता, अपनी परिवर्तनशीलता तथा बहुमुखी शक्तियों के लिए। ब्रिटिश मंत्रिमण्डल को संवैधानिक मशीनरी का सबसे महत्वपूर्ण पुर्जा कहा जा सकता है। इसे संविधान का केंद्रीय तत्त्व माना जा सकता है। डायसी के अनुसार, ''राज्य का हर कार्य सम्राट के नाम से किया जाता है। परंतु इंग्लैण्ड की शासन व्यवस्था में वास्तविक कार्यपालिका मंत्रिमण्डल है।'' यद्यपि वैधानिक दृष्टि से संप्रभुता सम्राट तथा संसद में निहित है, किंतु व्यवहार में मंत्रिमण्डल ही सम्राट तथा मंत्रिमंडल की शक्तियों का उपयोग करता है। मंत्रिमण्डल संयोग एवं बुद्धि की संतान (a child of accident and design) है। शासन के क्षेत्र में ब्रिटिश मंत्रिमंडलीय कार्यपालिका का विकास सर्वाधिक शिक्षाप्रद है। भारत, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड इत्यादि अनेक देशों ने इसका अनुकरण किया है।

ब्रिटिश मंत्रिमण्डल का विकास

ब्रिटिश मंत्रिमण्डल क्रमिक विकास का फल है। यह बहुमत दल के संसदीय प्रमुखों का स्थायी, किंतु अनौपचारिक संगठन है। 1937 में ताज के मंत्री अधिनियम के बनने से पहले तक इसे कोई वैधानिक मान्यता प्राप्त नहीं थी। वास्तव में यह ऐतिहासिक परिस्थितियों, अवसर एवं योजना का परिणाम है। मंत्रिमण्डल का अभ्युदय प्रिवी परिषद से हुआ। विस्तृत आकार के कारण प्रिवी परिषद परामर्शदात्री समिति के योग्य नहीं रह गई थी। फलतः सम्राट ने प्रिवी परिषद की अपेक्षा इसके कुछ विश्वासपात्र सदस्यों से महल के एक छोटे कमरे (Cabinet) में विचार–विमर्श करना शुरु कर दिया। चार्ल्स द्वितीय के शासन काल को मंत्रिमण्डल का आरंभिक काल माना जा सकता है। इसके परामर्शदाताओं की समिति 'कबाल' कहलाती थी जिसका प्रमुख कार्य सम्राट को परामर्श देना और ससंद में विधि निर्माण के लिए प्रस्ताव प्रस्तुत करना था। वह केवल सम्राट के प्रति उत्तरदायी होती थी। बेकन ने पहली बार 'केबिनेट' शब्द का प्रयोग किया। यद्यपि चार्ल्स प्रथम के समय में ही संसद और सम्राट की शक्तियों के संघर्ष के परिणामस्वरूप, संसद के प्रति मंत्रियों के उत्तरदायित्व के सिद्धांत को चार्ल्स द्वितीय के समय में ही निश्चित रूप प्राप्त हुआ। इसी समय बकिंघम पर महाभियोग लगाया गया और 1679 में डेनबी पर महाभियोग लगाया गया। अभी तक सामूहिक उत्तरदायित्व का विकास नहीं हुआ था। रक्तहीन क्रांति के बाद संसद की सर्वोच्चता का सिद्धांत प्रकाश में आया। इसी बीच राजनीतिक दलों का भी उद्‌भव हो चुका था। फलस्वरूप मंत्रियों की नियुक्ति बहुमत दल के सदस्यों में से की जानी लगी। 1696 में, विलियम तृतीय ने ह्विग दल में से ही अपने परामर्शदाताओं को चुना।

मंत्रिमण्डल का वास्तविक विकास हैनोवर काल में हुआ। इसी समय मंत्रिमण्डल के संगठन एवं कार्यपद्धति में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। जार्ज प्रथम और जार्ज द्वितीय दोनों ही जर्मन थे। अतः अंग्रेजी भाषा का ज्ञान न होने के कारण वे सरकारी कार्यों में कम रुचि लेते थे और मंत्रिमण्डल की बैठकों में भाग भी नहीं लेते थे। सर राबर्ट वालपोल की अध्यक्षता में मंत्रिमंडल की बैठक होने लगी। वालपोल को प्रथम प्रधानमंत्री कहा जा सकता है। उसी ने ही 10, डाउनिंग स्ट्रीट को अपना कार्यालय बनाया जो आज भी प्रधानमंत्री का निवास स्थान है। 1730 में वालपोल ने टाउनसेंड (Townsend) को त्यागपत्र देने के लिए मजबूर किया, क्योंकि वह उसकी नीतियों से सहमत नहीं था। उसने प्रशासनिक नीतियों को निर्धारित किया तथा उन पर संसद का अनुमोदन प्राप्त किया। 1742 में लोकसदन में पराजित हो जाने पर उसने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। समस्त मंत्रिमण्डल ने उसका अनुकरण किया। इस प्रकार सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत की स्थापना हुई।

वालपोल सम्राट के प्रभाव से मुक्त नहीं था। मंत्रिमण्डल उन्नीसवीं शताब्दी में ही निश्चित रूप प्राप्त कर सका। वाल पोल, डिजरैली व ग्लैडस्टोन के समय तक यह चरम उत्कर्ष पर पहुँच चुका था। 1867 में पहली बार बेजहॉट ने अपनी पुस्तक 'ब्रिटिश संविधान में मंत्रिमण्डल के सदस्यों की संख्या में भी वृद्धि हुई। आर्थिक संकटों और युद्धों का मुकाबला करने के लिए राष्ट्रीय तथा संयुक्त सरकारों की स्थापना हो गई। इस बात पर जोर दिया गया कि प्रधानमंत्री लोक सदन का ही सदस्य होना चाहिए, लार्ड सभा का नहीं। लार्ड कर्जन ने लार्ड सभा की सदस्यता को बनाए रखते हुए प्रधानमंत्री के पद से त्यागपत्र दे दिया था। मंत्रिमण्डल के कार्यों में वृद्धि के कारण मंत्रिमण्डलीय समितियों का विकास हुआ। सप्ताह में दो बार मंत्रिमण्डल की बैठक बुलाई जाने लगी। 1937 में एक अधिनियम द्वारा इसे वैधानिक मान्यता (Legal recognition) प्रदान की गई। इसके द्वारा मंत्रियों के वेतन भी निर्धारित किये गए।

मंत्रिमंडलीय व्यवस्था का स्वरूप एवं विशेषताएँ :

मुनरो के शब्दों में, ''मंत्रिमंडल ताज के नाम पर प्रधानमंत्री द्वारा नियुक्त किए गए उन राजकीय परामर्शदाताओं की संस्था का नाम है जिसे लोकसदन में बहुमत का समर्थन प्राप्त हो''। मंत्रिमंडल शासन का केंद्रीय अंग है। यह समस्त ब्रिटिश शासनतंत्र को एकता प्रदान करता है। ग्लैडस्टोन के शब्दों में, ''मंत्रिमण्डल तीन मोड़ वाला वह कब्जा है जो ब्रिटिश संविधान के तीनों अंगों अर्थात् सम्राट, लार्ड सभा तथा लोकसदन में परस्पर संबंध स्थापित करने को प्रवृत्त करता है। धक्का संभालने वाले यंत्र की स्प्रिंग के समान यह भी संपूर्ण भार का वहन स्वयं करता है और इसके भीतर ही उस धक्के के परस्पर विरोधी तत्व लड़–भिड़ कर शांत हो जाते हैं।'' बाह्य रूप में यह केवल एक परामर्शदात्री संस्था है, किंतु व्यवहार में इसे कार्यपालिका की समस्त शक्तियाँ प्राप्त हैं। इसे न केवल कार्यपालिका अपितु व्यवस्थापिका की शक्तियाँ भी प्राप्त हैं। यह विधि निर्माण में सक्रिय भाग लेता है तथा समस्त प्रशासन का संचालन भी करता है। यद्यपि ब्रिटिश अभिसमयों के अनुसार मंत्रिमण्डल अपने समस्त कार्यों तथा त्रुटियों के लिए लोकसदन के प्रति उत्तरदायी होता है, किंतु व्यवहार में मंत्रिमण्डल ही इस पर नियंत्रण रखता है। यदि संसद राजनीति रूपी शरीर का हृदय है, तो मंत्रिमण्डल इसका मस्तिष्क है। ब्रिटिश मंत्रिमण्डलीय शासन पद्धति की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं –

1. **नाममात्र का अध्यक्ष (Nominal Head of the State)** – संसदीय शासन पद्धति में राज्याध्यक्ष नाममात्र का अथवा संवैधानिक अध्यक्ष होता है। ब्रिटिश मंत्रिमंडलीय व्यवस्था में भी, सम्राट को वास्तविक शक्तियाँ प्राप्त नहीं हैं। सम्राट मंत्रिमण्डल का अंग नहीं होता और न ही वह इसकी बैठकों में भाग लेता है। उसे केवल सूचना प्राप्त करने, परामर्श देने, चेतावनी देने तथा प्रोत्साहन देने का अधिकार है।

2. **व्यवस्थापिका व कार्यपालिका में घनिष्ठ संबंध (Co-operation between Legislature and Executive)**– ब्रिटिश मंत्रिमण्डल संसद का अभिन्न अंग है। यह व्यवस्थापिका और कार्यपालिका में पारस्परिक घनिष्ठ

संबंधों का आधार है। बेजहॉट के शब्दों में, ''व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका की एक–दूसरे से स्वतंत्रता अध्यक्षात्मक पद्धति का विशिष्ट लक्षण है और इन दोनों की एक–दूसरे में घनिष्टता मंत्रिमण्डलात्मक पद्धति का विशिष्ट लक्षण है।''

3. **राजनीतिक सजातीयता (Political homogeneity)** – ब्रिटिश मंत्रिमंडलीय व्यवस्था की अन्य विशेषता राजनीतिक एकरसता है। सभी मंत्री प्रायः एक ही राजनीतिक दल तथा समान विचारधारा के होते हैं। मंत्रिमंडल की बैठकों में सभी सदस्य स्वतंत्र रूप से विचार–विमर्श कर सकते हैं, किंतु एक बार निर्णय लिये जाने पर सभी उसका समर्थन करते हैं। लार्ड सेलिसबरी के अनुसार, ''मंत्रिमंडल के सभी निर्णयों के लिए हर वह सदस्य जो त्यागपत्र नहीं देता, पूर्णतः एवं अनिवार्यतः उत्तरदायी होता है।''

मंत्रिमंडल का संगठन व कार्य :

मंत्रिमंडल के संगठन के कार्यों को जानने से पूर्व मंत्रिमण्डल और मंत्रिपरिषद में अंतर समझ लेना आवश्यक है। प्रायः मंत्रिमण्डल तथा मंत्रिपरिषद शब्दों का प्रयोग पर्यायवाची शब्दों के रूप में किया जाता है, लेकिन कार्य, संगठन एवं शक्तियों की दृष्टि से दोनों में बहुत अंतर है। मंत्रिपरिषद एक बड़ी संस्था है; यदि मंत्रिपरिषद को एक बड़ा वृत्त मान लिया जाए तो मंत्रिमण्डल उसके भीतर छोटा वृत्त है। मंत्रिपरिषद में छोटे–बड़े सभी मंत्री सम्मिलित होते हैं, जबकि मंत्रिमंडल में केवल कुछ प्रमुख विभागों के मंत्री ही होते हैं। मंत्रिपरिषद के सदस्यों की संख्या 60 से अधिक ही होती है, जबकि एक आदर्श मंत्रिमंडल के सदस्यों की संख्या 20 के लगभग होती है। मंत्रिमण्डल द्वारा निर्धारित नीति मंत्रिपरिषद द्वारा क्रियान्वित की जाती है। मंत्रिमण्डल की बैठकों की तरह मंत्रिपरिषद की बैठकें नियमित रूप से नहीं होती। प्रत्येक सदस्य मंत्रिपरिषद का सदस्य नहीं होता, किंतु मंत्रिपरिषद का प्रत्येक सदस्य मंत्रिपरिषद का सदस्य भी होता है। मंत्रिमण्डल का सदस्य सामूहिक एवं व्यक्तिगत दोनों प्रकार से उत्तरदायी होता है। मंत्रिमंडल के त्यागपत्र के साथ–साथ मंत्रिपरिषद को भी त्यागपत्र देना पड़ता है। रेम्जे म्योर के शब्दों में मंत्रिमंडल की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है, ''यह मंत्रिपरिषद का हृदय है, शासन का परिचालक यंत्र है जिसमें सभी महत्वपूर्ण विभागों के राजनीतिक अध्यक्ष सम्मलित होते हैं; साथ ही कुछ प्राचीन तथा प्रतिष्ठित पदों के अधिकारी भी।'' ब्रिटेन में मंत्रियों की चार प्रमुख श्रेणियाँ होती हैं –

1. इसमें कुछ विभागाध्यक्ष होते हैं जैसे विदेश मंत्री, गृह मंत्री, वित्त मंत्री, सुरक्षा मंत्री इत्यादि।
2. इसमें कुछ मंत्री विभाग रहित होते हैं। ये प्रायः वयोवृद्ध, अनुभवी और प्रभावशाली व्यक्ति होते हैं। लार्ड चांसलर, लार्ड प्रेसिडेंट इत्यादि इस श्रेणी में आते हैं।
3. इसके अतिरिक्त कुछ संसदीय सचिव और उप–सचिव भी होते हैं जो कि विभागीय अध्यक्षों की सहायता करते हैं।
4. राजमहल के अधिकारी भी मंत्रिपरिषद के सदस्य होते हैं जैसे कोषाध्यक्ष, नियंत्रक इत्यादि।

इस संयुक्त मंत्रिपरिषद के अतिरिक्त एक 'आंतरिक मंत्रिमण्डल' भी होता है। प्रधानमंत्री सभी मंत्रियों से विचार–विमर्श नहीं कर पाता। वह देश की सर्वोच्च नीतियों और समस्याओं पर कुछ विश्वस्त एवं सहयोगी मंत्रियों से ही अनौपचारिक रूप में विचार–विमर्श करता है। इसी प्रकार युद्ध या विपत्ति के समय कुछ मंत्रियों की एक छोटी–सी समिति बना दी जाती है जिसे 'युद्ध मंत्रिमंडल कहते हैं। ये मंत्रिगण अपना सारा समय युद्धकालीन राजनीतिक, आर्थिक तथा सैनिक समस्याओं को दे सकते हैं। ये शीघ्रतापूर्वक निर्णय भी ले सकते हैं। 1940 में चर्चिल ने पाँच मंत्रियों को लेकर युद्ध मंत्रिमण्डल बनाया। इस प्रकार के मंत्रिमण्डल अल्पकालीन होते हैं तथा युद्ध के समाप्त होने पर ये भी समाप्त हो जाते हैं। कभी–कभी किसी एक विशेष दल को लोकसदन में बहुमत प्राप्त न होने की स्थिति में कई दलों की मिली–जुली सरकार बनाई जाती है जिसे संयुक्त सरकार कहते हैं। 1931 के

आर्थिक संकट तथा द्वितीय विश्व युद्ध के समय ब्रिटेन में इस प्रकार की सरकारें बनी थीं।

छाया मंत्रिमंडल, ब्रिटिश मंत्रिमंडल के असाधारण रूपों में से एक है। ब्रिटिश राजनीतिक प्रणाली के अंतर्गत सरकारी तथा विरोधी, दोनों दलों को समान रूप से अस्तित्व प्रदान किया गया है। विरोधी दल को 'महामहिम के प्रतिपक्षी दल' के रूप में मान्यता प्राप्त है। सत्तारूढ़ दल की भाँति विरोधी दल का भी अपना संगठन होता है। परिणामस्वरूप, विरोधी दल सदैव शासन का भार संभालने को तैयार रहता है। विरोधी दल का भी एक मंत्रिमण्डल होता है जिसमें विभिन्न सदस्यों को अलग–अलग विभाग दिए जाते हैं। विरोधी दल का एक नेता होता है जिसे 1937 के 'ताज मंत्री अधिनियम' के अंतर्गत प्रतिवर्ष 15,000 पौंड की अतिरिक्त राशि दी जाती है, ताकि वह प्रभावशाली भूमिका निभा सके।

ब्रिटिश मंत्रिमंडल के कार्य (Function of British Cabinet) :

शासन का केन्द्र–बिन्दु होने के कारण मंत्रिमण्डल के अनेक कार्य होते हैं। यह शासन का प्रमुख यंत्र है। इसके मुख्य कार्य इस प्रकार हैं –

1. **कार्यपालिका संबंधी कार्य** – मंत्रिमण्डल को देश की सर्वोच्च कार्यपालिका माना जा सकता है। इसका प्रमुख कार्य विदेश तथा गृह नीति का निर्माण करना है। नीतियों का निर्माण करते समय मंत्रिमण्डल को देश की सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों तथा जनता के हितों का ध्यान रखना पड़ता है। नीतियों को तैयार करना तथा उन पर संसद का अनुमोदन प्राप्त करना इसका सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य है। इसके अतिरिक्त यह विभिन्न प्रशासनिक विभागों पर भी नियंत्रण रखता है। विभागीय नीतियों के लिए यह संसद के लोक सदन के प्रति उत्तरदायी होता है। प्रदत्त विधान के फलस्वरूप मंत्रिमण्डल की शक्तियों में अपार वृद्धि हुई है। प्रदत्त विधान के अंतर्गत संसद विभिन्न विधेयकों की रूपरेखा मात्र तैयार करती है। मंत्रिमण्डल इस रूपरेखा के अंतर्गत अनेक नियम और उपनियम बना सकता है। साथ ही इसे नियुक्ति संबंधी व्यापक शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। यह राजदूतों, उपनिवेशों के राज्यपालों, इत्यादि की नियुक्ति पर भी विचार करता है।

2. **व्यवस्थापिका संबंधी कार्य** – बेजहॉट के अनुसार, ''मंत्रिमंडल राज्य के विधाई भाग को कार्यपालिका से जोड़ने वाला बकसुआ है।'' संसद का अधिवेशन बुलाना, उसे भंग करना, इत्यादि कार्य मंत्रिमण्डल के ही हैं। समस्त सरकारी विधेयक मंत्रिमण्डल द्वारा ही प्रस्तुत किये जाते हैं। जब तक मंत्रिमण्डल का संसद में बहुमत होता है, तब तक इसके द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव संसद में आसानी से पास हो जाते हैं। यह कहना गलत न होगा कि आजकल मंत्रिमण्डल ही संसद की सहमति से विधि–निर्माण करता है। मंत्रिमण्डल संसद में होने वाले वाद–विवाद के द्वारा देश के सम्मुख अपनी नीतियों को प्रतिपादित करता है। संसद के सामने सरकारी नीति प्रस्तुत करना, प्रश्नों के उत्तर देना तथा आवश्यक कानूनों का निर्माण करना मंत्रिमण्डल के ही कार्य हैं। संसद की अवधि में कमी अथवा वृद्धि करने, अधिवेशन बुलाने अथवा भंग करने इत्यादि के पीछे मंत्रिमण्डल का ही हाथ होता है।

3. **वित्त संबंधी कार्य** – लॉर्ड चांसलर के परामर्श से ताज द्वारा महत्त्वपूर्ण न्यायाधीशों की नियुक्ति की जाती है। सम्राट क्षमा प्रदान करने, दण्ड को कम करने अथवा स्थगित करने जैसे परमाधिकार का प्रयोग गृहमंत्री के परामर्श से ही करता है। पिछले 50–60 वर्षों में मंत्रिमण्डल की शक्तियों में अपार वृद्धि हुई है। इसे ब्रिटिश शासन प्रणाली का केंद्र बिंदु माना जा सकता है। मंत्रिमण्डल उस दल के नाम पर समस्त शासन का संचालन करता है जिसे लोक सदन में बहुमत प्राप्त हुआ हो। संसद में बहुमत होने के कारण, मंत्रिमण्डल को कानूनी दृष्टि से संप्रभु संसद का सहयोग सहज ही मिल जाता है।

मंत्रिमण्डलीय समितियाँ व सचिवालय (Cabinet Committees and Secretariat) :

मंत्रिमण्डल का काम इतना बढ़ गया है कि उसे सहायता के लिए अनेक समितियों की नियुक्ति करनी पड़ती है। मंत्रिमण्डल कुछ स्थायी और तदर्थ समितियों का गठन करता है। किसी भी महत्वपूर्ण निर्णय को लेने से पूर्व मंत्रिमण्डल उस विषय को किसी एक समिति के विचारार्थ भेज देता है। प्रतिरक्षा समिति, नागरिक प्रतिरक्षा समिति, आर्थिक नीति समिति, उत्पादन समिति, नागरिक सेवा समिति, नागरिक उड्डयन समिति इत्यादि इसकी मुख्य समितियाँ हैं। प्रथम विश्वयुद्ध के समय मंत्रिमण्डलीय सचिवालय की स्थापना की गई थी। इस सचिवालय के कार्यों में बैठकों के लिए कार्य सूची तैयार करना, सदस्यों को सूचित करना, समितियों के निर्णयों को लिपिबद्ध करना और प्रतिवेदन तैयार करना इत्यादि प्रमुख हैं।

मंत्रिमण्डल का अधिनायकत्व (Dictatorship of the Cabinet) :

बीसवीं शताब्दी को मंत्रिमण्डलीय अधिनायकत्व का युग कहा जा सकता है। इससे पूर्व उन्नीसवीं शताब्दी तक मंत्रिमण्डलीय संसद के अधीन रहकर कार्य करता था। वैधानिक दृष्टि से ब्रिटिश संसद को सर्वोच्च शक्ति प्राप्त थी और यथार्थ में भी वह सर्वोच्च सत्ताधारी थी, किंतु दलीय अनुशासन, प्रदत्त विधि–निर्माण, प्रशासकीय न्याय, मंत्रिमंडलीय उत्तरदायित्व इत्यादि सिद्धांतों के कारण मंत्रिमण्डल बहुत अधिक शक्तिशाली हो गया है। अब मंत्रिमण्डल ही लोक सदन पर नियंत्रण रखता है। यही कारण है कि 1895 के बाद से किसी भी सरकार के प्रति अविश्वास प्रस्ताव पास नहीं किया गया। सैद्धांतिक दृष्टिकोण से संसद के अधीन होने पर भी व्यवहार में मंत्रिमण्डल संसद का स्वामी है। रेम्जे म्योर के अनुसार, एक निकाय जो इतनी अधिक शक्तियों का प्रयोग करता है, उसे सर्वशक्तिमान ही कहा जायेगा चाहे व्यवहार में वह अपनी सत्ता के प्रयोग में कठिनाई ही क्यों न अनुभव करे। इसीलिए आज हम 'मंत्रिमण्डलीय अधिनायकत्व' की चर्चा करने लगे हैं।

1. 'मंत्रिमण्डलीय अधिनायकत्व' को संवैधानिक अधिनायकत्व कहना अधिक उपयुक्त है। वैब्स्टर के अनुसार अधिनायक वह है, ''जो सरकार की शक्तियों का, विशेषकर गणतंत्र में, असीमित रूप से प्रयोग करे।'' इस दृष्टिकोण से ब्रिटेन के मंत्रिमण्डल को संवैधानिक तानाशाह की संज्ञा दी जा सकती है। इसके अधिकारी संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त होते हैं तथा वे संवैधानिक उपायों से ही प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हैं, स्वेच्छापूर्वक नहीं। कीथ के शब्दों में, ''संसद के प्रति मंत्रिमण्डल की स्थिति तानाशाह की है।'' कार्यपालिका संबंधी कार्यों के अतिरिक्त मंत्रिमण्डल अनेक प्रकार के प्रशासकीय, वित्तीय, न्यायिक और विधायी कार्यों को भी संपादित करता है। इसके अतिरिक्त संसद के साथ मंत्रिमण्डल के संबंधों के आधार पर भी इसे अधिनायक सिद्ध किया जा सकता है। मुनरों का कथन है कि, ''लोकसभा मंत्रिमण्डल की इच्छा तथा नेतृत्व के अनुसार कार्य करती है।'' पिछली दो पीढ़ियों की अपेक्षा अब मंत्रिमण्डलीय अधिनायकत्व अधिक कठोर है। संवैधानिक दृष्टि से मंत्रिमण्डल आज भी संसद के प्रति उत्तरदायी है, किंतु व्यवहार में यह उत्तरदायित्व प्रभावपूर्ण नहीं है। इसी प्रकार निर्वाचक मण्डल के साथ मंत्रिमण्डल के संबंध भी मंत्रिमण्डलीय अधिनायकत्व की पुष्टि करते हैं। सत्तारूढ़ होने पर भी मंत्रिमण्डल जनता को दिए गए आश्वासनों को भुला भी सकता है। कीथ के शब्दों में, ''यदि हम इसे एक पूर्वोदाहरण मानें तो कोई भी सरकार एक बार सत्तारूढ़ होने पर अपना यह अधिकार समझ सकती है कि निर्वाचन के समय दिए गए वचनों को भूल जाए।'' जनता केवल हाँ अथवा नही ं के रूप में राजनीतिक दलों द्वारा प्रस्तावित नीतियों और कार्यक्रमों पर मत दे सकती है और बहुमत के बल पर मंत्रिमण्डल सदन में कई बार अवांछित प्रस्ताव भी पास करा सकता है। जैनिंग्स के शब्दों में, ''जिस सरकार की पीठ पर प्रबल बहुमत का हाथ हो, वह अल्पकाल के लिए अधिनायकत्व स्थापित कर लेती है।'' निर्वाचकों की संख्या में वृद्धि हो जाने के कारण एक स्वतंत्र प्रत्याशी के लिए जन–संपर्क स्थापित करना कोई सरल कार्य नहीं है। इसके लिए व्यापक दलीय संगठन की आवश्यकता पड़ती है। आधुनिक काल में, एक मतदाता

अपने प्रतिनिधियों को उनके नेताओं के नाम पर चुनता है। अतः सदस्यों को अपने नेताओं के आदेशों का पालन करना पड़ता है। लास्की के मतानुसार, ''अब संपूर्ण दलीय पद्धति का व्यावसायीकरण हो गया है और कार्यों के क्षेत्र में वृद्धि हो जाने के कारण, राजनीतिक दल सेना के समान कठोर अनुशासन रखने के लिए विवश है।''

2. **सामूहिक उत्तरदायित्व (Collective Responsibility)** – मंत्रिमण्डल को अधिनायकत्व प्रदान करने में सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत का भी हाथ है। सभी मंत्रिगण एक टीम की भाँति काम करते हैं तथा सामूहिक रूप से लोक सदन के प्रति उत्तरदायी होते हैं। संसद में किसी एक मंत्री के प्रति अविश्वास समस्त मंत्रिमण्डल द्वारा त्यागपत्र का कारण बन सकता है। अतः मंत्रिमण्डल को दृढ़पूर्वक काम करना पड़ता है। अमेरिका में सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत का अभाव है। अतः अमेरिकी मंत्रिमण्डल को ब्रिटिश मंत्रिमण्डल के समान शक्तियाँ प्राप्त नहीं हैं और न ही वह व्यवस्थापिका पर उतना नियंत्रण रख सकता है।

3. **प्रदत्त व्यवस्थापन (Delegated Legislation)** – राज्य के कार्यों में वृद्धि के कारण संसद को प्रतिवर्ष एक बड़ी मात्रा में कानूनों का निर्माण करना पड़ता है। समयाभाव तथा कानूनों की जटिलताओं के कारण वह विधि निर्माण की शक्ति कार्यपालिका को दे देती है और स्वयं केवल विधेयकों की रूपरेखा मात्र तैयार करती है। इसका प्रयोग मंत्रिमण्डल 'सपरिषद्–आज्ञा' द्वारा करता है। प्रतिवर्ष सहस्रों की संख्या में ऐसे प्रशासकीय आदेश जारी किए जाते हैं। अतः विधि–निर्माण के क्षेत्र में मंत्रिमण्डल को व्यापक शक्तियाँ प्राप्त हो गई हैं।

4. **प्रशासकीय न्याय (Administrative Justice)** – प्रशासकीय न्याय के विकास ने भी मंत्रिमण्डल की शक्तियों में वृद्धि की है। कुछ विषयों में अपने विभाग से संबंधित अभियोगों के निर्णय का अधिकार विभिन्न मंत्रालयों को दे दिया गया है। 1913 में पारित 'मार्ग यातायात अधिनियम' के अनुसार यातायात तथा परिवहन मंत्री को किराये की मोटर–गाड़ी चलाने के लाइसेंस की अस्वीकृति की अपील सुनने का अधिकार है। प्रशासकीय न्यायाधिकरणों को सामान्य न्यायपालिका की कार्य–पद्धति के अनुसार काम करना आवश्यक नहीं है। इनसे केवल प्राकृतिक नियमों का पालन अपेक्षित है। न्यायिक शक्तियों के कारण मंत्रिमण्डल के सम्मान और प्रभाव में भी वृद्धि हुई है।

5. **संसद को विघटित करने की शक्ति (Power to Dissolve the House)** मंत्रिमण्डल को लोक सदन विघटित करने की महत्वपूर्ण शक्ति प्राप्त है। ब्रिटिश शासन पद्धति में मंत्रिमण्डल के विरूद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित होने पर उसे तत्काल त्यागपत्र देने की आवश्यकता नहीं है। प्रधानमंत्री सम्राट से लोक सदन को भंग करने की मांग कर सकता है। ब्रिटिश अभिसमयों के आधार पर सम्राट इसको ठुकरा नहीं सकता। इस प्रकार मंत्रिमण्डल को एक ब्रह्मास्त्र प्राप्त है। कीथ के मतानुसार, ''दल के प्रति निष्ठा के अतिरिक्त मंत्रिमण्डल के पास अपने अनुयायियों के अतिरिक्त, किसी सीमा तक विरोधी दल के ऊपर प्रभाव डालने के लिए संसद का विघटन कर सकने का एक शक्तिशाली अस्त्र है। दूसरे शब्दों में, उसे अपने निर्माताओं को ही नष्ट करने का अधिकार प्राप्त है।'' फाइनर ने भी कहा है कि, ''लोकसभा का कुछ रचनात्मक उत्साह मंत्रिमण्डल द्वारा उसे भंग करने की धमकी से नष्ट हो जाता है।'' मंत्रिमण्डल इस शक्ति का प्रयोग गंभीर स्थिति में ही करता है क्योंकि नए चुनाव में उसकी सफलता तत्कालीन राजनीतिक स्थिति, दल की आर्थिक स्थिति तथा संगठन की दृढ़ता पर निर्भर करती है।

6. **संसदीय जीवन स्तर (Conditions of Parliamentary life)** – ब्रिटिश संसदीय जीवन स्तर भी मंत्रिमण्डल पर प्रभावशाली नियंत्रण रखने में असफल सिद्ध हुआ है। मंत्रिमण्डल संसद के सत्रकालों में ही उसके प्रति उत्तरदायी होता है। लगभग छह मास तथा उससे अधिक समय तक संसद का कोई अधिवेशन नहीं होता। इस अवकाश काल में समाचारपत्रों से प्राप्त सूचना के अतिरिक्त जनता को शासकों की गतिविधियों की कोई

जानकारी नहीं होती। संसद के सदस्यों को अनेक निजी काम होते हैं और वे संसदीय कार्यों को पर्याप्त समय नहीं दे पाते। सिडनी लॉ के शब्दों में, ''लोक सदन के सदस्य विभिन्न प्रकार से व्यस्त रहते हैं। लंदन के छोटे से अधिवेशन में उनकी अभिरुचि की बहुत सी चीजें रहती हैं। यद्यपि उनकी इच्छा उचित रूप से राजनीतिक कार्य करने की होती है, फिर भी परिस्थितियाँ उनके विरूद्ध होती हैं। आधा सदन कार्यरत रहता है तथा आधा आमोद–प्रमोद में व्यस्त।'' परंतु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि सदन के अधिकांश सदस्य विभिन्न समितियों में भाग लेकर पूरा साल काम करते रहते हैं।

ब्रिटिश प्रजातंत्र में शक्ति जन–प्रतिनिधियों के हाथ से निकल कर मंत्रिमण्डल के हाथ में पहुँच गई है। इस विपर्यय को ही मंत्रिमण्डलीय अधिनायकत्व कहा जाता है। लास्की, लॉवेल, एमरी आदि विचारकों ने मंत्रिमण्डलीय अधिनायकत्व को अल्पकालीन अधिनायकत्व माना है। यह कभी भी जन–भावना की अपेक्षा नहीं कर सकता। लॉवेल के शब्दों में, ''मंत्रिमण्डलीय निरंकुशता वह निरंकुशता है जिसे अधिकतम प्रचार के साथ प्रयोग में लाया जाता है, जो सदैव आलोचना की कसौटी पर कसी रहती है और जनमत के अनुकूल ढलती है तथा जिसे अविश्वास प्रस्ताव और आगामी चुनाव का खतरा सदैव बना रहता है।''

पिछले कुछ वर्षों में विश्व युद्ध, आर्थिक संकट तथा लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणों इत्यादि के कारण कार्यपालिका की शक्तियों में अपार वृद्धि हुई है। न केवल ब्रिटिश मंत्रिमण्डल अपितु अमेरिका के राष्ट्रपति, स्विस संघीय परिषद इत्यादि की शक्तियों में भी वृद्धि हुई है। लास्की ने ब्रिटिश मंत्रिमण्डल की कार्य–पद्धति का समर्थन किया है। उसके मतानुसार प्रत्येक मंत्री के निर्णयों के पीछे संपूर्ण मंत्रिमण्डल की सत्ता होती है। मंत्रिमण्डलीय बैठकों में मंत्रियों को अपने विचार रखने की पूर्ण स्वतंत्रता होती है। विवादास्पद विषयों पर मंत्रिमण्डल के सभी सदस्य विचार–विमर्श करते हैं। संसद की अपेक्षा मंत्रिमण्डल प्रशासन पर अधिक कुशलतापूर्वक नियंत्रण रख सकता है। विशेषज्ञों का समूह न होने के कारण मंत्रिमण्डल प्रशासन पर अधिक कुशलतापूर्वक नियंत्रण रख सकता है। विशेषज्ञों का समूह न होने के कारण मंत्रिमण्डल राजनीतिक समस्याओं पर ही विचार कर सकता है। उसका कार्य तत्कालीन समस्याओं का उचित समाधान ढूंढना है।

किसी भी मंत्रिमण्डल के लिए लोकमत की उपेक्षा करना संभव नहीं है चाहे वह कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो। 1936 में सेमुअर होर को अबीसीनिया संबंधी नीति पर लोकमत के प्रबल विरोध के कारण ही त्यागपत्र देना पड़ा था। इसी प्रकार प्रधानमंत्री ईडन को स्वेज नहर की नीति पर जनता द्वारा तीव्र निंदा का सामना करना पड़ा तथा अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ा। संसदीय अभिसमयों, अविश्वास प्रस्तावों तथा सदन में वाद–विवादों द्वारा मंत्रिमण्डल को अधिनायकवादी होने से रोका जा सकता है। इस प्रकार कोई शासक अपने साथियों की प्रतिक्रियाओं की अवहेलना भी नहीं कर सकता। विरोधी दल का अस्तित्व भी मंत्रिमण्डल की शक्तियों पर अंकुश रखता है। उदाहरणार्थ, 1963 के 'कीलर–प्रोफयूमों कांड' में अपयश प्राप्त होने के कारण तत्कालीन रक्षामंत्री को त्यागपत्र देना पड़ा था।

ब्रिटिश मंत्रिमण्डल जनता के प्रतिनिधियों द्वारा निर्वाचित न होकर प्रधानमंत्री के परामर्श पर सम्राट द्वारा नियुक्त होता है। अतः शासन संचालन में ब्रिटिश मंत्रिमण्डल संसद का अनुसरण न करके उसका नेतृत्व करता है। ब्रिटिश शासन पद्धति में लोकतंत्र का अर्थ है कि शासन संसद की सहमति से किया जाए न कि स्वयं संसद द्वारा। संसद का कार्य केवल नियंत्रण रखना है। शासन का संचालन जनहित में होना चाहिए। जिन देशों में लोकतंत्र को शासन की अपेक्षा प्राथमिकता दी जाती है वहाँ मंत्रिमण्डल कमजोर तथा अस्थायी होते हैं। फाइनर के शब्दों में, ''ब्रिटिश मंत्रिमण्डलीय व्यवस्था शीघ्रगामी, गतिशील, विवेकी एवं उत्तरदायी नेतृत्व प्रदान करती है। इस पर नियंत्रण रखा जा सकता है, परंतु इसका दमन संभव नहीं है। इससे प्रश्न किए जा सकते हैं, परंतु इसका अविश्वास नहीं किया जा सकता। राजनीतिक द्वेष होते हुए भी इसके सदस्यों में व्यक्तिगत ईर्ष्या नहीं होती। इस पर उत्तरदायित्व की शक्ति, इसकी संस्थाओं एवं अनुमतियों द्वारा नियंत्रण रखा जा सकता है।'' मंत्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व का सही

अर्थ है कि यदि मंत्रिमण्डल की नीतियों से संसद अथवा जनता सहमत नहीं हो तो उसे त्यागपत्र दे देना चाहिए। जब तक इसे संसद व जनता का विश्वास प्राप्त है तब तक इसे संसद को नेतृत्व करते रहना चाहिए। मंत्रिमण्डलीय उत्तरदायित्व को अच्छी प्रकार समझ लेने पर ब्रिटिश मंत्रिमण्डल पर अधिनायकत्व का आरोप निराधार सिद्ध होता है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. ब्रिटेन की नाममात्र की कार्यपालिका का नाम लिखिए।
2. ब्रिटेन में सम्राट एवं ताज के मध्य अंतर स्पष्ट कीजिए।
3. ब्रिटेन की वास्तविक कार्यपालिका क्या है?
4. 'ब्रिटिश सम्राट कोई गलती नहीं करता' इस वाक्य से आपका क्या अभिप्रायः है?

4.3 संयुक्त राज्य अमेरिका की मुख्य कार्यपालिका

संयुक्त राज्य अमेरिका की मुख्य कार्यपालिका के तहत राष्ट्रपति एवं उसका मन्त्रिमण्डल आता है जिसका वर्णन निम्नलिखित है –

4.3.1 राष्ट्रपति

संयुक्त राज्य अमेरिका का राष्ट्रपति, विश्व का सर्वाधिक प्रभावशाली राजनीतिक व्यक्तित्व माना जाता है। डब्ल्यू ए0 मूनरो के शब्दों में– ''अब तक एक लोकतंत्र में किसी भी व्यक्ति ने इतनी अधिक सत्ता का प्रयोग नहीं किया, जितना कि अमेरिका का राष्ट्रपति करता है।''

अमेरिकी संविधान में राष्ट्रपति का उल्लेख अनुच्छेद–2 में एक छोटे से वाक्य में किया गया है कि ''अमेरिकी संघ की कार्यपालिका शक्ति एक राष्ट्रपति में निहित होगी।'' इस वाक्य से राष्ट्रपति की पदस्थिति तथा शक्तियाँ पूर्णतया स्पष्ट नहीं होती हैं क्योंकि संविधान निर्माताओं के मनोमस्तिष्क में राष्ट्रपति को अत्यधिक शक्तिशाली बनाने की इच्छा नहीं थी लेकिन कालांतर में अमेरिकी राष्ट्रपति सशक्त होता चला गया।

योग्यताएँ :

संविधान के अनुच्छेद–2(1) के अनुसार राष्ट्रपति पद के लिए वही व्यक्ति पात्र होगा जो –

1. संयुक्त राज्य अमेरिका का जन्मजात नागरिक हो;
2. 35 वर्ष की आयु पूर्ण कर चुका हो,
3. संयुक्त राज्य अमेरिका का कम से कम 14 वर्ष निवासी रहा हो। (निरंतर 14 वर्ष निवास करना आवश्यक नहीं है।)

लार्ड ब्राइस के अनुसार ''व्यावहारिक रूप में अमेरिका राष्ट्रपति पद का उम्मीदवार कोई ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो सार्वजनिक जीवन में किसी क्षेत्र में विशेष कार्य के लिए प्रसिद्ध रहा हो। कांग्रेस का सदस्य, किसी राज्य का गवर्नर, किसी बड़े नगर का मेयर, राजदूत, न्यायाधीश या असाधारण रूप से प्रसिद्ध पत्रकार हो सकता है।'' सामान्यतः महत्वपूर्ण तथा घनी आबादी वाले राज्य का व्यक्ति, राष्ट्रपति पद तक पहुँचता रहा है।

कार्यकाल :

अमेरिकी राष्ट्रपति का कार्यकाल चार वर्ष निर्धारित है तथा एक व्यक्ति अधिकतम दो बार राष्ट्रपति रह सकता है। प्रारंभिक दिनों में लोकप्रिय राष्ट्रपति जैफरसन, जेम्स मेडिसन तथा जेम्स मुनरो ने तीसरा कार्यकाल पसंद नहीं किया था, लेकिन फ्रैंकलिन डी0 रूजवेल्ट लगातार चार बार निर्वाचित हुए थे। सन् 1951 में पारित 22वें संविधान संशोधन

के द्वारा किसी व्यक्ति के दो बार से अधिक राष्ट्रपति चुने जाने पर प्रतिबंध लगा दिया गया है। यदि कोई उपराष्ट्रपति, आपात परिस्थितियों में राष्ट्रपति पद ग्रहण करता है तो वह अधिकतम 10 वर्ष का कार्यकाल ही पूरा कर सकता है।

निर्वाचन

अमेरिकी संविधान में कहा गया था कि राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति का निर्वाचन करने के लिए प्रत्येक राज्य अपनी विधायिका के आदेशानुसार निर्वाचक चुनें, जिनकी संख्या उस राज्य की सीनेट तथा प्रतिनिधि सभा के प्रतिनिधियों के बराबर हो। समय आने पर ये निर्वाचक अपने–अपने राज्य में एक स्थान पर एकत्र हों तथा लिखित रूप में अपने मत दो व्यक्तियों को दें, जिसमें से कम से कम एक उस राज्य का निवासी न हो, जिस राज्य की ओर से वे निर्वाचक नियुक्त किए गए हैं। इसके पश्चात् मतों को एक पेटी में मुहर लगा कर सीनेट के अध्यक्ष के पास भेज दिया जाए जो कांग्रेस के दोनों सदनों की उपस्थिति में मतों को गिनकर परिणाम की घोषणा करे। जिस व्यक्ति को सर्वाधिक मत मिलें तथा मतों का पूर्ण बहुमत भी मिले वह राष्ट्रपति तथा उससे कम मतों तथा उसी प्रकार के बहुमत वाला व्यक्ति उपराष्ट्रपति निर्वाचित होगा।

संविधान में वर्णित यह निर्वाचन–पद्धति अब परिवर्तित हो चुकी है। सन् 1800 में राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति को निर्वाचक मंडलों से 73–73 मत मिले थे। अतः 12वें संविधान संशोधन (1804) द्वारा राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति का निर्वाचन पृथक होने लगा है। इसी प्रकार 23वें संविधान संशोधन (1961) के द्वारा कोलम्बिया जिले (राजधानी क्षेत्र) से भी निर्वाचक मंडल में 3 सदस्य लिये जाने का प्रावधान है। वर्तमान में राष्ट्रपति चुनाव प्रक्रिया यह है –

1. सर्वप्रथम राजनीतिक दल अपने उन उम्मीदवारों का निर्धारण करते हैं जिन्हें राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति का चुनाव लड़ना होता है। इस हेतु पार्टी के सभा–सम्मेलनों में पर्याप्त भाषणबाजी, गुटबाजी तथा मतदान प्रक्रिया अपनाई जाती है। सामान्यतः राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति देश के पृथक–पृथक हिस्सों से लिए जाते हैं। यह एक परंपरा बन चुकी है।
2. उम्मीदवारों द्वारा चुनाव प्रचार तथा संबंधित पार्टी द्वारा मतदाताओं को लुभाया जाता है।
3. राष्ट्रपति एवं उपराष्ट्रपति का चुनाव प्रत्यक्ष न होकर निर्वाचक मंडल द्वारा होता है। इस मंडल में 538 सदस्य चुने जाते हैं। यह संख्या राज्यों से चुना जाने वाले सीनेटरों तथा प्रतिनिधि सभा के सदस्यों के बराबर होती है। पहले अमेरिकी राष्ट्रपति 4 मार्च को शपथ ग्रहण करते थे किंतु 20वें संविधान संशोधन (1933) के पश्चात् अब 20 जनवरी को नवनिर्वाचित राष्ट्रपति पद ग्रहण करता है। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के सम्मुख यह शपथ ली जाती है –

   ''मैं गम्भीरतापूर्वक शपथ लेता हूँ कि अमेरिका के राष्ट्रपति पद पर निष्ठापूर्वक कार्य करूँगा और अपनी योग्यतानुसार अमेरिका के संविधान का संरक्षण एवं प्रतिरक्षण करूँगा।''

वेतन, भत्ते एवं उन्मुक्तियाँ :

राष्ट्रपति के वेतन, भत्तों, निःशुल्क सरकारी आवास तथा अन्य सुविधाओं का निर्धारण कांग्रेस द्वारा किया जाता है। कार्यपालिका प्रधान के रूप में राष्ट्रपति को अनेक उन्मुक्तियाँ (छूट) प्राप्त होती हैं। यद्यपि संविधान में इनका वर्णन नहीं है तथापि परंपरा के रूप में इनका पालन अवश्य होता है। राष्ट्रपति को गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है और न ही उनके विरूद्ध परमादेश जारी किया जा सकता है। सामान्यतः किसी अदालत में आकर साक्ष्य देने के क्रम में राष्ट्रपति को छूट प्राप्त है। महाभियोग के समय सीनेट में बुलाया जा सकता है।

पदमुक्ति :

राष्ट्रपति अपनी इच्छा से पद त्याग सकते हैं अथवा उन्हें महाभियोग द्वारा हटाया जा सकता है। संविधान के अनुच्छेद 2(4) के अनुसार राष्ट्रपति को देशद्रोह, भ्रष्टाचार या अन्य गंभीर अपराध के मामलों में राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाया जा सकता है। प्रतिनिधि सभा का कोई सदस्य या कुछ सदस्य राष्ट्रपति के विरूद्ध उपयुक्त आधार पर आरोप लगा सकते हैं जिनका न्यायिक या विशेष जाँच समिति द्वारा परीक्षण किया जाता है। जाँच समिति के प्रतिविदेन के पश्चात् यदि प्रतिनिधि सभा आवश्यक समझे तो एक प्रस्ताव बहुमत द्वारा पारित करती है तथा आरोप पत्र राष्ट्रपति को भेजा जाता है। इस प्रस्ताव पर सीनेट जांच हेतु न्यायालय के रूप में बैठती है तथा सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश बैठक की अध्यक्षता करता है। प्रतिनिधि सभा का एक सदस्य सीनेट को समस्त जानकारी (प्रस्ताव) प्रदान करता है। राष्ट्रपति स्वयं उपस्थित होकर या उनका वकील बचाव करता है। यदि सीनेट दो तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पारित कर दे तो राष्ट्रपति को पद त्यागना पड़ता है। अमेरिकी इतिहास में सर्वप्रथम 1867 में राष्ट्रपति एन्ड्रयू जॉनसन के विरूद्ध महाभियोग प्रस्ताव मात्र एक वोट से गिर गया था जबकि 1974 में तत्कालीन राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन ने बहुचर्चित वाटरगेट कांड के कारण बनी प्रतिनिधि सभा की न्यायिक समिति की सिफारिश आते ही त्यागपत्र दे दिया था क्योंकि महाभियोग प्रस्ताव आने वाला था। तीसरी स्थिति सन् 1998 में राष्ट्रपति बिल क्लिंटन के सम्मुख आयी थी जबकि व्हाईट हाउस में कार्य करने वाली कर्मचारी मोनिका लेविंस्की ने राष्ट्रपति पर यौन शोषण का आरोप लगाया था। शुरु में राष्ट्रपति ने शपथ लेकर आरोपों को झुठला दिया था लेकिन लेविंस्की द्वारा प्रस्तुत प्रमाणों (वस्त्र, टेप इत्यादि) से यह सिद्ध हो गया था कि बिल क्लिंटन तथा मोनिका लेविंस्की के मध्य अवैध शारीरिक संबंध थे। कांग्रेस द्वारा स्वतंत्र वकील केनेथ स्टार द्वारा करवाई गई जांच से आरोप सही सिद्ध हुए किंतु अधिसंख्य अमेरिकी इसे महाभियोग लायक अपराध नहीं मानते थे। राष्ट्रपति ने इस कृत्य के लिए अपने परिवार एवं राष्ट्र से क्षमायाचना की तथा महाभियोग प्रस्ताव सीनेट में पारित न हो सका।

राष्ट्रपति की मृत्यु, त्यागपत्र या हटाये जाने के पश्चात् उपराष्ट्रपति को राष्ट्रपति पद धारण करना होता है। सन् 1967 में पारित 25वें संविधान संशोधन से पूर्व उपराष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रपति पद ग्रहण कर लेने पर उपराष्ट्रपति का पद रिक्त रहता था, किंतु इस संशोधन में यह व्यवस्था की गई कि उपराष्ट्रपति का पद, राष्ट्रपति द्वारा नामजद व्यक्ति द्वारा भरा जाएगा, यदि कांग्रेस के दोनों सदन उसे स्वीकृति दे दें। सन् 1973 में उपराष्ट्रपति स्पाइसे टी0 एग्नू द्वारा त्याग पत्र देने पर राष्ट्रपति रिचर्ड एम0 निक्सन ने गेराल्ड आर. फोर्ड को उपराष्ट्रपति नामजद कर दिया जिसे कांग्रेस ने भी स्वीकृति दे दी। अगले ही वर्ष राष्ट्रपति निक्सन ने वाटरगेट कांड के कारण त्यागपत्र दे दिया तथा फोर्ड अमेरिका के राष्ट्रपति बन गए। बिना निर्वाचन के राष्ट्रपति बनने का यह विचित्र उदाहरण है जिसे अमेरिकी व्यवस्था ने सहजता से स्वीकार भी किया।

शक्तियाँ एवं कार्य :

संयुक्त राज्य अमेरिका का राष्ट्रपति अत्यधिक व्यस्त तथा शक्ति–संपन्न शासनाध्यक्ष है। यद्यपि संविधान के अनुसार राष्ट्रपति बहुत शक्तिशाली नहीं है तथापि विगत दो शताब्दियों की परंपराओं ने राष्ट्रपति को महान् एवं सशक्त बना दिया है। फरगुसन एवं मैक हेनरी ने इस तथ्य को रेखांकित करते हुए कहा है– ''मंगल ग्रह से आने वाला व्यक्ति, अमेरिका के संविधान को पढ़ते हुए यही समझेगा कि राष्ट्रपति एक निर्बल कार्यपालिका है जो बहुत सीमा तक कांग्रेस की इच्छा के अधीन है। वह अमेरिका की शासन प्रणाली को कांग्रेस की सरकार कहेगा, किंतु उन शक्तिशाली व्यक्तियों (राष्ट्रपति जैफरसन, जैक्सन, लिंकन, क्लीवलैंड, थियोडर रूजवेल्ट, विल्सन तथा फ्रेंकलिन रूजवेल्ट) जिन्होंने इस पद को धारण किया, इस पद को अत्यधिक शक्तिशाली कार्यपालिकाओं में से एक बना दिया है।'' अमेरिका का राष्ट्रपति निम्नांकित शक्तियों का प्रयोग करता है –

1. **कार्यपालिका शक्तियाँ** – एकल कार्यपालिका के रूप में अमेरिकी राष्ट्रपति शासन संचालन के समस्त व्यावहारिक कृत्य संपादित करता है। संविधान का अनुच्छेद–2 संघ की समस्त कार्यपालिका–शक्तियाँ, राष्ट्रपति में निहित करता है। इन शक्तियों का प्रयोग निम्नानुसार करता है –

   (1) अमेरिकी संविधान के अनुच्छेद 2(3) के अनुसार सभी संघीय कानूनों का समुचित रूप से क्रियान्वयन करवाना राष्ट्रपति का दायित्व है। कांग्रेस द्वारा पारित अधिनियमों तथा संधियों के निष्ठापूर्वक पालन से प्रशासनिक गतिविधियाँ नियंत्रित होती हैं।

   (2) संघीय कानूनों के अंतर्गत आने वाले समस्त प्रशासनिक तंत्र को नियंत्रित–निर्देशित करता है।

   (3) संपूर्ण संयुक्त राज्य अमेरिका में व्यवस्था बनाए रखने का दायित्व निभाता है। चूंकि प्रत्येक राज्य में गणतंत्रात्मक सरकार बनाए रखने एवं राज्य की बाहरी आक्रमण तथा आंतरिक हिंसा से बचाने का दायित्व संघीय सरकार का है अतः उपद्रव एवं अन्य हिंसक प्रदर्शनों के समय राष्ट्रपति, राज्यों को सहायता प्रदान करता है।

   (4) संघीय प्रशासन से संबंधित समस्त उच्च पदों पर नियुक्ति का कार्य राष्ट्रपति करता है। ज्यों ही कोई नया राष्ट्रपति निर्वाचित होता है कांग्रेस 2–3 हजार महत्वपूर्ण पदों से संबंधित सूची तैयार करती है इसे 'प्लम बुक' कहा जाता है। प्लम बुक में वर्णित पदों पर राष्ट्रपति अपने विश्वासपात्र व्यक्तियों को नियुक्त करता है, चाहे वे लोक सेवक हों या नहीं। नीति निर्धारण से संबंधित ये उच्च पद ही राष्ट्रपति की कार्यशैली को प्रमाणित करते हैं। राष्ट्रपति इन उच्च पदों जैसे मंत्रियों, न्यायाधीशों, निदेशकों, राजदूतों, महान्यायवादी, राजस्व अधिकारियों, महाडाकपाल, आयोगों, निगमों तथा बोर्डों के अध्यक्ष एवं सदस्य इत्यादि पर अपने राजनीतिक प्रशंसकों, महिलाओं, अश्वेतों, अल्पसंख्यकों, क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व इत्यादि सभी पक्षों को ध्यान में रखते हुए नियुक्ति देते हैं। इन नियुक्तियों की तीन श्रेणियाँ बनाई गई हैं। कुछ उच्च पदों पर सीनेट के परामर्श तथा बहुमत से स्वीकृति पर नियुक्ति वैध मानी जाती है तो दूसरी श्रेणी में निम्न पद रखे गए हैं जो कांग्रेस की सहमति से राष्ट्रपति या विभागीय अध्यक्ष तथा न्यायालय स्वयं नियुक्ति दे देते हैं। संविधान में निम्न पदों का वर्णन नहीं है। उच्च पदों पर नियुक्ति में सीनेट का शिष्टाचार अवश्य निर्वाहित किया जाता है। सामान्यतः (कुछ उपवादों को छोड़कर) सीनेट द्वारा उन नियुक्तियों की पुष्टि कर दी जाती है जो राष्ट्रपति ने की हैं। यद्यपि संविधान में राष्ट्रपति के नियुक्त किए गए पदाधिकारियों को पद से हटाने के क्रम में शक्ति का वर्णन नहीं किया गया है तथापि परंपरानुसार राष्ट्रपति इस शक्ति का प्रयोग करते हैं। ''मेयर्स बनाम संयुक्त राज्य'' मुकद्दमें में यह कहा गया है कि राष्ट्रपति पद से हटाने की शक्ति रखता है।

   (5) संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति को विदेशी संबंधों एवं नीतियों के निर्धारण के क्रम में पर्याप्त अधिकार दिए गए हैं। वह राजदूतों, वाणिज्य दूतों, प्रतिनिधियों तथा प्रतिनिधि मंडलों की नियुक्ति कर सकता है, विदेश नीति निर्मित कर सकता है, अमेरिकी विदेश नीति का अधिकारिक प्रवक्ता बन सकता है, विदेशी सरकारों (राष्ट्रों) को मान्यता प्रदान कर सकता है तथा संधियाँ कर सकता है। इन संधियों की पुष्टि सीनेट के दो तिहाई बहुमत से होनी आवश्यक है अतः कई बार उलझन से बचने के लिए संधि के स्थान पर प्रशासकीय समझोते भी कई राष्ट्रपति करते रहे हैं क्योंकि प्रशासकीय समझौते कार्यपालिका क्षेत्र में आते हैं जिनकी पुष्टि सीनेट से होनी आवश्यक नहीं है। राष्ट्रपति 'गुप्त समझौते' भी कर सकता है।

   (6) विदेश यात्रा करने वाले तथा प्रवासी अमेरिकियों को संरक्षण प्रदान करने तथा उनकी समस्याओं के समाधान का दायित्व राष्ट्रपति का है।

   (7) संविधान के अनुसार राष्ट्रपति सेनाओं तथा सशस्त्र बलों का प्रधान सेनापति है। राष्ट्र की प्रतिरक्षा में वह

सेनाओं का प्रयोग कर सकता है। वह सशस्त्र बलों को आदेश देने तथा युद्ध का संचालन करने का दायित्व निभाता है किंतु युद्ध की घोषणा कांग्रेस ही कर सकती है। वास्तविकता यह है कि राष्ट्रपति तात्कालिक घटनाओं को देखते हुए सेनाओं को आदेश दे देते हैं तथा कांग्रेस को बाद में युद्ध की घोषणा करनी पड़ती है। वास्तव में युद्ध के समय अमेरिकी राष्ट्रपति अधिनायक हो जाता है।

विधायी शक्तियाँ – यद्यपि विधायी शक्तियों का अधिकांश भाग, कांग्रेस में निहित है तथापि राष्ट्रपति के पास भी कुछ विधायी शक्तियाँ हैं, जैसे –

1. संविधान के अनुसार राष्ट्रपति का यह कर्त्तव्य है कि वह समय–समय पर कांग्रेस को संघ की स्थिति के बारे में जानकारी दे और उसके विचार के लिए ऐसे सुझावों की अनुशंसा करे, जिन्हें वह आवश्यक समझता हो। राष्ट्रपति कांग्रेस को वार्षिक संदेश प्रेषित करते हैं जिसमें सरकार की नीतियों एवं कार्यक्रमों सहित सुझाव भी होते हैं। सामान्यतः कांग्रेस, राष्ट्रपति के सुझावों पर अमल करती है।

2. राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि वह कांग्रेस के दोनों सदनों में मतभेद होने पर उन्हें स्थगित कर दे (सामान्यतः स्थिति में नहीं) तथा महत्वपूर्ण या अत्यावश्यक विषय पर विचार करने के लिए कांग्रेस के सत्र की अवधि बढ़ाने की सिफारिश कर सकता है। यदि कांग्रेस स्वीकार न करे तो वह अधिवेशन समाप्ति के पश्चात् 'विशेष अधिवेशन' बुलवा सकता है।

3. कांग्रेस द्वारा पारित विधेयकों पर राष्ट्रपति के हस्ताक्षर होते हैं। राष्ट्रपति को निषेधाधिकार (Veto Power) प्राप्त है। विलम्बकारी निषेधाधिकार के अंतर्गत राष्ट्रपति किसी विधेयक को अपनी आपत्तियों सहित उस सदन को लौटा सकता है जहाँ से वह शुरु हुआ था। यदि पुनः वही विधेयक दोनों सदनों में दो तिहाई बहुमत से पारित हो जाए तो राष्ट्रपति के हस्ताक्षरों की आवश्यकता नहीं रहती है। वस्तुत इस वीटो से विधेयक प्रायः मृत हो जाता है क्योंकि दो तिहाई बहुमत मिलना आसान नहीं रहता है। जेबी निषेधाधिकार (Pocket Veto) से तात्पर्य उस वीटो से है जब राष्ट्रपति किसी विधेयक पर निर्णय करना टाल देता है। ऐसा वह अवकाश के दिनों के अतिरिक्त 10 दिन तक कर सकता है। दस दिन बाद विधेयक स्वीकृत माना जाता है यदि उस समय कांग्रेस का अधिवेशन समाप्त न हुआ हो। दूसरे शब्दों में कहें तो कांग्रेस के अधिवेशन के अंतिम दिनों में आने वाले विधेयक, राष्ट्रपति के जेबी वीटो के कारण निष्क्रिय हो सकते हैं। अमेरिका में सभी राष्ट्रपतियों ने वीटो शक्ति को पर्याप्त प्रयोग में लिया है।

4. कांग्रेस द्वारा कानूनों के विषय में विस्तृत नियम–अधिनियम बनाने का कार्य कार्यपालिका का है। प्रदत्त विधान की इस व्यवस्था के कारण राष्ट्रपति एवं प्रशासन की कानून निर्माण में भूमिका बढ़ जाती है।

5. राष्ट्रपति अपने राजनीतिक दल के उन सदस्यों से जो कांग्रेस में हैं, के द्वारा विधान निर्माण एवं अन्य कार्यों में हस्तक्षेप करवा सकता है। अमेरिकी शासन व्यवस्था में लॉबी (Lobby) तथा 'कॉकस' (Caucus) में एक छोटा समूह जो गुप्त मंत्रणाएँ करता है का बहुत महत्व है।

न्यायिक शक्तियाँ :

राष्ट्रपति को कतिपय न्यायिक शक्तियाँ भी दी गई हैं जैसे –

1. दंड प्राप्त अपराधियों को राष्ट्रपति क्षमा कर सकता है, दंड को कम या स्थगित कर सकता है। साथ ही एक ही अपराध में दंडित अनेक व्यक्तियों को सर्वक्षमा कर सकता है जैसा कि सन् 1868 में राष्ट्रपति जॉनसन ने गृहयुद्ध में दक्षिण की ओर से लड़ने वालों को क्षमा किया था। राष्ट्रपति गेराल्ड फोर्ड ने 1974 में पूर्व राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन के मामलों में कानूनी कार्यवाही से पूर्व क्षमा कर दिया था। राष्ट्रपति की क्षमादान शक्तियों में दो शर्तें हैं

i) वह केवल संघीय विधि के मामलां में दंडित व्यक्तियों को क्षमा कर सकता है, राज्यों की विधि के अंतर्गत नहीं।

ii) महाभियोग द्वारा दंडित व्यक्तियों को क्षमा नहीं कर सकता है।

संकटकालीन शक्तियाँ :

विश्व की महान् राजनीतिक एवं आर्थिक शक्ति अमेरिका का राष्ट्रपति सामरिक, वित्तीय वाणिज्यिक, राजनीतिक, आंतरिक अशांति तथा अन्य संकटों के समय तुरंत निर्णय कर सकता है। संकटकाल में उसे असीम अधिकार दिए जा सकते हैं शर्त यह है कि –

1. संकट वास्तविक होना चाहिए।
2. संकट से संबंधित कांग्रेस का पूर्व में कोई कानून बना हुआ न हो।
3. संकट की आकस्मिकता के कारण कांग्रेस को समुचित कदम उठाने का अवसर न मिल सका हो।

इस संबंध में राष्ट्रपति आइजनहावर का मानना था कि यदि अमेरिकी राष्ट्रपति देश पर आक्रमण होने पर आक्रांता पर तत्काल कार्यवाही नहीं करता तो उसे (राष्ट्रपति) मृत्युदंड दिया जाना चाहिए। वस्तुतः अमेरिकी राष्ट्रपति की पदस्थिति संविधान निर्माण के पश्चात् निरंतर सुदृढ़ होती जा रही है। वह विश्व के सभी देशों के मामलों में किसी न किसी प्रकार से अवश्य सम्बद्ध हो जाता है, क्योंकि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अमेरिका की तूती बोलती है। राष्ट्रपति के प्रमुख कार्यों में बजट निर्माण भी सम्मिलित है जिसे कांग्रेस द्वारा स्वीकृति प्रदान की जाती है। अमेरिका की खुफिया एजेंसियों को सुदृढ़ बनाने, अंतरिक्ष एवं अन्य तकनीकी कार्यक्रमों की दूरगामी योजना बनाने तथा अन्य राष्ट्रीयताओं के नागरिकों के संबंध में नीति बनाने में अनेक कार्यकारी अभिकरण स्थापित हैं तथापि राष्ट्रपति की इच्छा शक्ति निर्णायक भूमिका निभाती है। अमेरिकी राष्ट्रपति प्रति सप्ताह जनता को रेडियो प्रसारण द्वारा संदेश भी देते हैं।

अमेरिकी राष्ट्रपति अपने राजनीतिक दल के नेता के रूप में राष्ट्रीय समिति के अध्यक्ष को नियुक्त करता है। दल की नीतियों का प्रचार–प्रसार एवं क्रियान्वयन करता है। राष्ट्र के सर्वोच्च नेता के रूप में वह जनता को अपील एवं अन्य माध्यमों से संदेश प्रदान करता है। राष्ट्रपति विल्सन ने कहा था कि ''अमेरिका का राष्ट्रपति यदि एक बार देश का विश्वास तथा प्रशंसा अर्जित कर ले तो कोई एक शक्ति उसका सामना नहीं कर सकती तथा कई शक्तियाँ भी उसे सरलता से हरा नहीं सकती।''

अमेरिकी राष्ट्रपति की स्थिति (Position of the American President)

राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अमेरिका के राष्ट्रपति का विशिष्ट स्थान है। राष्ट्रपति का स्वर जनता का स्वर होता है। आंतरिक क्षेत्र में जनता उसी के नेतृत्व एवं निर्देश की आकांक्षा रखती है। विदेशी मामलों में वह राष्ट्र का एकमात्र प्रवक्ता होता है। उसकी प्रत्येक घोषणा का विश्वव्यापी प्रभाव होता है। राष्ट्रपति की शक्तियों में व्यक्ति तथा उसकी परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन होता रहता है। वाशिंगटन, जैक्सन, लिंकन, रूजवेल्ट, केनेडी, जॉनसन, निक्सन इत्यादि ने अपने कर्त्तव्यों की जो व्याख्या की उससे राष्ट्रपति की शक्तियों में असाधारण वृद्धि हुई है। अमेरिका के इतिहास का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि राष्ट्रपति तथा कांग्रेस के परस्पर संबंधों के आधार पर वहाँ बारी–बारी सुदृढ़ एवं दुर्बल राष्ट्रपति होते रहे हैं। मुनरों ने उचित ही कहा है कि ''दृढ़ व्यक्तित्व और दुर्बल व्यक्तित्व के बीच पेंडुलम की भाँति शक्ति–संतुलन, एक विशेषता रही है। शताब्दियों से जनता की मनोवृति कमजोर नेतृत्व से शक्तिशाली नेतृत्व, दकियानूसीपन से उदारतावाद तथा विद्रोह से प्रतिक्रिया के बीच उद्वेलित होती रही है, किंतु गति सदैव दोनों ओर बनी रही है।'' राष्ट्रपति की व्यापक शक्तियों का अध्ययन उसकी स्थिति का परीक्षण करने के लिए जितना लाभदायक हो सकता है, यह उतना ही भ्रामक भी सिद्ध हो सकता है। राष्ट्रपति एक इकाई है

जो कि अनेक कार्यों को साथ–साथ सम्पादित करता है। एक क्षेत्र में उसकी सफलता दूसरे क्षेत्र में प्राप्त सफलता पर आधारित होती है।

राष्ट्रपति की शक्तियों पर प्रतिबंध – राष्ट्रपति की शक्तियों पर अनेक प्रतिबंध हैं। यदि राष्ट्रपति चाहता है कि उसकी नीतियाँ स्वीकृत कर ली जाएँ तथा उनको क्रियान्वित किया जाए तो उसे उच्च पदाधिकारियों, कांग्रेस में बहुमत तथा जनता के समर्थन पर निर्भर रहना पड़ता है। कभी–कभी न्यायपालिका के निर्णय भी उसके मार्ग में बाधक बन सकते हैं। यहाँ राष्ट्रपति की शक्तियों को प्रतिबंधित करने वाले कारकों का संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

सर्वप्रथम, राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति उसकी शक्तियों पर सबसे बड़ा प्रतिबंध है। वह राष्ट्र का नेतत्व कर सकता है किंतु कांग्रेस का नहीं। वह कांगेस को केवल नीति का निर्देश दे सकता है किंतु उसे नीति की उपयोगिता एवं वांछनीयता के विषय में संतुष्ट नहीं कर सकता। वह कांग्रेस में अपने दल के सदस्यों पर अधिक निर्भर नहीं रह सकता। राष्ट्रपति चाहे किसी भी दल का क्यों न हो, कांग्रेस के सदस्यों के लिए वह केवल एक प्रतिद्वंद्वी मात्र होता है। 1961 में डेमोक्रेट राष्ट्रपति केनेडी को सीनेट में केवल 15 डेमोक्रेट सदस्यों का समर्थन प्राप्त होता था। कांग्रेस के सदस्यों का निर्वाचन क्षेत्र राष्ट्रपति के निर्वाचन क्षेत्र से सर्वथा भिन्न होता है तथा उनके लक्ष्य भी भिन्न होते हैं। कांग्रेस में विभिन्न व्यक्तियों को दलीय आधार पर प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है जो कि सीनेट एवं प्रतिनिधि सदन के रूप में संगठित होते हैं। कांग्रेस का स्वरूप अत्यधिक प्रादेशिकता प्राप्त होता है। प्रतिनिधि सदन के सदस्यों का चुनाव प्रति दो वर्ष के उपरांत होता हैं। अतः वे चुनाव में ही व्यस्त रहते हैं। सीनेट में समान प्रतिनिधित्व होने पर भी ऐरिजोना अथवा इदाहो की अपेक्षा न्यूयार्क तथा कैलिफोर्निया के विधायकों का अधिक महत्व होता है। इन सभी कारणों से राष्ट्रपति तथा कांग्रेस में सदैव संघर्ष की संभावना बनी रहती है। उदाहरणार्थ, कांग्रेस ने राष्ट्रपति विल्सन द्वारा की गई वार्सा संधि को ही अस्वीकृत कर दिया था।

दूसरे राष्ट्रपति प्रशासनिक अधिकारियों को इस प्रकार आदेश नहीं दे सकता जैसे कि एक सेनापति अपने सैनिकों को आदेश दे सकता है। कांग्रेस के बाद नौकरशाही राष्ट्रपति के लक्ष्यों की प्राप्ति में सबसे अधिक बाधक सिद्ध हुई है। रोबर्ट डाहल तथा डिंबलोम के शब्दों में, ''नौकरशाही सामान्य उच्चत्तरों के नियंत्रण के प्रति उत्तरदायी, अनुशासित, अधीनस्थ कर्मचारियों के समूह की अपेक्षा अंतर्राष्ट्रीय राजनीति की रंगभूमि के अधिक करीब प्रतीत होती है।'' कार्यों की अधिकता के फलस्वरूप राष्ट्रपति प्रशासन पर समुचित नियंत्रण नहीं रख पाता। किसी भी निर्णय को लेने के लिए राष्ट्रपति प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा प्रदत्त सूचनाओं पर निर्भर करता है। अधिनस्थ कर्मचारियों की छोटी सी भूल का राष्ट्रपति के निर्णयों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। इसके अतिरिक्त निर्वाचन में समर्थन प्राप्त करने के लिए भी राष्ट्रपति कुछ नियुक्तियों की प्रतिक्षा करता है। राष्ट्रपति द्वारा सुरक्षित पदाधिकारी यदि राष्ट्रपति की नीतियों से सहमत नहीं होते तो भी राष्ट्रपति उस समय तक उनके विरूद्ध कोई कदम नहीं उठा सकता जब तक कि उसे उनका राजनीतिक समर्थन प्राप्त होता है। इसी प्रकार गवर्नर सीनेट अथवा दल राष्ट्रीय समिति द्वारा नियुक्त कर्मचारियों की भक्ति अपने नियुक्तिकर्ताओं की ओर अधिक होती है। कुछ महत्वाकांक्षी व्यक्ति राष्ट्रपति को अपने प्रतिद्वंदी के रूप में ही देखते हैं।

तीसरे, न्यायिक पुनर्वलोकन की शक्ति के आधार पर न्यायपालिका भी राष्ट्रपति की शक्तियों पर अनेक प्रतिबंध लगा सकती है। न्यायपालिका को व्यवस्थापिका एवं कार्यपालिका के कार्यों को असंवैधानिक घोषित करने का अधिकार है। राष्ट्रपति जैफर्सन ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि संविधान निर्माता शासन के तीनों अंगों को स्वतंत्र एवं एक दूसरे के हस्तक्षेप से मुक्त रखना चाहते थे। अतः न्यायपालिका का राष्ट्रपति के कार्यों की समीक्षा करने का अधिकार शक्ति पृथक्करण एवं सीमित शासन के सिद्धांतों के सर्वथा विरूद्ध है। 1993 में राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने अमरीका की अर्थव्यवस्था में सुधार लाने के लिए महत्वाकांक्षी कार्यक्रम प्रस्तुत किया था। इसे 'न्यू डील' कार्यक्रम के

नाम से जाना जाता है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत कांग्रेस द्वारा पारित अनेक विधियों में से सर्वोच्च न्यायालय ने 12 कानूनों को असंवैधानिक घोषित कर दिया था।

अंत में अमेरिका में व्यापारी वर्ग के बढ़ते हुए आधिपत्य के विरूद्ध जनता में असंतोष की भावना भी राष्ट्रपति के शक्तिशाली शासन के विरूद्ध में रही है। जनता सरकारी नियंत्रण द्वारा व्यवस्था की स्थापना को संदेह की दृष्टि से देखती है। आधुनिक औद्योगिक युग में राष्ट्रपति की समस्याएँ सर्वथा भिन्न हैं। लॉस्की के अनुसार, ''कांग्रेस की इच्छाओं से मर्यादित राष्ट्रपति की स्थिति अथाह समुद्र में एक ऐसे नाविक के समान है जो पूर्ण निश्चयपूर्वक आगे नहीं बढ़ सकता। राष्ट्रपति की सफलता उसकी लोकप्रियता पर भी निर्भर करती है। रोबर्ट कार तथा अन्य विचारकों के शब्दों में, ''बहुत से विधायक एक अलोकप्रिय राष्ट्रपति के कार्यक्रमों का समर्थन करने तथा कार्यपालिका के लोकप्रिय अध्यक्ष के प्रस्तावों का विरोध करने के इच्छुक नहीं होते।'' एक अलोकप्रिय राष्ट्रपति को व्यवस्थापिका तथा कांग्रेस का पूर्ण सहयोग प्राप्त नहीं होता।

4.3.2 राष्ट्रपति का मंत्रिमण्डल :

राष्ट्रपति का मंत्रिमण्डल पृथक, स्पष्ट एवं अध्ययन योग्य है। इसका अध्ययन अधिक नहीं किया गया क्योंकि यह राष्ट्रपति की एक सहायक संस्था है जो निर्णायक प्रभाव नहीं रखती वरन् केवल परामर्श और सहयोग देती है। रिचार्ड फेनो ने लिखा है, ''मंत्रिमंडल राष्ट्रपति का अपना साधन है, वह इसे जैसे चाहे प्रयोग में लाए।''

मंत्रिमंडल एक लंबे विकास का परिणाम है। रिचार्ड फेनो के कथनानुसार, ''मंत्रिमण्डल प्राचीन संस्था के लिए आधुनिक शब्दावली है। अमेरिकी मंत्रिमण्डल एक अर्थ में कानून से परे रचना है। इसका अस्तित्व संवैधानिक या कानूनी प्रावधानों पर निर्भर नहीं है वरन् परंपराओं पर आधारित है। समय की परिस्थितियों, घटनाओं, नेताओं के व्यक्तित्व आदि ने इसके स्वरूप पर पर्याप्त प्रभाव डाला है। अमेरिकी मंत्रिमण्डल का स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं है, वह राष्ट्रपति पर आश्रित है। उसकी इच्छा के विरूद्ध उस पर दबाव नहीं डाल सकता। एक अर्थ में राष्ट्रपति मंत्रिमंडल के जीवन और मरण का निर्णायक है।'' जोनेथन डेनील के कथनानुसार, ''कोई संस्था एक व्यक्ति के समर्थकों का ऐसा निकाय नहीं होती जैसे अमेरिकी राष्ट्रपति का मंत्रिमण्डल है।'' असल में मंत्रिमण्डल राष्ट्रपति का अनुपूरक है, यह राष्ट्रपति के व्यक्तित्व की कमियों को पूरा करने की चेष्टा करता है।

मंत्रिमण्डल के सदस्यों की नियुक्ति (Appointment of Cabinet Members)

मंत्रिमण्डल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है तथा राष्ट्रपति की इच्छा निर्णायक तत्व है किंतु दूसरे कई तत्व हैं जो राष्ट्रपति की स्वेच्छा के प्रयोग को सीमित कर देते हैं। रिचार्ड फेनो के मतानुसार, ''प्रत्येक मंत्रिमण्डल की रचना में पाँच तत्व कम या अधिक मात्रा में सक्रिय रहते हैं।'' ये पाँच तत्व क्रमशः निम्नलिखित हैं –

1. **राष्ट्रपति का प्रभाव** – मंत्रिमण्डल की नियुक्ति में राष्ट्रपति केंद्रीय तत्व होता है। सिद्धांत द्वारा नियुक्त मंत्रिमंडल पर सीनेट के परामर्श एवं स्वीकृति का प्रावधान है, किंतु व्यवहार में यह औपचारिकता मात्र है। राष्ट्रपति मंत्रियों का चयन करते समय ऐसे व्यक्तियों को लेता है जो उसके विचार वाले हों तथा उसके साथ मिलकर कार्य कर सकें। कुछ राष्ट्रपति मंत्रिमण्डल का चयन दलीय आधार पर करते हैं जबकि अन्य राजनीति को विशेष महत्त्व नहीं देते हैं।
2. **मंत्री पद की प्ररेणाएँ एवं असुविधाएँ** –मंत्री पद की कठिनाइयों के कारण राष्ट्रपति पसंद के व्यक्तियों को मंत्रिमण्डल में नहीं ले पाता। मंत्री पद का वेतन कम है तथा मंत्री बनने के बाद व्यक्तियों को व्यवसाय छोड़ना पड़ता है। बाद में व्यक्ति को कुछ कार्य करने का अवसर नहीं मिल पाता। एक मंत्री का मुख्य कार्य कागजों एवं पत्रों पर अपने हस्ताक्षर करना मात्र है। मंत्री को रचनात्मक कार्य करने का बहुत कम अवसर प्राप्त होता है। कार्य न करने पर भी उनकी आलोचनाएँ होती हैं। उन्हें वांछित सम्मान नहीं मिलता है।

मंत्रियों में ऊँच–नीच का भेद रहता है। इन सब कठिनाइयों से अनेक लोक मंत्रिमण्डल में आना नहीं चाहते।

3. **समय की परिस्थितियाँ** – एक निश्चित समय में जनमत का दृष्टिकोण विभागों का तुलनात्मक महत्व और दलीय स्थिति मंत्रिमण्डल के चयन को प्रभावित करती है। यदि जनमत प्रशासन में प्रयोग और नवीनीकरण का पक्षपाती है तो भिन्न प्रकार के मंत्रियों की आवश्यकता होगी। यदि कोई दल बहुत समय बाद शक्ति में आता है तो मंत्री बनने वाले प्रत्याशियों की संख्या अधिक नहीं होगी।

4. **मंत्रिमण्डल के आदर्श** – मंत्रिमण्डल की रचना इस पर निर्भर करती है कि मंत्रिमण्डल का आदर्श क्या है? एक मंत्रिमण्डल अपने सदस्यों के व्यक्तिगत गुणों पर विशेष जोर देता है। थियोडर रूजवेल्ट के मतानुसार, मंत्री में विभाग का प्रशासकीय कार्य करने के पर्याप्त गुण होने चाहिए। वह प्रभावशाली नेता हो, मिलकर कार्य करने की योग्यता हो, तद्नुसार प्रत्येक पद पर योग्य व्यक्ति नियुक्त किया जाता है और सभी सदस्य मिलकर कार्य करते हैं।

5. **प्राप्य और संतुलन का मापदंड** – मंत्रिमण्डल में विभिन्न पदों पर विभिन्न योग्यताओं की आवश्यकता रहती है। वे योग्यताएँ देश के क्षेत्रीय अंतरों द्वारा संतुलित की जानी चाहिए। प्रत्येक योग्यता मंत्रिमण्डल में हो यह चयन के समय देखा जाए।

स्पष्ट है कि मंत्रिमण्डल की नियुक्ति में राष्ट्रपति की भूमिका विशेष महत्व रखती है, किंतु वह असीमित या अमर्यादित नहीं है। उस पर राजनीतिक दल, देश के भौगोलिक क्षेत्र प्रशासनिक योग्यता आदि का प्रभाव पड़ता है। परंपरागत ढंग से राष्ट्रपति के मंत्रिमण्डल में कार्यपालिका विभागों के अध्यक्ष रहते हैं। पिछले कुछ वर्षों से उपराष्ट्रपति पद का महत्व बढ़ाने की दृष्टि से निक्सन को अपनी अनुपस्थिति में मंत्रिमण्डल का सभापित नियुक्त कर दिया था। फ्रैंकलिन रूजवेल्ट ने गैरविभागीय अधिकारियों को मंत्रिमण्डल में लेने की परंपरा डली।

मंत्रिमण्डल की मीटिंग्स

परंपरा एवं प्रचलित व्यवहार द्वारा विकसित मंत्रिमण्डल की मीटिंग्स का स्वरूप लचीला है। इसके सेवीवर्ग, प्रक्रिया और सामयिकता की दृष्टि से इसमें निरंतरता पायी जाती है। जॉर्ज वाशिंगटन के समय मंत्रिमण्डल की मीटिंग्स राष्ट्रपति की इच्छा से मंगलवार एवं शनिवार को होती थी। कुछ राष्ट्रपतियों ने लंबे समय तक मंत्रिमंडल में विचार–विमर्श किए हैं जबकि राष्ट्रपति कूलिज मंत्रिमंडल की बैठकें कुछ मिनट के लिए आयोजित करता था। उपराष्ट्रपति मंत्रिमण्डल की मीटिंग में नहीं बैठता था। मन्त्रीमण्डल की मीटिंग अनौपचारिक होती है। वह सामूहिक रूप से उत्तरदायी नहीं होता। अतः उसमें न कभी मतदान कराया जाता है और न उसका अभिलेख रखा जाता है। अपवादस्वरूप कुछ राष्ट्रतियों ने मंत्रिमण्डल की मीटिंग में औपचारिकता मतदान प्रणाली और अभिलेख रखने की परंपरा को अपनाया है।

मंत्रिमण्डल मीटिंग्स की अध्यक्षता राष्ट्रपति करता है। राष्ट्रपति द्वारा कार्यसूची प्रस्तुत की जाती है। समस्या यह है कि मंत्रिमण्डल की बैठकें किस समय व कितने समय बाद की होनी चाहिए। कुछ लेखकों ने नियमित मीटिंग का समर्थन किया है। किंतु अनेक लेखक मीटिंग की नियमितता को अनावश्यक समय खराब करना कहते हैं। रिचार्ड फेनो के मतानुसार, 'मंत्रिमण्डल की मीटिंग की सफलता उसके नियमित होने पर निर्भर करती है। राष्ट्रपति की इसमें स्वेच्छापूर्ण शक्ति होनी चाहिए ताकि मंत्रिमण्डल निरर्थक न बन जाए।'' अन्य समस्या में मंत्रिमण्डल की मीटिंग में कितनी औपचारिकता रखी जाए। लोचशीलता के लिए अनौपचारिकता चाहिए, किंतु कार्रवाई की सार्थकता के लिए औपचारिकता भी अपेक्षित होती है। अनौपचारिकता मीटिंग में वाद–विवाद नहीं हो पाता क्योंकि उसके लिए पहले से कोई तैयार नहीं होता।

मंत्रिमण्डल के कार्य

मंत्रिमण्डल निम्नलिखित कार्य संपन्न करता है – (1) यह राष्ट्रपति का परामर्शदाता है और किसी निर्णय पर पहुंचने में उसकी सहायता करता है। (2) सदस्य राष्ट्रपति को सूचनाएँ देते हैं, अपने अनुभव बताते हैं और अपने निर्णयों से अवगत कराते हैं। (3) राष्ट्रपति को अनेक कार्यों के बुरे परिणामों से पहले ही अवगत करा देता है। (4) विभिन्न कार्यों के लिए अनेक विकल्प सुझाता है। (5) राष्ट्रपति के समन्वय कार्य को सुगम बनाता है। (6) यह विभिन्न सदस्यों के बीच संचार–व्यवस्था का कार्य करता है।

4.3.3 राष्ट्रपति के सहायक

राष्ट्रपति अमेरिकी प्रशासन का सर्वोच्च अधिकारी है, किंतु एक व्यक्ति के रूप में उसकी कार्यक्षमता की सीमाएँ हैं। प्रारंभ में राष्ट्रपति के कार्य एवं दायित्व सीमित थे। वह कुछ सचिवों, लिपिकों की सहायता से अपना पत्र–व्यवहार और अन्य कार्य संपन्न कर लेता था। जब राष्ट्रपति की शक्तियाँ बढ़ी तो उसकी सहायता के लिए एक बड़े संगठन की आवश्यकता हुई। 1937 में प्रशासनिक प्रबंध समिति ने इस आवश्यकता पर बल दिया। 1939 में कांग्रेस ने एक पुनर्गठन अधिनियम पारित किया जिसमें राष्ट्रपति के निष्पादक कार्यालय का जन्म हुआ। इसे राष्ट्रपति सचिवालय कहा गया है। राष्ट्रपति निक्सन अपनी सहायता, परामर्श और सूचना के लिए व्हाइट हाउस कार्यालय का सहयोग लेते थे। 1969 के संघीय वित्त विधेयक द्वारा 17 राष्ट्रपति सहायक रखे गये। राष्ट्रपति के निष्पादक कार्यालय में अनेक अभिकरण आते हैं। कुछ प्रमुख अभिकरण यह हैं –

1. **व्हाइट हाउस कार्यालय** –इस कार्यालय में लगभग चार सौ व्यक्ति कार्य करते हैं। ये राष्ट्रपति के विभिन्न परंपरागत, व्यक्तिगत, राजनीतिक तथा जन संपर्क के कार्य संपन्न करते हैं। इसके अधिकारियों के कुछ नाम हैं, जैसे– राष्ट्रपति का सहायक या प्रेस सचिव, पदाधिकारी सचिव, विशेष सहायक, विशेष सलाहकार, प्रशासनिक सहायक, सैनिक सहायक आदि। कार्यालय स्टाफ द्वारा अनेक महत्वपूर्ण कार्य संपन्न किए जाते हैं। जैसे – (1) राष्ट्रपति को सार्वजनिक नीति संबंधी विषयों की सूचना देना (2) सरकार की कार्यपालिका एवं व्यवस्थापिका शाखाओं के बीच समन्वय कार्य करना, (3) व्यक्तिगत मामलों में राष्ट्रपति को परामर्श देना तथा (4) राष्ट्रपति के समस्त पत्र–व्यवहार का कार्य संपन्न करना।

2. **बजट ब्यूरो** – इसकी स्थापना 1921 के बजट तथा लेखांकन अधिनियम द्वारा की गई थी। यह 1921 से 1939 तक राजकोष विभाग से संलग्न रहा, किंतु यथार्थ में राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी था। सन् 1939 की पुनर्गठन योजना के अंतर्गत बजट ब्यूरो राष्ट्रपति के निष्पादक कार्यालय में हस्तांतरिकत कर दिया गया। ब्यूरो के मुख्य अधिकारी ये हैं – निदेशक, छः सहायक निदेशक तथा एक सामान्य परिषद। बजट ब्यूरो बजट का परिपत्र तैयार करता है। व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृति होने के बाद इस बजट पर प्रशासन का नियंत्रण रहता है। 8 सितंबर, 1939 के कार्यपालिका आदेश के अनुसार बजट ब्यूरो के कार्य ये हैं – (i) सरकार के राजकोषीय तथा वित्तीय कार्यों में राष्ट्रपति की सहायता करना, (ii) बजट प्रशासन का पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण करना, (iii) प्रशासनिक प्रबंध योजनाओं के विकास में शोध करना तथा विभिन्न कार्यपालिका विभागों एवं अभिकरणों को परामर्श देना, (iv) कुशलता एवं मितव्ययता के साथ सरकारी सेवा संचालन में राष्ट्रपति की सहायता करना, (v) विभागों तथा अभिकरणों द्वारा रखे गए विधायी प्रस्तावों में समन्वय स्थापित करना, (vi) कार्यपालिका आदेशों तथा निषेधाधिकार संदेशों की तैयारी में राष्ट्रपति की सहायता करना, (vii) प्रशासनिक अभिकरणों के कार्यक्रम की प्रगति से राष्ट्रपति को सूचित करना, (viii) सांख्यिकीय सेवाओं के सुधार, विकास तथा समन्वय की योजनाएं बनाना एवं उनकी उन्नति करना। बजट ब्यूरो सरकारी व्यय को न्यूनतम बनाए रखने में भी सहयोग देता है।

3. **आर्थिक परामर्शदाताओं की परिषद्**– इसकी स्थापना 1946 के रोजगार अधिनियम द्वारा की गई है। इस

परिषद में राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त एवं सीनेट द्वारा स्वीकृत तीन सदस्य होते हैं। वह राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की रक्षक का काम करती है, आर्थिक विकास में राष्ट्रपति को परामर्श देती है, राष्ट्रीय सरकार का आर्थिक नीतियों एवं कार्यक्रमों का मूल्यांकन करती है, आर्थिक विकास एवं स्थायित्व के लिए नीतियाँ सुझाती हैं तथा राष्ट्रपति द्वारा कांग्रेस को भेजी जाने वाली वार्षिक रिपोर्ट तैयार करती है।

राष्ट्रपति के निष्पादक कार्यालय में कुछ अन्य इकाइयाँ भी रहती हैं। उदाहरण के लिए राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद, केंद्रीय गुप्तचर अभिकरण, कार्रवाई समन्वयकर्ता मंडल आदि। ये सभी सहायक संस्थाएँ राष्ट्रपति के कार्यों का निष्पादन करने में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं।

'अपनी प्रगति जांचिए'

5. अमेरिका का राष्ट्रपति बनने हेतु क्या–2 योग्यताएँ होनी चाहिए।
6. अमेरिका के राष्ट्रपति का कार्यकाल अधिकतम कितने वर्ष हो सकता है?
7. उस अमेरिकी राष्ट्रपति का नाम बताएं जो चार बार अमेरिका का राष्ट्रपति चुना गया।
8. अमेरिका राष्ट्रपति की सहायक एजेन्सियों के नाम लिखिए।

4.4 फ्रांस की मुख्य कार्यपालिका

फ्रांस की मुख्य कार्यपालिका के तीन प्रमुख स्तम्भ–राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री एवं मन्त्रिपरिषद हैं जिनका वर्णन निम्नलिखित है –

4.4.1 राष्ट्रपति

फ्रांस का राष्ट्रपति केवल नाममात्र की ही संवैधानिक कार्यपालिका का प्रतीक नहीं है बल्कि वह राज्य का वास्तविक अध्यक्ष, राष्ट्र का प्रतीक, शासन का प्रमुख तथा संविधान का संरक्षक है। तृतीय एवं चतुर्थ गणराज्य के संविधान में राष्ट्रपति की स्थिति भारत के राष्ट्रपति या ब्रिटेन के सम्राट के समान कमजोर थी। परिस्थितिवश राष्ट्रपति की पदस्थिति सुदृढ़ बनाई गई है। मेंडल फ्रांस के अनुसार– ''राष्ट्रपति एक अवंशानुगत सम्राट है जो अपने को वैधानिक अधिनायक बना सकता है।''

योग्यताएँ :

पंचम गणराज्य के संविधान में राष्ट्रपति की कोई योग्यता वर्णित नहीं है। अतः कोई भी मतदाता (18 वर्ष की आयु) इस पद का प्रत्याशी बन सकता है लेकिन व्यावहारिक स्थिति इतनी सरल नहीं है। अत्यंत लोकप्रिय, कुशल तथा अनुभवी राजनेता ही इस पद तक पहुँच सकता है। फ्रांस की नागरिक संहिता के अनुसार फ्रांस का कोई भी नागरिक (जन्मजात आवश्यक नहीं) राष्ट्रपति बन सकता है। सामान्यतः विदेशियों को 5 वर्ष में नागरिकता मिलती है किंतु पूर्व उपनिवेशों जैसे अमेरिका का अरकंसास प्रांत कभी फ्रांसिसी उपनिवेश था, के नागरिक फ्रांस में तुरंत नागरिकता पा सकते हैं।

निर्वाचन :

पंचम गणराज्य के मूल संविधान में राष्ट्रपति के अप्रत्यक्ष निर्वाचन की व्यवस्था थी। एक 'महान मंडल' जिसमें 80 हजार सदस्य होते थे, के द्वारा राष्ट्रपति का चयन होता था किंतु अक्टूबर 1962 में किए गए संविधान संशोधन द्वारा अब राष्ट्रपति का निर्वाचन सभी मतदाताओं के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किया जाता है। निर्वाचन के लिए पूर्ण बहुमत अर्थात् 50 प्रतिशत से अधिक मत आवश्यक हैं। यदि किसी भी उम्मीदवार को पूर्ण बहुमत नहीं मिलता है तो 15 दिन पश्चात् दूसरा मतदान होता है जिसमें केवल वे ही उम्मीदवार मैदान में रहते हैं जो प्रथम मतदान में प्रथम एवं

द्वितीय मतपत्र योजना का सहारा लेना चाहते हैं। संविधान परिषद्, चुनाव से संबंधित सभी नियंत्रणकारी प्रावधान करती है। चुनावी अनियमितताओं की सुनवाई तथा राष्ट्रपति के निर्वाचन की घोषणा भी संविधान परिषद् ही करती है।

कार्यकाल :

राष्ट्रपति 7 वर्ष के लिए चुना जाता है तथा पुनः निर्वाचित होने पर कोई प्रतिबंध नहीं है। फ्रांस में उपराष्ट्रपति के पद का प्रावधान नहीं है। राष्ट्रपति की अनुपस्थिति में सीनेट का सभापित अल्पकाल के लिए यह पद ग्रहण करता है लेकिन वह जनमत संग्रह (लोकनिर्णय) संधियों के अनुसमर्थन तथा संविधान संशोधन जैसे गंभीर मुद्दों पर निर्णय नहीं कर सकता है। ऐसा पूर्णकालिक राष्ट्रपति ही करता है। राष्ट्रपति की शारीरिक या मानसिक अवस्था के समय संवैधानिक परिषद् सरकार की प्रार्थना पर पूर्ण बहुमत से निर्णय कर राष्ट्रपति–पद रिक्त घोषित कर सकती है। नये राष्ट्रपति का चुनाव कम से कम 20 तथा अधिकतम 35 दिनों के अंदर अनिवार्य है।

शक्ति व कार्य :

फ्रांस का राष्ट्रपति अनेक दृष्टियों से शक्ति संपन्न कार्यपालिका है। वह संविधान का संरक्षक, राष्ट्र की एकता का प्रतीक तथा सर्वोच्च पदाधिकारी है।

कार्यपालिका शक्तियाँ :

1. वह प्रधानमंत्री की नियुक्ति करता है तथा प्रधानमंत्री के प्रस्ताव पर सरकार के अन्य अधिकारियों को नियुक्त एवं पदमुक्त करता है। प्रधानमंत्री का त्यागपत्र भी राष्ट्रपति ही स्वीकारता है।
2. मंत्रिपरिषद् की बैठकों की अध्यक्षता करता है।
3. फ्रांस के राजदूतों की नियुक्ति करता है तथा अन्य देशों के राजदूतों के नियुक्ति पत्र स्वीकारता है।
4. वह सेनाओं का प्रमुख सेनापति होता है। राष्ट्रपति सुरक्षा परिषद् तथा रक्षा समितियों की अध्यक्षता करता है।
5. अन्य देशों के साथ संधि वार्ताएँ करता है तथा संधियों का अनुसमर्थन करता है।

विधायी शक्तियाँ :

1. संसद द्वारा पारित विधेयकों को 15 दिन के अंदर स्वीकृत कर कानून घोषित करता है। वह विधेयक को पुनर्विचार हेतु लौटा सकता है जिस पर संसद अनिवार्यतः विचार करती है।
2. मंत्रिपरिषद् द्वारा भेजे गए अध्यादेशों तथा विज्ञप्तियों पर हस्ताक्षर करता है।
3. संसद के दोनों सदनों में संदेश भेजता है किंतु उस संदेश पर वाद–विवाद नहीं होता है।
4. संसद के असाधारण सत्र आयोजित करवा सकता है।
5. सरकार के अथवा संसद के दोनों सदनों के संयुक्त संकल्प पर विधेयकों को लोक निर्णय के लिए प्रसारित कर सकता है यदि मामला जनसमर्थन से संबंधित हो।
6. प्रधानमंत्री तथा संसद के दोनों सदनों के सभापतियों के परामर्श पर राष्ट्रीय सभा को भंग कर सकता है।

न्यायिक शक्तियाँ :

1. न्यायालयों द्वारा दंडित व्यक्तियों को क्षमादान दे सकता है।

2. उच्च न्यायिक परिषद् में नौ सदस्यों को मनोनीत करता है।
3. उच्च न्यायिक परिषद् की अध्यक्षता करता है।
4. न्यायाधीशों की स्वतंत्रता बनाए रखने की गारंटी देता है।

आपातकालीन शक्तियाँ :

संविधान के अनुच्छेद–16 के अनुसार ''जब कभी गणराज्य की संस्थाओं, राष्ट्र की स्वतंत्रता, फ्रांस की अखंडता या अंतर्राष्ट्रीय वचनबद्धताओं को पूरा करने में गंभीर तथा तत्कालीन खतरा उत्पन्न हो जाता है और संवैधानिक सरकार की सत्ताओं के उचित एवं नियमित कार्यों में बाधा पड़ने लगती है तो राष्ट्रपति उस खतरे का सामना करने के लिए जिन उपायों को आवश्यक समझे, उठा सकता है।'' संविधानुसार राष्ट्रपति इस संकट की सूचना राष्ट्र को देगा। प्रधानमंत्री, संसद के दोनों सदनों के सभापतियों तथा संविधान परिषद् से परामर्श करेगा। लेकिन राष्ट्रपति परामर्श मानने के लिए बाध्य है या नहीं, इस पर संविधान मौन है। आपातकाल आरंभ होते ही राष्ट्रीय सभा का अधिवेशन शुरु हो जाता है और विघटित नहीं किया जा सकता है। वास्तव में इस समय राष्ट्रपति का स्वविवेक ही निर्णायक रहता है।

डॉरोथी पिकल्स के अनसार, ''राष्ट्रपति, जज और जूरी दोनों हो जाता है।'' आपातकाल की समय सीमा निश्चित नहीं की गई है। ऐसे समय राष्ट्रपति भी निर्णय लेता है तथा राष्ट्रीय सभा भी उचित कदम उठा सकती है। संविधान के अनुच्छेद–5 के अनुसार राष्ट्रपति, संविधान का संरक्षक भी होता है। वस्तुतः जनरल डी0 गॉल से लेकर अद्यतन फ्रांस में राष्ट्रपति की स्थिति सुदृढ़ एवं किंचित सर्वेसर्वा जैसी प्रतीत हुई है।

राष्ट्रपति की स्थिति :

फ्रांस का राष्ट्रपति एक शक्तिशाली पदाधिकारी है, वह नाममात्र की कार्यपालिका नहीं है। व्यापक प्रशासनिक तथा विधायी शक्तियाँ उसे महत्वपूर्ण अधिकारी बना देती हैं। उसे व्यवस्थापिका के अविश्वास प्रस्ताव द्वारा नहीं हटाया जा सकता। उसे केवल महाभियोग द्वारा हटाया जा सकता है, किंतु यह प्रक्रिया जटिल है। संकटकाल में राष्ट्रपति की शक्तियाँ बढ़ जाती हैं। वह संवैधानिक अधिनायक बन जाता है। इन शक्तियों का प्रयोग राष्ट्रपति द्वारा ही किया जाता है। आलोचकों ने राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियों में यह आपत्ति की है कि केवल राष्ट्रपति ही अंतिम निर्णय लेता है कि संकट है या नहीं और उसके लिए क्या उपाय किए जाएँ? राष्ट्रपति की सकंटकालीन शक्तियाँ अस्पष्ट व अनिश्चित हैं। अनेक प्रश्नों का उपयुक्त उत्तर नहीं है। आलोचकों का कहना है कि पंचम गणतंत्र के संविधान ने एक ओर तो राष्ट्रपति को व्यापक शक्तियाँ प्रदान की हैं दूसरी ओर संसद की शक्तियों पर कई प्रतिबंध लगाए हैं। ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति को शक्तियों के दुरुपयोग से कोई नहीं रोक सकेगा। डी0 वी0 बर्ने के कथानानुसार, ''यह ज्ञात करना कठिन है कि नए संविधान ने संसद की शक्तियों पर जो कड़े प्रतिबंध लगाए हैं उनके अधीन सीमित अध्यक्षात्मक शासन को अर्द्ध–अधिनायकवाद में रूपांतरित होने से कैसे रोका जाएगा।''

फ्रांस के राष्ट्रपति को संविधान ने व्यापक शक्तियाँ दी हैं किंतु वह तानाशाह नहीं बन सकता है। उसे संवैधानिक परिषद् द्वारा अयोग्य घोषित किया जा सकता है। उस पर राजद्रोह का मुकद्दमा चलाया जा सकता है। राष्ट्रपति की निरंकुश शक्तियों पर जनमत का नियंत्रण रहता है। यदि राष्ट्रपति ने शक्तियों के दुरुपयोग से जनता के अधिकार तथा स्वतंत्रताओं में बाधा डाली तो जनता का छठा गणतंत्र स्थापित करने में देर नहीं लगेगी। राष्ट्रपति के वास्तविक व्यवहार ने आलोचकों की आशंकाओं को निर्मूल सिद्ध कर दिया है। कोई महत्वाकांक्षी राष्ट्रपति अमेरिकी राष्ट्रपति से कम शक्तिशाली नहीं है। प्रो॰ एरोन के कथानुसार– ''कागज पर फ्रांस का राष्ट्रपति अमेरिकी राष्ट्रपति से कम शक्तिशाली नहीं है।'' फ्रांस के एक साम्यवादी नेता मोरिस थारेंज के कथनानुसार, ''राष्ट्रपति को पुराने सम्राटों से अधिक शक्तियाँ प्राप्त हैं।'' निष्कर्ष रूप में सिद्धांत और व्यवहार में राष्ट्रपति सर्वोच्च है।

4.2.2 फ्रांस का प्रधानमंत्री :

फ्रांस का प्रधानमंत्री (प्रीमियर) की पदस्थिति भारत या ब्रिटेन के प्रधानमंत्री के समान सशक्त कार्यपालिका की नहीं है। यद्यपि 1789 की क्रांति से ही प्रधानमंत्री–पद महत्वपूर्ण रहा है किंतु सर्वप्रथम चतुर्थ गणतंत्र के संविधान में यह पद वर्णित किया गया। वर्तमान (पंचम) गणतंत्र में भी प्रधानमंत्री का पद कार्यपालिका का आवश्यक अंग है।

नियुक्ति :

संविधान के अनुच्छेद–8 के अनुसार प्रधानमंत्री की नियुक्ति का अधिकार राष्ट्रपति में समाहित है। यहाँ की व्यवस्था में राष्ट्रपति की पसंद अधिक महत्वपूर्ण है न कि बहुमत दल के नेता या अन्य संसदीय गुटों का प्रभाव है। राष्ट्रपति विभिन्न दलों से परामर्श लेने के लिए बाध्य नहीं है। चौथे गणतन्त्र में प्रधानमंत्री का पद 'राष्ट्रपति सभा का प्रतिनिधि'' का पर्याय था क्योंकि राष्ट्रपति द्वारा निर्दिष्ट व्यक्ति को राष्ट्रपति की सभा का विश्वास मत प्राप्त करना होता था उसके पश्चात् नियुक्ति होती थी लेकिन अब वह व्यवस्था नहीं है अतः फ्रांस का प्रधानमंत्री राष्ट्रपति का प्रतिनिधि माना जाता है।

पदमुक्ति :

फ्रांस के प्रधानमंत्री को राष्ट्रपति का विश्वास खो देने या राष्ट्रीय सभा में विश्वास खो देने पर त्यागपत्र देना पड़ता है। अनुच्छेद–50 के अनुसार सरकार के किसी कार्यक्रम या नीति को राष्ट्रीय सभा द्वारा अस्वीकार कर देने या निंदा प्रस्ताव पारित करने पर प्रधानमंत्री को अपना त्यागपत्र, राष्ट्रपति को सौंपना होता है। वह स्वेच्छा से भी पदत्याग कर सकता है।

शक्तियाँ एवं कार्य :

फ्रांस में राष्ट्रपति तथा प्रधानमंत्री नामक द्विशीर्षात्मक कार्यपालिका के होते हुए शक्तियों का बंटावारा स्पष्ट रूप से किया गया है। प्रधानमंत्री की निम्नाकिंत शक्तियाँ तथा कार्य हैं –

1. शासन संचालन के लिए यथावश्यक दिशा–निर्देश जारी करता है।
2. राष्ट्र की सुरक्षा के लिए सशस्त्र सेनाओं को निर्देश देता है।
3. अनुच्छेद–13 में वर्णित महत्वपूर्ण पदों को छोड़, शेष पदों पर नियुक्तियाँ करता है।
4. विधायिका द्वारा निर्मित कानूनों के क्रियान्वयन को सुनिश्चित करता है।
5. सरकार के समस्त अध्यादेशों तथा विज्ञप्तियों पर राष्ट्रपति के हस्ताक्षर करवाता है।
6. राष्ट्रपति द्वारा प्राप्त शक्तियों के अनुसरण में सुरक्षा परिषद् तथा अन्य समितियों की अध्यक्षता करता है।
7. विशिष्ट कार्यों, प्रदत्त शक्तियों तथा औपचारिक रूप में मंत्रिमण्डल की बैठकों की अध्यक्षता करता है।
8. मंत्रिमण्डल के सदस्यों, उनके विभागों तथा कार्यक्षेत्र का निर्धारण कर राष्ट्रपति को अवगत कराता है।
9. लोक सेवाओं में सुधार, नियंत्रण–निर्देशन तथा कार्यकुशलता बनाए रखने के प्रयास करता है।
10. संसद में सरकार की नीतियों, कार्यक्रमों तथा अन्य घोषणाओं का स्पष्टीकरण देता है तथा संसदीय प्रश्नों के उत्तर प्रस्तुत करता है।
11. राष्ट्रीय सभा में विश्वास मत प्रस्तुत करता है।
12. विधि निर्माण के लिए विधेयक प्रस्तुत करने की पहल करता है।

13. विशिष्ट कार्यसूची के अंतर्गत संसद का असाधारण सत्र आयोजित करने की प्रार्थना करता है।

14. राष्ट्रीय सभा को भंग करने या आपातकाल इत्यादि के संदर्भ में राष्ट्रपति को परामर्श देता है।

संविधान के अनुच्छेद–21 के अनुसार प्रधानमंत्री राष्ट्र की नीतियों के लिए उत्तरदायी होता है अतः नीति निर्माण में उसकी भूमिका भी सर्वाधिक रहती है।

प्रधानमंत्री की स्थिति :

पंचम गणतंत्र के अधीन प्रधानमंत्री मंत्रिमण्डल का मुख्य नायक है। संविधान की धारा 27 के अनुसार शासन का मुख्य संचालक है। उसे राष्ट्रपति का दायां हाथ कहा जाता है क्योंकि राष्ट्रपति अपने अधिकारों का प्रयोग उसके माध्यम से करता है। वह राष्ट्रपति का मुख्य परामर्शदाता है। उसके परामर्श से राष्ट्रपति देश में संकटकाल की घोषणा करता है, राष्ट्रीय सभा को भंग करने का निर्णय लेता है, मंत्रिपरिषद् के सदस्यों की नियुक्ति और बर्खास्तगी करता है।

प्रधानमंत्री मंत्रिपरिषद् के जीवन, मरण और कार्य संचालन पर व्यापक प्रभाव रखता है। वह मंत्रिमण्डल के सदस्यों में कार्य बांटता है उनके कार्यों का निरीक्षण, बैठकों की अध्यक्षता तथा नेतृत्व प्रदान करता है। प्रधानमंत्री के त्याग–पत्र का अर्थ–संपूर्ण मंत्रिपरिषद् का पतन है। प्रधानमंत्री देश की सुरक्षा के लिए उत्तरदायी है। इस दृष्टि से वह देश की सशस्त्र सेनाओं को आवश्यक निर्देश देता है। वह संसद का सदस्य न होते हुए दोनों सदनों में बैठने तथा बोलने का अधिकारी है व सरकार का मुख्य वक्ता है। उसके वक्तव्य सरकार की नीति के प्रतीक होते हैं। वह संसद द्वारा पारित कानूनों को कार्यान्वित करता है। वह अनेक सैनिक तथा असैनिक पदाधिकारियों की नियुक्ति प्रतिरक्षा परिषदों एवं समितियों की अध्यक्षता करता है।

प्रधानमंत्री का व्यावहारिक प्रभाव विशेषज्ञ समितियों के माध्यम से विशेष बढ़ जाता है। प्रधानमंत्री **'डेबरे'** ने एक बड़ा व्यक्तिगत स्टाफ नियुक्त किया था जो प्रशासनिक नीतियों की कार्यान्विति और समन्वय में सहायता कर सके। (Services of the Prime Minister) नाम से एक अलग विभाग है। इसका एक डिवीजन केन्द्रीय सचिवालय कहा जाता है। यह नीति समन्वय का कार्य संपन्न करता है। यह मंत्रियों के प्रस्ताव एकत्रित करता है, अध्यादेशों और सरकारी विधेयकों का प्रारूप तैयार करता है तथा उन्हें राज्य परिषद् के सामने प्रस्तुत करता है।

प्रधानमंत्री के अधीन अन्य कार्यालय रहते हैं जिनका संबंध अंतर्विभागीय कार्यों से रहता है, जैसे–अणुशक्ति आयोग, लोक सेवा प्रशासन, सूचना सेवायें आदि। प्रधानमंत्री नीति निर्णय लेते समय पहले अपने परामर्शदाताओं से विचार–विमर्श कर लेता है। उसके बाद उसे मंत्रिपरिषद् के सामने लाता है और मंत्रिपरिषद का महत्व एवं प्रभाव कम हो जाता है। संसदीय विरोध कम करने के लिए प्रधानमंत्री नीति संबंधी प्रश्नों पर संसद सदस्यों के साथ व्यक्तिगत विचार–विनिमय करता है। पंचम गणतंत्र के संविधान ने संसदीय प्रक्रिया एवं शक्ति पर अनेक प्रतिबंध लगा दिए हैं। अब यह शक्ति मंत्रिपरिषद् के सामने एक रबर स्टाम्प मात्र रह गई है।

फ्रांस का प्रधानमंत्री प्रभावशाली है, किंतु संविधान द्वारा उसकी शक्तियों पर अनेक सीमायें हैं। प्रधानमंत्री के प्रत्येक कार्य पर संबंधित मंत्री के प्रतिहस्ताक्षर अनिवार्य होते हैं। प्रधानमंत्री अपने कार्य के लिए राष्ट्रीय सभा के प्रति उत्तरदायी है। यह उसे त्याग–पत्र देने के लिए बाध्य कर सकती है। बहुदलीय व्यवस्था होने के कारण प्रधानमंत्री का प्रभाव मंत्रिपरिषद् और राष्ट्रीय सभा दोनों पर कम रहता है। पंचम गणतंत्र में राष्ट्रपति की शक्तियाँ व्यापक हैं। अतः प्रधानमंत्री का पद कम महत्वपूर्ण है। वह अनेक कार्य राष्ट्रपति के बिना नहीं कर सकता। राष्ट्रपति की शक्तिशाली भूमिका ने प्रधानमंत्री पद को कमजोर बना दिया है।

4.3.3 मंत्रिपरिषद् (Council of Ministers of France)

फ्रांसिसी संविधान के अनुच्छेद–20 में एक मंत्रिपरिषद् का उल्लेख करते हुए तीन प्रमुख तथ्य वर्णित किए गए हैं –

1. फ्रांस का प्रधानमंत्री और अन्य मंत्रिगण मिलकर सरकार का निर्माण करेंगे;
2. सरकार, राष्ट्र की नीतियों का निर्माण करेगी,
3. सरकार, नीतियों के लिए संसद के प्रति उत्तरदायी होगी।

फ्रांस का प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है तथा प्रधानमंत्री के परामर्श पर अन्य मंत्रियों की नियुक्ति भी राष्ट्रपति ही करता है। सामान्यतः प्रधानमंत्री के परामर्श को राष्ट्रपति स्वीकार कर लेता है। फ्रांस में प्रधानमंत्री तथा अन्य मंत्री संसद के सदस्य नहीं होते हैं। यदि कोई मंत्री या प्रधानमंत्री संसद का सदस्य है तो उसे संसद की सदस्यता से त्यागपत्र देना होता है। सामान्यतः फ्रांस की मंत्रिपरिषद् में विषय विशेषज्ञों एवं वरिष्ठ लोक सेवकों को सम्मिलित किया जाता रहा है। कोई भी मंत्रिपरिषद् हो उसे राष्ट्रपति के दल का समर्थन प्राप्त करना व्यावहारिक रूप में आवश्यक रहता है क्योंकि बहुदलीय व्यवस्था में प्रायः एकदल के पास स्पष्ट बहुमत नहीं रहता है। मंत्रिपरिषद् के सदस्यों की संख्या, संविधान में वर्णित नहीं है किंतु इसका आकार प्रायः छोटा ही रहता है।

मंत्रिपरिषद् में दो श्रेणियों के मंत्री होते हैं –

1. विभागों के अध्यक्ष मंत्री
2. राज्य मंत्री तथा बिना विभागों के मंत्री

मंत्रिपरिषद् की बैठकों में सभी प्रकार के मंत्री सम्मिलित होते हैं। मंत्रिपरिषद् की बैठक की अध्यक्षता राष्ट्रपति करता है। लेकिन कुछ मंत्रियों के युक्त मंत्रिमण्डल की बैठकों में कभी कभार प्रधानमंत्री अध्यक्षता करता है। मंत्रिमण्डल एक अनौपचारिक संस्था है जबकि मंत्रिपरिषद् संवैधानिक एवं बड़ी संस्था है। मंत्रिपरिषद् की सप्ताह में दो बार बैठकें, राष्ट्रपति भवन में होती हैं।

पदमुक्ति :

मंत्रिपरिषद् के सदस्यों को राष्ट्रपति पदमुक्त कर सकता है यदि उन्होंने राष्ट्रपति या राष्ट्रीय सभा का विश्वास खो दिया हो। सरकार के किसी कार्यक्रम या नीति को राष्ट्रीय सभा अस्वीकृत कर दे, विश्वासमत अस्वीकृत हो जाए या राष्ट्रीय सभा निंदा प्रस्ताव पारित कर दे तो मंत्रिपरिषद् को त्यागपत्र देना पड़ता है। मंत्रिपरिषद् के कार्यों में राष्ट्रीय नीति, कानून तथा कार्यक्रम बनाना, बजट बनाना, कानूनों एवं बजट को लागू करना, प्रशासनिक व्यवस्था का संचालन करना, महत्वपूर्ण पदों जैसे–राजदूत महाअंकेक्षक, कौंसिलर इत्यादि पर नियुक्ति करना तथा संसद में सरकार का पक्ष प्रस्तुत करना प्रमुख हैं। दरअसल, फ्रांस की मंत्रिपरिषद् एक शक्तिहीन कार्यपालिका का उदाहरण है।

वास्तविक स्थिति :

फ्रांस में मंत्रिपरिषद् की शक्तियों और लक्षणों या विशेषताओं के आधार पर इसकी स्थिति अत्यंत कमजोर है। देश में अध्यक्षात्मक व्यवस्था होने के कारण यह स्वाभाविक है। चतुर्थ गणतंत्र की तरह पंचम गणतंत्र के संविधान में मंत्रिपरिषद् की कमजोर स्थिति को बरकरार रखा गया। मंत्रिपरिषद् पर राष्ट्रपति का प्रभावशाली वर्चस्व और नियंत्रण है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

9. फ्रांस के राष्ट्रपति का चुनाव कैसे किया जाता है?

10. फ्रांस के राष्ट्रपति का कार्यकाल 7 वर्ष से बढ़ाकर 5 वर्ष किस सन् में किया गया?

11. फ्रांस के प्रधानमंत्री का चयन कौन करता है?

4.5 जापान की मुख्य कार्यपालिका

जापान की मुख्य कार्यपालिका के तहत सम्राट प्रधानमंत्री एवं उसका मन्त्रिमण्डल आता है जिनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है –

4.5.1 सम्राट

मैजी संविधान में सम्राट ही समस्त कानूनी सत्ता एवं राजनैतिक शक्ति का स्रोत था। सम्प्रभुता उसी में निहित थी। यद्यपि व्यवहार में वह अपनी शक्तियों का प्रयोग अपने मंत्रियों की मदद से करता था। उसकी विधायनी, कार्यकारी एवं न्यायिक शक्तियाँ असीमित थी और उसकी स्थिति सर्वोपरि शासक की थी। शोवा संविधान जो 13 मई 1947 ई0 को कार्यान्वित किया गया, के अंतर्गत उसकी शक्तियों एवं स्थिति में आमूल–चूल परिवर्तन किए गए। वर्तमान संविधान के अनुसार सम्राट 'राज्य एवं जनता की एकता का चिन्ह्' है।

नवीन संविधान के अनुसार, सम्राट राज्य के विषय में स्वेच्छा से कोई कार्य नहीं करेगा। वह सभी कार्य केवल मन्त्रिमण्डल की सलाह पर ही करेगा तथा मन्त्रियों की सलाह मानने के लिए बाध्य होगा। आज जापानी सम्राट की स्थिति ब्रिटिश सम्राट जैसी ही हो गई है। उसके राज्य से संबंधित कार्य केवल औपचारिक मात्र ही रह गए हैं। राज्य के अलंकारिक कार्यों को सम्राट द्वारा सम्पन्न किया जाता है। शासन के दैनिक कार्य मंत्रिमण्डल द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं। इस प्रकार सम्राट राज्य का केवल नाममात्र का प्रधान है। ब्रिटेन की भाँति जापान के सम्राट का पद भी वंशानुगत रखा गया है।

शक्तियाँ एवं कार्य :

जापान के वर्तमान संविधान के अनुसार सम्राट की शक्तियाँ एवं कार्य निम्नलिखित हैं –

कार्यपालिका शक्तियाँ (Executive Power)

सम्राट को निम्नलिखित कार्यपालिका शक्तियाँ प्रदान की गई हैं –

1. वह प्रधानमंत्री की नियुक्ति करता है। प्रधानमंत्री कौन होगा इसका निश्चित डायट करती है। सम्राट केवल नियुक्ति की रस्म अदायगी करता है। इस संबंध में सम्राट का अधिकार केवल औपचारिकता मात्र है। इसके विपरीत ब्रिटिश सम्राट या भारतीय राष्ट्रपति को प्रधानमंत्री की नियुक्ति के संबंध में विशेष परिस्थितियों में सीमित अधिकार अथवा विवेक का अवसर मिलता है।
2. राज्य के मंत्रियों और कानून द्वारा व्यवस्थित अन्य अधिकारियों की नियुक्ति तथा पदच्युति को प्रमाणित करना।
3. राजदूतों और मंत्रियों की शक्तियों एवं प्रमाणपत्रों को प्रमाणित करना।
4. सम्मान के स्रोत (fountain of honour) के रूप में सम्राट सम्मान सूचक उपाधियाँ प्रधान करता है।
5. पुष्टिकरण आलेखों (instruments of ratification) और कानून द्वारा व्यवस्थित अन्य कूटनीतिक आलेखों को सम्राट प्रमाणित करता है।
6. वह विदेशी राजदूतों और मंत्रियों का स्वागत करता है।
7. सम्राट आलंकारिक (Ceremonial) कृत्यों को संपन्न करता है।

विधायिका शक्तियाँ (Legislative Powers) – जापान के सम्राट को निम्नलिखित विधायी शक्तियाँ प्राप्त हैं –

1. समस्त राष्ट्रीय विधियाँ, संवैधानिक संशोधन, मंत्रिमण्डल आदेश और संधियाँ सम्राट के द्वारा उद्घोषित किए

जाते हैं।

2. वह डायट का अधिवेशन बुलाता है।
3. वह अवधि की समाप्ति या प्रधानमंत्री की सिफारिश पर प्रतिनिधि सभा को विघटित करता है। वह डायट के सदस्यों के आम चुनाव के निमित्त आदेश जारी करता है।

न्यायिक शक्तियाँ – जापान के सम्राट को निम्नलिखित न्यायिक शक्तियाँ प्राप्त हैं –

1. वह सामान्य तथा विशिष्ट क्षमादान, दंड को घटाने, मुक्ति तथा अधिकारों की पुर्नप्रतिष्ठा को प्रमाणित करता है।
2. वह मंत्रिमण्डल द्वारा नामांकित व्यक्ति को सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश नियुक्त करता है।

सम्राट की स्थिति :

जापानी सम्राट की शक्तियों की उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि विश्व के शक्तिहीन राज्य के अध्यक्षों में से एक है। वह राज्य का केवल आलंकारिक प्रधान है। वह राज्य तथा जनता की एकता का प्रतीक मात्र है। उसका संबंध केवल राज्य के औपचारिक कार्यों से है। शासन के मामलों में वह दखल नहीं दे सकता है। वस्तुतः शासनकार्यों से उसका कोई संबंध है ही नहीं। वह स्वेच्छा से कोई कार्य नहीं करता। उसे समस्त कार्यों के लिए मंत्रियों के परामर्श तथा अनुमोदन की आवश्यकता होती है। वह ब्रिटिश सम्राट की भांति उत्तरदायित्व से परे है। वह किसी भी कार्य के लिए उत्तरदायी नहीं होता क्योंकि राज्य या शासन के सभी कार्यों के लिए उसके मंत्री उत्तरदायी होते हैं। उसकी स्थिति ब्रिटिश सम्राट से भी कमजोर है। ब्रिटिश सम्राट प्रधानमंत्री की नियुक्ति में कभी–कभी अपने प्रभाव का भी प्रयोग कर सकता है। लेकिन जापानी सम्राट द्वारा प्रधानमंत्री की नियुक्ति केवल रस्म अदायगी है। ब्रिटिश सम्राट लोकसभा को विघटित करने के लिए प्रधानमंत्री द्वारा दिए गए परामर्श को अस्वीकार करने का परमाधिकार रखता है परंतु जापान का सम्राट डायट के विघटन को रोक नहीं सकता। यहाँ तक कि सम्राट राजनीतिक प्रश्नों पर सार्वजनिक रूप से अपना विचार प्रकट नहीं कर सकता है और न महत्वपूर्ण निर्णयों के संबंध में अपने प्रभाव का प्रयोग कर सकता है, वर्तमान संविधान के अंतर्गत सम्राट की स्थिति को यानगा ने इन शब्दों में स्पष्ट किया है– ''वह पूर्णतया स्पष्ट है कि अब पहले से कभी भी अधिक सम्राट राज्य करता है, शासन नहीं। उसकी शक्तियाँ ब्रिटिश सम्राट की तुलना में वस्तुतः नगण्य हैं जो शासन की प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण पार्ट अदा करता है। जबकि ब्रिटिश सम्राट को यह अधिकार प्राप्त है कि प्रधानमंत्री उससे मंत्रणा लें, वह कुछ कार्य करने के लिए मंत्रियों को उत्साहित करे तथा कुछ कार्य न करने की चेतावनी दे, जापान के सम्राट को ऐसा कोई अधिकार प्राप्त नहीं है।'' आइक भी इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि ''नए संविधान के अंतर्गत सम्राट स्पष्ट रूप से राज्य करता है, शासन नहीं करता।''

निःसंदेह जापानी सम्राट की संवैधानिक तथा राजनैतिक स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं। उसे शक्तिहीन तथा महत्वहीन बना दिया गया। लेकिन इस परिवर्तन से सम्राट के गौरव तथा नैतिक प्रभाव पर कोई आँच नहीं आई है। जैसा कि प्रो0 यानगा ने कहा है, ''संवैधानिक दृष्टिकोण से सम्राट की स्थिति को केवल प्रतीक की स्थिति तक पहुंचा देना बड़ी कठोर बात मालूम होती है। पर इतिहास को देखते हुए यह अस्वाभाविक तथा असंगत नहीं है तथा निश्चित रूप से उस संस्था को उससे कुछ हानी नहीं पहुंचती।'' प्रो0 जॉन एम0 मकी का भी कहना है कि सम्राट की शासन–संबंधी शक्ति की समाप्ति के कारण उसकी शान में तिल भर की कमी नहीं हुई है, बल्कि द्वितीय महायुद्ध के बाद सम्राट की प्रतिष्ठा में वृद्धि ही हुई है। महायुद्ध के समय सम्राट ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की और सारे संकट को अपने सिर पर ले लिया। इससे जनता में उसके प्रति श्रद्धा–भावना तथा भक्ति में वृद्धि हुई। केवल 'मानवीकरण' के कारण उसके पद से रहस्यमयता और ईश्वरीयता का पर्दा हट गया। वह 'पवित्र

एवं अनुल्लंघनीय' न रह गया, बल्कि एक पूर्ण मानवीय राजनीतिक संस्था बन गया। फिर भी नैतिक एवं आध्यात्मिक शक्ति के रूप में उसकी स्थिति अब पहले से भी ऊँची है। प्राचीन संविधान में सम्राट ही संप्रभु था। नए संविधान में जनता संप्रभु है। लेकिन आज भी जहाँ तक जन–भावना का प्रश्न है कम–से–कम प्रतीकात्मक रूप में सम्राट को राज्य माना जाता है। यही कारण है कि युद्ध के बाद एक सर्वेक्षण में जापान के तीन–चौथाई युवाओं ने यह विश्वास प्रकट किया कि ''केवल कागज पर ही नहीं लोगों के हृदय एवं मस्तिष्क में सम्राट राष्ट्र का प्रतीक बना हुआ है।''

4.5.2 प्रधानमंत्री

जापानी संविधान अनुच्छेद 66 के द्वारा प्रधानमंत्री के पद का सृजन करता है। इस प्रकार भारत की भांति प्रधानमंत्री के पद को मान्यता प्रदान की गई है। इसके विपरीत ब्रिटिश संविधान में यह पद परंपरा पर आधारित है।

प्रधानमंत्री की नियुक्ति :

संसदीय प्रणाली के अंतर्गत प्रधानमंत्री की नियुक्ति राज्य के अध्यक्ष द्वारा होती है। लेकिन, संसदीय परंपरा के अनुसार वह निम्नसदन में बहुमत दल के नेता को इस पद पर नियुक्त करता है। तात्पर्य यह है प्रधानमंत्री की नियुक्ति लोकप्रिय सदन की इच्छा पर ही निर्भर करती है। जापान में भी यह शक्ति अंततः डायट के हाथ में है। यद्यपि सम्राट प्रधानमंत्री की नियुक्ति करता है लेकिन वह केवल उसी व्यक्ति को इस पद पर नियुक्त कर सकता है जो डायट द्वारा नामांकित किया गया हो। सम्राट की शक्ति केवल औपचारिक मात्र है। भारत तथा इंग्लैंड राज्य के अध्यक्षों को विशेष परिस्थिति में कभी–कभी इस संबंध में स्वविवेक के प्रयोग का भी अवसर मिल सकता है, लेकिन जापान में सम्राट को ऐसा अवसर कभी प्राप्त नहीं हो सकता है।

डायट द्वारा प्रधानमंत्री के चयन की प्रक्रिया का उल्लेख संविधान में किया गया है। उसका चुनाव डायट के दोनों सदनों के साधारण बहुमत द्वारा होता है। प्रत्येक सदन इसके लिए अलग–अलग मतदान करता है। अगर दोनों सदन इस संबंध में एकमत नहीं होते तो मामला दोनों सदनों की एक संयुक्त समिति पर छोड़ दिया जाता है। यदि संयुक्त समिति भी मतभेद को हल करने में सफल नहीं होती तो प्रतिनिधि सदन का मत निर्णायक होता है। इस प्रकार निर्वाचित व्यक्ति को सम्राट प्रधानमंत्री नियुक्त करता है।

प्रधानमंत्री की योग्यता :

प्रधानमंत्री की योग्यता के बारे में संविधान में कोई विशेष उल्लेख नहीं मिलता है। केवल दो कानूनी बंधनों का उल्लेख संविधान में मिलता है। पहला, प्रधानमंत्री को असैनिक (civilian) होना चाहिए। दूसरा, प्रधानमंत्री को डायट का सदस्य होना चाहिए। लेकिन इसका उल्लेख नहीं किया गया है कि वह किस सदन का सदस्य हो। व्यवहार में यह दिख पड़ता है कि वह प्रतिनिधि सदन का ही सदस्य होगा क्योंकि उसके चुनाव के संबंध में इस सदन को ही निर्णायक अधिकार प्राप्त है। वह साधारणतः प्रतिनिधि सभा के बहुसंख्यक दल का नेता होता है।

व्यवहार में प्रधानमंत्री में कुछ व्यक्तिगत गुणों का होना अनिवार्य है। ब्रिटिश प्रधानमंत्री के विषय में कुछ विद्वानों ने उसके व्यक्तिगत गुणों की चर्चा की है जो जापान के प्रधानमंत्री के विषय में भी कही जा सकती है। यंगर पिट ने प्रधानमंत्री के निम्नलिखित गुणों का उल्लेख किया है– ''प्रथम वक्तृत्व शक्ति, द्वितीय ज्ञान, तृतीय परिश्रम तथा अंत में धैर्य।'' लास्की ने कहा है कि प्रधानमंत्री में विवेक, कौशल, शासन–शक्ति, विश्वसनीय व्यक्तियों की पहचान, प्रभावशाली वक्तव्य देने की क्षमता तथा दल और लोकसभा को प्रभावित करने की योग्यता होनी चाहिए।

प्रधानमंत्री की शक्तियाँ एवं कार्य :

संविधान की धारा 65 से 75 के अनुसार राज्य की कार्यपालिका शक्ति केबिनेट में निहित होती है और केबिनेट का अध्यक्ष प्रधानमंत्री होता है। इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप में राज्य की कार्यपालिका शक्ति पर अंतिम अधिकार प्रधानमंत्री

को ही प्राप्त है। डायट में बहुमत दल और जनता का निर्वाचित प्रतिनिधि होने के कारण उसे राष्ट्र का सर्वोच्च राजनीतिक नेतृत्व प्राप्त होता है। अपने नेतृत्व के लिए वह प्रत्यक्ष रूप से डायट के प्रति और अप्रत्यक्ष रूप से संपूर्ण राष्ट्र के प्रति उत्तरदायी होता है।

1. **सर्वोच्च राजनीतिक शासक (Superme Political Administrator)** – मंत्रिमण्डल में प्रधानमंत्री की स्थिति सर्वोच्च होती है। मंत्रियों के बीच विभागों के वितरण में प्रधानमंत्री का ही निर्णय अंतिम होता है। मंत्रियों को क्रमबद्ध कर उन्हें वरिष्ठता प्रदान करता है। वह अपनी इच्छानुसार मंत्रिमण्डल में उलटफेर कर सकता है। वह मंत्रिमडल की समस्त कार्यवाहियों का केंद्र होता है। वह देखते हैं कि सब विभाग ठीक से कार्य कर रहे हैं, या नहीं। मंत्रिमण्डल बैठकों का सभापतित्व करने, निरीक्षण करने और कार्यवाहियों का संचालन करने का अधिकार उसी को है। मंत्रिमण्डल के निर्णयों और नीति–निर्धारण में उसका सर्वोपरि हाथ रहता है। वह मंत्रियों के कार्य में सामंजस्य स्थापित करता है। किसी भी राज्यमंत्री द्वारा जो निर्णय लिया जाता है उस पर मंत्री के हस्ताक्षर होने के साथ–साथ प्रधानमंत्री के हस्ताक्षर होना भी अनिवार्य है। दूसरे शब्दों में, मंत्रिमण्डल का कोई भी निर्णय तभी मान्य समझा जाता है जब उस पर प्रधानमंत्री के हस्ताक्षर हो जाएं।

   मंत्रिमण्डल की सामान्य नीति का प्रतिनिधित्व भी प्रधानमंत्री ही करता है। मंत्रिमंडल की ओर से डायट के सामने प्रस्तुत किए जाने वाले सभी पत्र आदि उसी के द्वारा पेश किए जाते हैं।

2. **मंत्रियों की नियुक्ति व पदच्युति की शक्ति** – मंत्रियों को पदच्युत करने का अधिकार भी प्रधानमंत्री को है। संविधान की धारा 68 स्पष्टतः उपबंधित करती है कि प्रधानमंत्री अपनी इच्छानुसार राज्य के मंत्रियों का निष्कासन कर सकता है।

3. **मंत्रिमंडल के निर्माण व संहार की शक्ति** – सभी मंत्रियों का भविष्य उसके साथ बंधा रहता है। उसके त्याग–पत्र के साथ पूरा मंत्रिमण्डल डूब जाता है। यदि कोई मंत्री उसके कहने पर त्याग–पत्र नहीं देता है तो वह सम्राट से कहकर मंत्री को पदच्युत करा सकता है अथवा स्वयं त्याग–पत्र देकर अपने बहुमत के बल पर मंत्रिमण्डल का पुनर्निर्माण कर सकता है।

4. **दल का नेता** –प्रधानमंत्री शासन का प्रधान होने के अतिरिक्त बहुमत दल का नेता भी होता है। उसे दल का प्रतीक माना जाता है और आम चुनाव प्रायः उसी के व्यक्तित्व को केंद्र बनाकर लड़ा जाता है। डायट में बहुमत दल के समर्थन पर ही वह और उसका मंत्रिमंडल शासन की गृह तथा विदेश नीति का सफलतापूर्वक संचालन करता है। दलीय संगठन के कारण दल के सभी सदस्य उसकी आज्ञा का पालन करते हैं।

5. **डायट का नेता** –प्रधानमंत्री डायट का, मुख्यतः प्रतिनिधि सभा का नेता होता है। डायट में किसी भी महत्त्वपूर्ण विषय पर वह अंतिम वक्ता और नीति का निर्धारक होता है। प्रशासनिक नीतियों पर अंतिम और अधिकृत भाषण प्रधानमंत्री का ही होता है। वही विधियों के निर्माण, वार्षिक बजट की तैयारी, सदन की कार्यवाही और व्यवस्था आदि के संबंध में अंतिम रूप से पथ–प्रदर्शन करता है। यदि प्रतिनिधि सभा केबिनेट के विरूद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दे तो वह अपने साथियों सहित त्याग–पत्र भी दे सकता है अथवा 10 दिन के भीतर प्रतिनिधि सभा को भंग भी कर सकता है।

6. **सम्राट एवं मंत्रिमंडल के बीच की कड़ी** –प्रधानमंत्री राजकीय मामलों में सम्राट और मंत्रिमंडल के बीच माध्यम का कार्य करता है। अन्य मंत्रियों का व्यक्तिगत रूप से सम्राट से प्रत्यक्ष औपचारिक संबंध नहीं है। स्मरणीय है कि जापानी सम्राट को संविधान द्वारा ऐसा कोई अधिकार प्राप्त नहीं है कि वह भारतीय राष्ट्रपति के अनुसार प्रधानमंत्री से किसी प्रकार की सूचना की मांग करे।

7. **अंतर्राष्ट्रीय प्रतिनिधि** – प्रधानमंत्री ही अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपने देश का सर्वोच्च और प्रभावशाली प्रतिनिधि होता

है। विदेश–नीति में उसके निर्णय अंतिम और अधिकृत माने जाते हैं। मुख्यतः उसी के व्यक्तित्व और आचरण के आधार पर देशों से मैत्रीपूर्ण आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक संबंध स्थापित हो पाते हैं।

8. **संकटकालीन अधिकार** –भारत में आपातकालीन अधिकार राष्ट्रपति को हैं जिनका प्रयोग मंत्रिमंडल करता है जबकि जापान में सैद्धांतिक और व्यवहारिक दोनों ही दृष्टियों से आपातकालीन अधिकार मंत्रिमंडल में निहित हैं जिनके प्रयोग का उत्तरदायित्व मंत्रिमंडल का प्रधान होने के नाते प्रधानमंत्री पर होता है।

प्रधानमंत्री की स्थिति :

प्रधानमंत्री की शक्तियाँ अपार तथा असीमित हैं। समय, स्थिति तथा व्यक्तित्व के अनुसार उसकी शक्तियाँ घटती–बढ़ती रहती हैं। आज की साधारणकालीन स्थिति में उसकी शक्तियाँ उतनी व्यापक नहीं हैं जितनी कि द्वितीय विश्वयुद्ध के समय जापानी प्रधानमंत्री को प्राप्त थी। सच पूछा जाए तो उसकी स्थिति तानाशाह के समान हैं जिसकी शक्तियों पर संविधान द्वारा मर्यादा लगा दी गई है। प्रधानमंत्री की स्थिति बहुत कुछ व्यक्तित्व पर निर्भर करती है। किसी ने ब्रिटिश प्रधानमंत्री के संबंध में कहा है कि, ''प्रधानमंत्री का पद वैसा ही बन जाता है जैसा कि उस पद का अधिकारी बनाना चाहता है।'' ग्लैडस्टोन ने प्रधानमंत्री के बारे में कहा है ''वह मंत्रिमंडल रूपी भवन की आधारशिला है।'' राम्से म्योर का कहना है कि ''मंत्रिमंडल राज्य रूपी जहाज का यंत्र है और प्रधानमंत्री उस यंत्र का चालक।'' ये सब शक्तियाँ जापानी प्रधानमंत्री के विषय में भी कही जा सकती हैं। जापान का प्रधानमंत्री भी ब्रिटिश प्रधानमंत्री की भाँति राष्ट्र का सर्वशक्तिशाली व्यक्ति तथा वास्तविक शासक है।

4.5.3 मंत्रीपरिषद्

जपान में केबिनेट प्रथा 1885 में सम्राट के अध्यादेश द्वारा आरंभ हुई थी, किंतु पुराने संविधान में 'केबिनेट' (मंत्रिमण्डल) शब्द का कहीं भी प्रयोग नहीं किया गया था। यद्यपि संविधान की धारा 55 द्वारा एक प्रकार से यह कहकर मंत्रिमण्डल को मान्यता प्रदान कर दी गई कि ''राज्य के विभिन्न मंत्री (अपने–अपने विभागों के बारे में) सम्राट को परामर्श देंगे और उसके लिए उत्तरदायी होंगे।'' प्राचीन केबिनेट देश के प्रशासन की इकाई नहीं थी, वरन् केवल परामर्शदात्री संस्था मात्र थी जिसका निर्माण सम्राट करता था और जो सम्राट के प्रति ही उत्तरदायी होती थी। डायट के अविश्वास आदि का मंत्रियों की स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। कहा जा सकता है कि प्राचीन संविधान के अंतर्गत केबिनेट का स्वरूप अत्यंत विकृत था। ऑग व जिंक (Ogg & Zink) के शब्दों में –''मेइजी संविधान के अंतर्गत केबिनेट थी किंतु केबिनेट पद्धति की सरकार न थी।''

वर्तमान केबिनेट का स्वरूप : उसकी विशेषताएँ (Characteristics of the Cabinet)

जापान के नवीन संविधान ने केबिनेट के प्राचीन स्वरूप में आमूल–चूल परिवर्तन कर दिया है। वर्तमान केबिनेट का संगठन संसदीय पद्धति वाले राज्यों के आधार पर किया गया है। जापानी केबिनेट का आज का स्वरूप बहुत कुछ पाश्चात्य केबिनेट के स्वरूप का ही अनुकरण है और पाश्चात्य केबिनेट की प्रायः सभी महत्वपूर्ण विशेषताएँ जापानी केबिनेट में पाई जाती हैं जो संक्षेप में निम्नानुसार हैं –

1. **कार्यपालिका और व्यवस्थापिका का सामंजस्य (Integration of Executive & Legislature)** – संसदीय केबिनेट प्रणाली के अनुरूप जापान के संविधान के अंतर्गत कार्यपालिका और व्यवस्थापिका के मध्य सामंजस्य बनाए रखने का प्रयास किया गया है। जो ब्रिटिश शासन–प्रणाली की मूल विशेषता है। अमेरिका की भांति इन दोनों को पृथक रखने का प्रयत्न नहीं किया गया है। जापानी संविधान में व्यवस्था है कि केबिनेट के सदस्यों को अधिकांशतः डायट के सदस्यों में से लिया जाए। इस व्यवस्था से यह निष्कर्ष निकल सकता है कि जापानी केबिनेट में कुछ मंत्री डायट के बाहर से भी लिए जा सकते हैं और इस प्रकार मंत्रियों के दो वर्ग हो सकते हैं– एक वह जो डायट का सदस्य हो और दूसरा वह जो डायट का सदस्य न हो। लेकिन व्यवहार में जापान में

लगभग सभी मंत्रियों को डायट में से ही लिया जाता है। डायट के बाहर के व्यक्ति बहुत कम लिए जाते हैं। चूंकि उनकी संख्या केबिनेट में नगण्य होती है, अतः केबिनेट–व्यवस्था की विशेषता का महत्वपूर्ण रूप से खंडन नहीं होता।

2. **व्यवस्थापिका के प्रति कार्यपालिका उत्तरदायित्व (Executive's Responsibilities Towards Legislature)** – व्यवस्थापिका के प्रति कार्यपालिका के उत्तरदायित्व का सिद्धांत केबिनेट पद्धति का प्राणतत्व है। जापानी संविधान की धारा 66 में स्पष्ट कहा गया है कि अपने सभी कार्यों के लिए केबिनेट डायट के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगी। धारा 69 में प्रावधान है कि प्रतिनिधि–सदन का विश्वास खो देने पर संपूर्ण केबिनेट को त्याग–पत्र देना पड़ेगा यदि 10 दिन के भीतर प्रतिनिधि सदन का विघटन न कर दिया जाए। वस्तुतः डायट को केबिनेट पर नियंत्रण का वैसा ही अधिकार प्राप्त है जैसा कि संसदीय प्रणाली के देशों में व्यवस्थापिका को कार्यपालिकाओं पर प्राप्त होता है। डायट अनेक उपायों से केबिनेट पर नियंत्रण रखती है। डायट के सदस्य मंत्रियों से नीति–विषयक प्रश्न पूछते हैं जिनका उत्तर मंत्रियों को देना पड़ता है। यद्यपि मंत्री उत्तर देने के लिए सदैव बाध्य नहीं होते, तथापि सदस्यों के प्रश्नों का भय उनकी स्वेच्छाचारिता पर अंकुश लगाए रहता है। डायट के सदस्य प्रश्नों के अतिरिक्त मंत्रियों की आलोचना भी करते हैं।

3. **राजनीतिक सजातीयता (Political Homogenity)** –जापानी संविधान भी सामूहिक उत्तरदायित्व की व्यवस्था करता है। इस सामूहिक उत्तरदायित्व को सफल बनाने के लिए और मंत्रियों के दृष्टिकोण में एकता बनाए रखने के लिए जापान में भी ब्रिटेन की ही भांति दल–प्रथा का विकास हुआ है। राजनीतिक दलों का सरकार के निर्माण के साथ घनिष्ठ संबंध रहता है और मंत्रियों की नियुक्ति बहुत कुछ दलीय प्रथा पर ही निर्भर करती है। डायट के जो सदस्य मंत्री बनाए जाते हैं, वे प्रायः एक ही राजनीतिक विचारधारा के होते हैं और इसलिए वे एक इकाई के रूप में कार्य करते हैं। डायट के बाहर के व्यक्तियों में से नियुक्त किए जाने वाले मंत्री इस बात के अपवाद हो सकते हैं, लेकिन ऐसे मंत्रियों की संख्या सामान्यतः नगण्य रहती है।

4. **प्रधानमंत्री का नेतृत्व (Leadership of the Prime Minister)** – प्रधानमंत्री के नेतृत्व में समस्त मंत्रिमण्डल एक दल के सही रूप में कार्य करने लगा। यनागा (Yonaga) के अनुसार–''सन् 1947 के संविधान के अनुसार जापानी सरकार कार्यात्मक रूप से किंतु भावनात्मक रूप से कम, ब्रिटिश सरकार से समानता रखती है। डायट द्वारा निर्दिष्ट नीतियों के आधार पर सरकार राष्ट्रीय कार्यपालिका पर सर्वोच्च नियंत्रण रखती है। संवैधानिक संरचना की दृष्टि से कम से कम जापान में एक उत्तरदायी सरकार की स्थापना हुई।''

5. **सम्राट राज्य का औपचारिक अध्यक्ष मात्र (Emperor only Formal Head of the State)** – सम्राट राज्य का औपचारिक अध्यक्ष मात्र रह गया।

संगठन, कार्य–प्रणाली, शक्तियाँ एवं कर्त्तव्य (The Composition, Working, Powers and Functions of the Cabinet)

आकार एवं रचना :

केबिनेट के आकार अथवा मंत्रियों की संख्या एवं श्रेणियों के बारे में संविधान में विस्तार से वर्णन किया गया है। संविधान की धारा 66 में केवल यह व्यवस्था दी गई है कि प्रधानमंत्री केबिनेट का अध्यक्ष होगा। उसके अतिरिक्त केबिनेट में कानून द्वारा की गई व्यवस्था के अनुसार राज्य के अन्य मंत्री होंगे। इसी धारा के अनुसार यह व्यवस्था भी है कि प्रधानमंत्री एवं सभी मंत्रियों का असैनिक होना आवश्यक है। संविधान की धारा 67 के अनुसार प्रधानमंत्री का नाम, डायट के सदस्यों में से डायट के संकल्प (Resolution) द्वारा तैयार किया जाता है। प्रधानमंत्री के चयन के प्रश्न पर डायट के दोनों सदनों में मतभेद होने पर दोनों सदनों की संयुक्त समिति सहमति का प्रयत्न करती है।

यदि संयुक्त समिति के प्रयत्नों से भी सहमति प्राप्त न हो सके अथवा प्रतिनिधि सदन द्वारा तय कर लेने पर भी विश्रामकाल को छोड़कर 10 दिन के मध्य कौंसिलर सदन नाम तय न कर सके तो संविधान की धारा 67 के अनुसार प्रतिनिधि सदन के निर्णय को ही डायट का निर्णय समझ लिया जाएगा। डायट द्वारा प्रधानमंत्री का नाम तय हो जाने पर उसकी औपचारिक नियुक्ति सम्राट द्वारा की जाती है। इस धारा से स्पष्ट है कि प्रधानमंत्री के नामांकन के विषय में सभासद की शक्तियाँ प्रतिनिधि सदन की तुलना में कम है।

अन्य मंत्रियों की नियुक्ति प्रधानमंत्री द्वारा की जाती है। संविधान की धारा 68 के अनुसार अधिकांश मंत्री राष्ट्रीय डायट के सदस्य होने चाहिए। मंत्रियों को अपने पद से हटाने का प्रधानमंत्री को अधिकार है।

अवधि :

जापान की केबिनेट की कोई निश्चित अवधि नहीं है। वह डायट के निम्न सदन अर्थात् प्रतिनिधि सदन के बहुमत के समर्थन तक ही अपने पद पर स्थित रह सकती है। यदि निम्न सदन केबिनेट के विरूद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पारित कर देता है अथवा अविश्वास प्रस्ताव को अस्वीकार कर देता है तो केबिनेट को दस दिन के भीतर या तो स्वयं त्यागपत्र दे देना चाहिए अथवा प्रतिनिधि सदन को भंग कर देना चाहिए एवं देश में पुनः निर्वाचन कराने चाहिए। जब केबिनेट को त्यागपत्र देना होता है तो वह दोनों सदनों के अध्यक्षों को इस बात की लिखित सूचना देती है। यह सूचना प्राप्त होने पर डायट नए प्रधानमंत्री के चयन का कार्य आरंभ कर देती है।

संगठन एवं कार्य–प्रणाली :

प्रधानमंत्री केबिनेट का अध्यक्ष होता है और उसका कार्यालय ही सरकार का केंद्रीय कार्यालय होता है। इस कार्यालय का मुख्य संचालक केबिनेट सचिवालय का निर्देशक (Director of Cabinet Secretariat) होता है। इसकी सहायता के लिए उप–निदेशक (Deputy Director) होते हैं। सचिवालय केबिनेट की सभाओं का कार्यक्रम तैयार करता है, आवश्यक पत्र तैयार करता है एवं अन्य मामलों का प्रबंध करता है। सचिवालय के अलावा एक विधि–निर्माण ब्यूरो भी होता है। इसका निदेशक विधि–निर्माण के संबंध में प्रधानमंत्री एवं केबिनेट को कानूनी परामर्श देता है। अनेक बोर्ड और कमीशन इस ब्यूरो के सहायक अंग होते हैं।

केबिनेट की बैठकें साधारणतः सप्ताह में दो बार प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में उसके सरकारी भवन में होती है। प्रधानमंत्री की अनुपस्थिति में उप–प्रधानमंत्री सभापतित्व करता है। केबिनेट की बैठक के लिए कोई गणपूर्ति निश्चित नहीं है। यदि बहुमत से कोई निर्णय लिया जाता है तो अनुपस्थित सदस्यों के हस्ताक्षर बाद में कराए जा सकते हैं। केबिनेट के वाद–विवाद गोपनीय होते हैं और कार्यवाही प्रकाशित नहीं की जाती। केबिनेट मंत्रियों के अधीन उपमंत्री भी होते हैं। ये स्थायी सरकारी अधिकारी होते हैं। इनका महत्व निरंतर बढ़ता जा रहा है। इनकी बैठकों में हुए निर्णयों को केबिनेट की स्वीकृति पर ही लागू किया जा सकता है।

सी0 मनागा के मतानुसार, केबिनेट के कार्य दो प्रकार के होते हैं। ये हैं –(1) केबिनेट निर्णय एवं (2) केबिनेट समझौते। महत्वपूर्ण प्रश्नों एवं संवैधानिक तथा कानूनी मामले रखने और अपने बहुमत के बल पर उन्हें डायट से स्वीकृत करा लेने का संपूर्ण कार्य केबिनेट का ही है। उसे मंत्रिपरिषद आदेश (Cabinet Order) भी जारी करने का अधिकार है। इन आदेशों का प्रभाव संसदीय कानूनों जैसा ही होता है। डायट की बैठक बुलाने, निम्न सदन को विघटित करने, सम्राट को परामर्श देने, आम चुनावों की घोषणा करने तथा संविधान में संशोधन लाने के लिए आवश्यक कदम उठाने आदि के दायित्वों का निर्वाह केबिनेट ही करती है। एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि जापानी कार्यपालिका को विधेयक के संबंध में निषेधाधिकार तथा अध्यादेश जारी करने का अधिकार नहीं है। आर्डथ बर्क्स (Ardath W. Burks) के अनुसार, ''केबिनेट का कार्य राष्ट्रीय नीति निर्धारित करने व विधायी प्रक्रिया में प्रभावी रूप से भाग लेना होता है।''

1. **वित्तीय अधिकार (Financial Powers)** – संविधान की धारा 83 ने राष्ट्रीय वित्त के प्रशासन का उत्तरदायित्व डायट पर डाला है, लेकिन व्यवहार में केबिनेट ही इस उत्तरदायित्व का अधिकांशतः निर्वाह करती है। आकस्मिक परिस्थिति में डायट द्वारा सुरक्षित धनराशि के व्यय का उत्तरदायित्व केबिनेट पर ही है, यद्यपि धन खर्च करने के बाद उसे अविलम्ब डायट की स्वीकृति लेनी पड़ती है। राज्य के सभी प्रकार के व्ययों और राजस्वों की जो वार्षिक रिपोर्ट ऑडिट–बोर्ड प्रस्तुत करता है उसे केबिनेट द्वारा ही डायट के सामने पेश किया जाता है। संविधान द्वारा केबिनेट का ही यह दायित्व है कि वह नियत अवधि पर वर्ष में कम से कम एक बार राष्ट्रीय वित्त के बारे में डायट और जनता के समक्ष रिपोर्ट प्रस्तुत करते हैं।

2. **न्यायिक अधिकार (Judicial Powers)** – संविधान की धारा 6 ने केबिनेट को सामान्य क्षमादान, दंड कम करने, मृत्यु दण्ड को अल्पकाल के लिए स्थगित करने तथा अधिकारों को पुनः प्रदान करने आदि के प्रश्नों पर निर्णय देने का अधिकार दिया है। इस संबंध में केबिनेट द्वारा किए गए कार्यों को सम्राट प्रमाणित करता है।

3. **परामर्शदात्री शक्तियाँ (Advisory Powers)** – सम्राट को कोई विशेषाधिकार प्राप्त नहीं है। वह मंत्रिमण्डल के परामर्शदात्री अधिकार के अनुसार कार्य करता है। क्विंग्ले व टर्नर के शब्दों में, ''मंत्रिमण्डल का यह कार्य अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि परामर्श उसकी ओर से निर्णय के समान है।''

4. **आपातकालीन शक्तियाँ (Emergency Powers)** – देश के आपात या संकटकाल में मंत्रिमण्डल को विशेष शक्तियाँ प्राप्त हैं।

इन महत्वपूर्ण अधिकारों के अलावा केबिनेट को प्रतिनिधि सदन को भंग करने का अधिकार भी प्राप्त है। प्रतिनिधि–सदन को भंग करके वह हाउस ऑफ कौंसिलर्स का संकटकालीन अधिवेशन बुला सकती है। सारांश में, केबिनेट वर्तमान जापानी–व्यवस्था का प्रमुख अंग है और उसी के हाथ में व्यवहारतः शासन की समस्त सत्ता है। यद्यपि वह डायट के प्रति पूर्णतया उत्तरदायी है। यदि निम्न सदन में उसे बहुमत का समर्थन प्राप्त हो तो उसकी शक्ति बहुत बढ़ जाती है। सर जॉन मैरियट (Sir John Merriot) के अनुसार, ''केबिनेट वह धुरी है जिस पर समग्र सरकारी यंत्र परिभ्रमण करता है।''

'अपनी प्रगति जांचिए'

12. जापान के सम्राट की स्थिति स्पष्ट कीजिए।

13. जापान के प्रधानमन्त्री की नियुक्ति कौन करता है?

4.6 सारांश

प्राचीन समय में सम्राट और ताज में कोई अंतर नहीं था क्योंकि सम्राट ही ताज को धारण करता था। अतः शासन की समस्त शक्तियाँ सम्राट में ही सीमित थी। लेकिन कालान्तर में ब्रिटिश सम्राटों की निरंकुशता बढ़ने के कारण राजा की शक्तियाँ प्रजा में स्थानान्तरित हो गई। परिणामस्वरूप सम्राट और ताज में अंतर आ गया तथा राजा शक्ति विहीन हो गया। ब्रिटेन का सम्राट आज नाममात्र की कार्यपालिका है जिसे स्वर्णिम शून्य तथा रबड़ की मुहर कहा जाता है। उसे देश का संवैधानिक मुखिया भी कहा जाता है तथा देश की वास्तविक शक्तियाँ वहाँ के प्रधानमंत्री एवं उसके मंत्रिमण्डल में निहित हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका की समस्त कार्यकारी शक्तियाँ राष्ट्रपति में निहित हैं और वह एक सशक्त कार्यपालिका के रूप में कार्य करता है। गौर का विषय है कि अमेरिकी संविधान निर्माता उसे सशक्त कार्यपालिका के रूप में नहीं देखना चाहते थे और इसी कारण राष्ट्रपति के चुनाव हेतु अप्रत्यक्ष प्रणाली को अपनाया गया लेकिन

अमेरिका में दो पार्टी तन्त्र (Two Party System) के उभरने के कारण अप्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली लगभग प्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली में बदल गई। आज अमेरिकी राष्ट्रपति पूरे देश के नेता के रूप में चुनाव लड़ता है। उसका कार्यकाल 4 वर्ष है और एक व्यक्ति दो बार चुनाव लड़ सकता है और अधिकतम 10 वर्ष तक इस पद पर विराजमान रह सकता है।

फ्रांस में शासन के स्तर पर दोहरी कार्यपालिका पाई जाती है। भारत की भांति फ्रांस का राष्ट्रपति संवैधानिक मुखिया न होकर राष्ट्र का वास्तविक मुखिया है और प्रत्यक्ष चुनाव द्वारा निर्वाचित किया जाता है। उसका कार्यकाल 7 वर्ष है तथा उसके पुनः निर्वाचित होने पर कोई प्रतिबंध नहीं है। फ्रांस का प्रधानमंत्री व उसका मंत्रिमण्डल भी वास्तविक कार्यपालिका के रूप में कार्य करता है हालांकि प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। इसी कारण फ्रांस के प्रधानमंत्री की पदस्थिति भारत व ब्रिटेन के प्रधानमंत्री जैसी सशक्त कार्यपालिका की नहीं है।

जापान में प्रारंभ से ही सम्राट का अत्याधिक प्रभुत्व था। पूर्वगामी संविधान के अंतर्गत सम्राट साम्राज्य का अध्यक्ष था जिसमें प्रभुता के सभी अधिकार केन्द्रित थे। लेकिन द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् नए संविधान का गठन किया गया और सम्राट में निहित शक्तियाँ जनता में स्थानांतरित कर देने के कारण सम्राट शक्तिविहीन हो गया। आज जापान के सम्राट की स्थिति ब्रिटिश सम्राट से भी कम महत्वपूर्ण व शक्तिहीन हो गई है और शासन की वास्तविक शक्तियाँ प्रधानमंत्री व उसके मंत्रिमण्डल में केन्द्रित हैं।

4.7 मुख्य शब्दावली

संवैधानिक मुखिया – जिसे औपचारिक रूप से राष्ट्र का मुखिया घोषित किया गया है लेकिन वह अपनी शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री व उसके मंत्रिमण्डल की सलाह के बिना न कर सके।

वंशानुगत – पीढ़ी दर पीढ़ी।

क्राउन या ताज – सामान्य अर्थ में ताज वह मुकुट है जिसे सम्राट राजपद के चिन्ह् स्वरूप धारण करता था। यह सम्मान, अधिकारों एवं कर्त्तव्यों का प्रतीक था। आज इसका अर्थ किसी व्यक्ति विशेष से नहीं है बल्कि यह एक संस्था है जो जन हितार्थ कार्य करती है।

मंत्रिपरिषद् : यह एक ऐसी परिषद है जिसके तहत केबिनेट मंत्री, राज्य मंत्री एवं संसदीय सचिव आते हैं।

दोहरी कार्यपालिका : फ्रांस की कार्यपालिका 'दोहरी कार्यपालिका' की श्रेणी में आती है जहाँ राष्ट्रपति एवं प्रधानमंत्री दोनों ही वास्तविक कार्यपालिका के रूप में कार्य करते हैं।

4.8 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. ब्रिटेन की नाममात्र की कार्यपालिका सम्राट है।
2. सम्राट एक व्यक्ति है जबकि ताज एक संस्था है। सम्राट की मृत्यु हो सकती है, किंतु संस्था के रूप में ताज अमर रहता है।
3. ब्रिटेन की वास्तविक कार्यपालिका प्रधानमंत्री एवं उसका मंत्रिमण्डल है।
4. ब्रिटिश सम्राट के बारे में कहा जाता है कि 'वह कोई गलती नहीं करता' क्योंकि वह मन्त्रियों के परामर्श के बिना कुछ भी नहीं कर सकता है। अतः यह कहा जा सकता है कि सम्राट कोई कार्य करता ही नहीं जिससे किसी गलती के लिए उसे उत्तरदायी ठहराया जा सके।

5. अमेरिका का राष्ट्रपति बनने हेतु निम्नलिखित योग्यताएँ होनी चाहिएं –

   i) वह अमेरिका का जन्मजात नागरिका हो;

   ii) उसकी आयु कम से कम 35 वर्ष हो;

   iii) वह अमेरिका में कम से कम 14 वर्ष तक रहा हो।

6. 22वें संविधान संशोधन के तहत अमेरिका का राष्ट्रपति अधिक से अधिक 10 वर्ष तक इस पद पर रह सकता है।

7. फ्रेंकलिन डी0 रूजवेल्ट

8. अमेरिकी राष्ट्रपति की सहायक ऐजेंसियों के नाम हैं – व्हाइट हाउस कार्यालय, बजट ब्यूरो एवं आर्थिक परामर्शदाताओं की परिषद।

9. फ्रांस के राष्ट्रपति का चुनाव प्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली द्वारा किया जाता है।

10. 2001 में

11. फ्रांस का राष्ट्रपति

12. जापान के सम्राट की स्थिति संवैधानिक मुखिया की है क्योंकि वह अपनी शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री व उसके मंत्रिमण्डल की सलाह पर ही करता है और यह सलाह उसके लिए बाध्यकारी है।

13. जापान के प्रधानमन्त्री की नियुक्ति, सम्राट द्वारा की जाती है लेकिन प्रधानमंत्री कौन होगा, इसका निर्धारण डायट करती है। इसलिए सम्राट द्वारा प्रधानमंत्री की नियुक्ति केवल औपचारिक मात्र है।

4.9 अभ्यास हेतु प्रश्न (Question for Exercise)

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. ब्रिटिश सम्राट को संवैधानिक मुखिया कहा जाता है, स्पष्ट करें।
2. क्राउन एवं सम्राट के मध्य अंतर स्पष्ट कीजिए।
3. ब्रिटेन में प्रधानमंत्री की नियुक्ति कैसे की जाती है?
4. ब्रिटिश सम्राट की वास्तविक स्थिति का विवरण दीजिए।
5. अमेरिकन राष्ट्रपति के निर्वाचन प्रक्रिया का वर्णन करें।
6. अमेरिकन राष्ट्रपति को किस प्रक्रिया के तहत हटाया जा सकता है, उसका उल्लेख कीजिए।
7. अमेरिकी राष्ट्रपति की स्थिति का उल्लेख कीजिए।
8. फ्रांस के प्रधानमंत्री की स्थिति पर प्रकाश डालिए।
9. फ्रांस के मन्त्रीमण्डल के कार्यों का उल्लेख करें।
10. जापानी सम्राट की तुलना ब्रिटिश सम्राट से कीजिए।
11. जापान के प्रधानमंत्री की नियुक्ति प्रक्रिया का वर्णन करें।
12. जापान के सम्राट की स्थिति का वर्णन कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. ब्रिटिश सम्राट की शक्तियों एवं स्थिति का सविस्तार विवरण कीजिए।
2. ब्रिटेन के प्रधानमंत्री की शक्तियों एवं कार्यों का उल्लेख कीजिए तथा उसकी स्थिति के बारे में भी समझाएँ।
3. ब्रिटिश मंत्रिमण्डल की उत्पत्ति, विशेषताओं एवं कार्यों के विषय में वर्णन कीजिए।
4. अमेरिकी राष्ट्रपति की शक्तियों एवं स्थिति का सविस्तार वर्णन कीजिए।
5. फ्रांस के राष्ट्रपति की शक्तियों एवं स्थिति का विस्तारपूर्वक विवेचन कीजिए।
6. जापान के सम्राट की शक्तियों एवं स्थिति पर प्रकाश डालिए।
7. जापान के प्रधानमंत्री की शक्तियों एवं कार्यों का वर्णन करें। उसकी स्थिति भी स्पष्ट कीजिए।
8. आप ये भी पढ़ सकते हैं।